इकाई–1

संयुक्त राष्ट्र संघ एवं इसके अभिकरण

संरचना

1.0 प्रस्तावना
1.1 उद्देश्य
1.2 संयुक्त राष्ट्र संघ का जन्म
1.3 संयुक्त राष्ट्र संघ की घोषणा
1.4 संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता
1.5 संयुक्त राष्ट्र का स्वरूप एवं संरचना
1.6 सुरक्षा परिषद
1.7 महासभा
1.8 महासभा के कार्य
1.9 लघुसभा
1.10 आर्थिक तथा सामाजिक परिषद
1.11 न्यास परिषद
1.12 अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय
1.13 संयुक्त राष्ट्र का सचिवालय
1.14 अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन
1.15 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष
1.16 विश्व बैंक
1.17 विश्व स्वास्थ्य संगठन
1.18 यूनेस्को
1.19 सारांश
1.20 अभ्यास प्रश्नावली

1.0 प्रस्तावना

द्वितीय विश्व युद्ध उपरान्त विश्व शांति की स्थापना में भविष्य में युद्धों को रोकथाम के लिए अनेक वैश्विक प्रयास हुए। संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना भी ऐसे ही प्रयासों की महत्त्वपूर्ण कड़ी है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई में संयुक्त राष्ट्र संघ एवं उसके विभिन्न अभिकरणों का परिचय प्राप्त किया जायेगा।

1.2 संयुक्त राष्ट्रसंघ का जन्म

प्रथम महायुद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की स्थापना के लिए राष्ट्रसंघ अस्तित्व में आया था जो विभिन्न दुर्बलताओं और महाशक्तियों के असहयोग के कारण अपने उद्देश्य में असफल हुआ। 1939 में द्वितीय महायुद्ध छिड़ गया जो अपार धन–जन के विनाश के बाद 1945 में समाप्त हुआ। महायुद्ध का विस्फोट होते ही मित्र राष्ट्र एक नई प्रभावशाली विश्व संस्था स्थापित करने की योजना बनाने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

लगे। युद्धकाल में अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के ध्येयों को स्थापित करने के लिए अनेक कदम उठाए। 12 जून, 1941 की मित्र राष्ट्रों की घोषणा में इस ओर संकेत किया गया। ब्रिटेन, कनाडा, आस्ट्रेलिया, फ्रांस आदि अनेक हस्ताक्षरकर्त्ता राष्ट्रों ने घोषित किया कि वे पृथक् शान्ति स्थापित नहीं करेंगे। यह कहा गया कि शान्ति स्थापित करने का एकमात्र मूल आधार विश्व के सभी स्वतन्त्र राष्ट्रों का ऐच्छिक सहयोग है ताकि युद्ध और आक्रमण का भय समाप्त हो जाए। इसके बाद ही अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना के सम्बन्ध में राजनीतिज्ञों में भेंट और सम्मेलनों का सिलसिला आरम्भ हो गया। 14 अगस्त, 1941 की अटलाँटिक घोषणा में चर्चिल और रूजवेल्ट द्वारा विश्व शान्ति स्थापित करने के कुछ सिद्धान्तों की घोषणा की और कहा कि ''हम साम्राज्य विस्तार या किसी नए प्रदेश पर अधिकार नहीं करना चाहते। हम चाहते हैं कि जनमत द्वारा ही प्रत्येक राष्ट्र का शासन संचालन हो। सब राष्ट्रों में पारस्परिक आर्थिक सहयोग हो, युद्ध के उपरान्त राज्य पुनः प्रस्थापित हों और उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हो, प्रत्येक राष्ट्र युद्ध सामग्री में कमी करे तथा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिए प्रयत्न करे।'' इस अटलाँटिक घोषणा पत्र को ही संयुक्त राष्ट्रसंघ का जन्मदाता माना जाता है। इस चार्टर पर बाद में सोवियत रूस ने भी अपने हस्ताक्षर कर दिए।

1.3 संयुक्त राष्ट्रसंघ की घोषणा, 1942

संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना की दिशा में दूसरा कदम जनवरी, 1942 में संयुक्त राष्ट्रसंघ की घोषणा द्वारा उठाया गया। अमेरिका, ब्रिटेन, रूस, चीन आदि देशों को मिलाकर 26 राष्ट्रों ने इस घोषणा पर हस्ताक्षर करते हुए अटलाँटिक घोषणा के सिद्धान्तों को स्वीकार कर लिया। मई-जून, 1943 में 44 राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने एक खाद्य एवं कृषि सम्मेलन में लाखों विस्थापितों की भोजन समस्या पर विचार किया और इस प्रकार भावी खाद्य एवं कृषि संगठनों की आधारशिला रखी।

1.3.1 मास्को में विदेश मन्त्रियों का सम्मेलन, 1943

अक्टूबर, 1943 में मास्को में अमेरिका, ब्रिटेन, रूस और चीन के विदेश मन्त्रियों का सम्मेलन हुआ, जिसमें उन्होंने अटलाँटिक चार्टर के सिद्धान्तों के आधार पर विश्व शान्ति और सुरक्षा के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना पर जोर दिया। मास्को घोषणा महत्त्वपूर्ण थी क्योंकि ''इसके वक्तव्य अटलाँटिक चार्टर की अपेक्षा अधिक स्पष्ट थे और इसके द्वारा रूस ने निश्चित रूप से यह प्रतिज्ञा की कि वह एक सुरक्षा संगठन की स्थापना की दिशा में सक्रिय सहयोग देगा।'' मास्को घोषणा में भावी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का चित्राँकन करते हुए कहा गया कि उसमें शान्ति के इच्छुक सभी छोटे-बड़े राज्य सम्मिलित होंगे तथा सभी राज्यों के साथ समानता का व्यवहार किया जाएगा।

1.3.2 तेहरान सम्मेलन, 1943

नवम्बर, 1943 में तेहरान सम्मेलन, में चर्चिल, रूजवेल्ट, स्टालिन ने यह निर्णय किया कि छोटे-बड़े सभी राष्ट्रों को संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य बनने के लिए आमन्त्रित किया जाए। युद्धकाल के इस प्रथम शिखर सम्मेलन में प्रजातान्त्रिक राष्ट्रों के विश्व परिवार की आशा प्रकट की गई।

1.3.3 डम्बर्टन ओक्स सम्मेलन, 1944

21 अगस्त से 7 दिसम्बर, 1944 तक संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत रूस, ग्रेट ब्रिटेन और चीन के प्रतिनिधियों ने वार्शिंगटन के निकट डम्बर्टन ओक्स नामक स्थान में एकत्र होकर एक अन्तर्राष्ट्रीय भावी संगठन- संयुक्त राष्ट्रसंघ की रूपरेखा के सम्बन्ध में विचार-विमर्श किया और अनौपचारिक वार्ता की। इस सम्मेलन के निर्णय अन्तिम नहीं थे, यद्यपि संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर का बहुत कुछ आधार इसी सम्मेलन में बना। इस सम्मेलन में विभिन्न प्रस्तावों को रखा गया और उन पर विचार किया गया। संयुक्त राज्य अमेरिका ने प्रस्तावित संघ की सुरक्षा में ब्राजील को स्थाई सदस्य बनाने की माँग रखी, लेकिन ब्रिटेन एवं सोवियत रूस के विरोध के कारण यह प्रस्ताव स्वीकृत न हो सका।

सोवियत संघ ने सम्मेलन में यह प्रस्ताव रखा कि उसके 16 गणराज्यों को स्वतन्त्र सदस्यों के रूप में संयुक्त राष्ट्र संघ में सम्मिलित किया जाए किन्तु अमेरिका और ब्रिटेन ने सोवियत रूस के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। रूस ने यह मांग भी प्रस्तुत की कि आर्थिक और सामाजिक विषयों पर विचार-विमर्श के लिए एक पृथक् अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का निर्माण किया जाए, पर यह प्रस्ताव भी अन्य राष्ट्रों को मान्य नहीं हुआ। सोवियत संघ का यह प्रस्ताव भी स्वीकृत न हो सका कि संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् के आदेशों द्वारा संचालित होने वाली एक अन्तर्राष्ट्रीय वायु सेना का निर्माण हो किन्तु ब्रिटेन और अमेरिका का यह प्रस्ताव स्वीकार हो गया कि आवश्यकता पड़ने पर सुरक्षा परिषद को पारस्परिक समझौते के आधार पर राष्ट्रीय सेनाओं के दस्ते प्रदान किए जाएँ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

डम्बर्टन ओक्स सम्मेलन का सर्वाधिक विवादास्पद विषय था- सुरक्षा परिषद् के सदस्यों को निषेधाधिकार प्रदान करना। ग्रेट ब्रिटेन और अमेरिका का मत यह था कि निषेधाधिकार इस प्रतिबन्ध के साथ प्रदान किया जाए कि जो राष्ट्र जिस विषय पर निषेधाधिकार का प्रयोग करे वह विषय उस राष्ट्र से सम्बन्धित न हो। सोवियत रूस ने इस प्रतिबन्ध का विरोध किया और यह मांग की कि निषेधाधिकार के प्रयोग पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाना चाहिए। काफी वाद-विवाद के पश्चात् के भी जब इस विषय पर कोई निर्णय नहीं हुआ तो यह निश्चय किया गया कि तीनों राज्यों के शासनाध्यक्ष स्वयं इस प्रश्न का समाधान करेंगे।

1.3.4 क्रिमिया याल्टा सम्मेलन, 1945

महायुद्धकालीन अन्तिम महत्त्वपूर्ण सम्मेलन याल्टा (कृष्णा सागर में क्रीमिया प्रायद्वीप में) नामक स्थान पर 4 फरवरी, 1945 को हुआ और 11 फरवरी, 1945 तक जारी रहा। इस सम्मेलन में अनेक नेताओं ने भाग लिया जिनमें रूजवेल्ट, चर्चिल, स्टालिन, ईडन, मोलोटोव, मार्शल ब्रुक, एन्टोनोव, ह. फर्किस, विर्शिसकी आदि प्रमुख थे। इस सम्मेलन में सुदूरपूर्व तथा मध्यपूर्व आदि के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण विचार-विमर्श किया गया। युद्धकालीन सम्मेलनों में याल्टा का यह सम्मेलन सबसे महत्त्वपूर्ण था क्योंकि इस सम्मेलन ने जिन समस्याओं को जन्म दिया उनका युद्धोत्तर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। इस सम्मेलन में व्यक्त विचारों ने जहाँ एक तरफ अन्तर्राष्ट्रीय समझौते की आधारशिला रखी, वहाँ दूसरी तरफ मित्र राष्ट्रों ने आपसी मतभेदों को भी जन्म दिय जिसकी चरम सीमा शीतयुद्ध मानी जाती है।

यह निश्चय किया गया कि विश्व संगठन के सम्बन्ध में 25 अप्रैल, 1945 को सान-फ्राँसिस्को (अमेरिका) में संयुक्त राष्ट्रों का एक सम्मेलन आमन्त्रित किया जाए। मार्च, 1945 तक जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करने वाले राज्यों को निमन्त्रण भेजे जाएँ और यूक्रेन तथा सोवियत रूस को मित्र राष्ट्रों द्वारा पृथक रूप से आमन्त्रित किया जाए, 5 राज्यों - संयुक्तराज्य, अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन, सोवियत रूस, चीन और फ्राँस को इस संघ की सुरक्षा परिषद् में स्थाई सदस्य बनाया जाए। सुरक्षा परिषद् के प्रत्येक सदस्य को प्रत्येक महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर निषेधाधिकार प्राप्त हो।

1.3.5 सान-फ्राँसिस्को सम्मेलन, 1945

संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर को अन्तिम रूप देने के लिए सान-फ्राँसिस्को (अमेरिका) में विश्व के 46 राज्यों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। ई. पी. वेज ने इस सम्मेलन को सबसे महान् बताया है- जैसा न तो कभी हुआ था और न ही भविष्य में होने की सम्भावना है। इस सम्मेलन के आरम्भ होने से 13 दिन पहले राष्ट्रपति रूजवेल्ट का स्वर्गवास होने के कारण उनके उत्तरदाधिकारी ट्रूमैन ने इसके उद्घाटन भाषणा में कहा- ''इस सम्मेलन का उद्देश्य यह नहीं है कि वह पुराने ढर्रे की सन्धि करे। हमारा यह कार्य नहीं है कि हम प्रदेशों, सीमाओं, नागरिकता और क्षतिपूर्ति से सम्बन्धित प्रश्नो पर निर्णय लें। यह सम्मेलन अपनी सम्पूर्ण शक्ति शान्ति को सुरक्षित रखने वाले संगठन का निर्माण में लगाएगा। आपको इसका मौलिक चार्टर बनाना है... हम युद्ध में अकेले नहीं थे अत: शान्ति में भी अकेले नहीं रह सकते। यदि हम युद्ध में एक साथ नहीं मरना चाहते तो हमें शान्तिकाल में मिलकर रहना सीखना चाहिए।''

यह सम्मेलन अप्रैल से जून, 1945 तक चला। 25 जून को संयुक्त राष्ट्र संघ का चार्टर सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया और 26 जून को 50 देशों के प्रतिनिधियों ने इस पर हस्ताक्षर कर दिए। पोलैण्ड के प्रतिनिधि किसी कारण उपस्थित न हो सके, अत: उनके हस्ताक्षरों के लिए स्थान छोड़ दिया। इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र संघ के कुल 51 प्रारम्भिक सदस्य थे। 24 अक्टूबर, 1945 को संयुक्त राष्ट्रसंघ का चार्टर लागू हो गया। अत: यह दिन विश्व में 'संयुक्त राष्ट्र दिवस' (U.N.O.) के रूप में जाना जाता है। 10 फरवरी, 1946 को लन्दन के वेस्ट मिनिस्टर हाल में संघ का प्रथम अधिवेशन हुआ। इसमें अनेक पदाधिकारी चुने गए। 15 फरवरी, 1946 को संघ का प्रथम अधिवेशन समाप्त हुआ। संघ का प्रधान कार्यालय पहले लेक सक्सेस (अमेरिका) में रखा गया और तत्पश्चात् न्यूयार्क में बने विशाल भवन में स्थानान्तरित कर दिया गया।

1.3.6 राष्ट्र संघ का संयुक्त संघ में हस्तान्तरण

जब संयुक्त राष्ट्र संघ का जन्म हुआ तो राष्ट्र संघ औपचारिक रूप से विद्यमान था। स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के भवन और पुस्तकालय जेनेवा तथा हेग में, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन जेनेवा और मौउन्ट्रियल में, तथा संघ के सामाजिक एवं आर्थिक कार्यक्रम वाशिंगटन, लन्दन, जेनेवा एवं प्रिसटन में कार्यरत थे। अत: यह समस्या पैदा हुई कि राष्ट्र संघ को किस प्रकार भंग किया जाए तथा उसके भवनों और पुस्तकालयों की सम्पत्ति का क्या जाए। समस्या के समाधान हेतु संयुक्त राष्ट्र संघ और राष्ट्र संघ में पत्र-व्यवहार हुआ। संयुक्त

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

राष्ट्र संघ ने अधिकांश सामाजिक एवं आर्थिक कार्यक्रमों को स्वयं संभाल लिया और राष्ट्रसंघ के भवनों एवं अन्य सम्पत्ति को अपने अधिकार में ले लिया। 8 अप्रैल, 1946 को राष्ट्रसंघ की सभा ने अपने अन्तिम अधिवेशन में एक प्रस्ताव पारित कर स्वयं अपनी समाप्ति की घोषणा की दी।

1.4 संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्यता

संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर का द्वितीय अध्याय सदस्यता से सम्बन्धित है। चार्टर में दो प्रकार की सदस्यता का उल्लेख है। कुछ देश तो प्रारम्भिक सदस्य हैं और कुछ देशों को बाद में सदस्यता प्रदान की गई। प्रारम्भिक सदस्य वे राज्य हैं जिन्होंने सान-फ्राँसिस्को सम्मेलन में भाग लिया था अथवा 1 जनवरी, 1942 को संयुक्त राष्ट्र घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर किए थे और चार्टर को स्वीकार किया था। प्रारम्भिक सदस्यों की संख्या 51 थी। संघ की सदस्यता उन सब राज्यों के लिए खुली है जो शान्ति-प्रिय और चार्टर में विश्वास रखने वाले हों। अनुच्छेद 4 के अनुसार नए सदस्य बनने के लिए अनिवार्य शर्तें ये हैं-

1. वह शान्ति-प्रिय राज्य हो,
2. चार्टर द्वारा प्रस्तावित कर्त्तव्यों को स्वीकार करता हो,
3. संघ के निर्णय के अनुसार उन कर्त्तव्यों को पूरा करने में समर्थ हो, एवं
4. संघ के निर्णयानुसार उन कर्त्तव्यों को पूरा करने की इच्छा रखता हो।

उपर्युक्त सभी शर्तों को पूरा करने वाला राष्ट्रसंघ का सदस्य तभी बन सकता है जब उसे इसके महासभा के दो-तिहाई बहुमत और सुरक्षा परिषद की स्वीकृति प्राप्त हो जाए। सुरक्षा-परिषद के वर्तमान 15 में से 9 (पहले 11 में से 7) सदस्यों का बहुमत तथा स्थायी सदस्यों का निर्णायक मत उसके पक्ष में होना चाहिए। महासभा के निर्णय से पूर्व सुरक्षा-परिषद् की स्वीकृति आवश्यक है। चार्टर के अनुच्छेद 5 व 6 सदस्यता समाप्ति के बारे में हैं। अभी तक किसी भी सदस्य को संघ की सदस्यता से वञ्चित करने का कदम नहीं उठाया गया है। जो संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्य नहीं हैं, उन्हें भी संघ अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के मार्ग का बाधक नहीं बनने दे सकता है। चार्टर के अनुसार शान्ति भंग करने वाले किसी भी राष्ट्र के विरुद्ध संघ कार्यवाही कर सकता है। गैर-सदस्य राज्यों को भी अपने अन्तर्राष्ट्रीय विवाद सुरक्षा-परिषद् के सम्मुख प्रस्तुत करने का अधिकार है। विशेष परिस्थिति में वे अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के भी सदस्य बन सकते हैं।

संयुक्त राष्ट्रसंघ सदस्यता की दृष्टि से राष्ट्र संघ की तुलना में बहुत अधिक व्यापक और सार्वभौमिक संगठन है। 1984 के मध्य तक विश्व के 159 देश राष्ट्रसंघ के सदस्य हैं। 26 अक्टूबर, 1971 को संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा द्वारा राष्ट्रवादी चीन (ताइवान) को राष्ट्रसंघ से निष्कासित कर उसके स्थान पर जनवादी चीन (कम्युनिस्ट) को सदस्य बनाने का प्रस्ताव पास करने के बाद से ही साम्यवादी चीन संघ का सदस्य और सुरक्षा परिषद् का स्थायी सदस्य है। संघ सदस्यता की दृष्टि से सार्वभौमिक है, किन्तु 5 बड़े राष्ट्रों ने सुरक्षा परिषद् में निषेधाधिकार का विशेष अधिकार ग्रहण कर रखा है ताकि वे परिस्थितियों अथवा वातावरण के प्रवाह का अपने पक्ष में नियमन कर सकें या स्थिति को अपने विपक्ष में जाने से रोक सकें। वास्तव में संघ में नए सदस्यों के प्रवेश के प्रश्न पर अमेरिकी और सोवियत गुट की टकराहट होती रही है। संघ-मंच पर राजनीतिक पलड़ा अपने पक्ष में बनाए रखने की दृष्टि से अथवा राजनीतिक विजय प्राप्त करने या राजनीतिक पराजय टालने की दृष्टि से रूस और अमेरिका जैसी महाशक्तियाँ संघ की सदस्यता के प्रश्न पर उलझती रही है। संयुक्तराज्य अमेरिका ने 1946 में अपना प्रथम 'Package Proposal' प्रस्तुत किया था जिसे सोवियत संघ ने ठुकरा दिया और 1947 के बाद सोवियत संघ ने अनेक ऐसे प्रस्ताव प्रस्तुत किए जिन्हें संयुक्तराज्य अमेरिका ने अस्वीकृत कर दिया। इनिस क्लाडे ने ठीक ही लिखा है कि संघ की सदस्यता के इच्छुक राष्ट्र दो समूहों में विभाजित रहे हैं- एक समूह सोवियत गुट के समर्थक राष्ट्रों का जिन्हें सुरक्षा परिषद् में 7 सदस्यों (अब 15 में से 9) का आवश्यक समर्थन नहीं मिला और दूसरा पश्चिमी गुट के राज्यों को जिनके प्रवेश के विरुद्ध सोवियत संघ ने निषेधाधिकार का प्रयोग किया।

संयुक्त राष्ट्र संघ में सदस्यता की समस्या अब तक दो मुख्य तत्त्व से प्रभावित रही है-

(क) राजनीतिकरण एवं
(ख) नैतिकीकरण।

सदस्यता की समस्या के सन्दर्भ में राजनीतिकरण का तत्त्व संयुक्त राष्ट्रसंघ की एक विशेषता बन चुका है। रूस और अमेरिका दोनों ही महाशक्तियाँ एक दूसरे के समर्थक राज्यों को तब तक संघ में स्थान देने में प्राय: सहमत नहीं हुई जब तक उनके समर्थक राज्यों

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

के बदले में संघ का सदस्य बनना निश्चित नहीं हो गया। इस प्रकार संघ की सदस्यता का प्रश्न महाशक्तियों की राजनीतिक प्रतिष्ठा का प्रश्न रहा है और आज यद्यपि विश्व के राज्यों की बहुसंख्या राष्ट्रसंघ का सदस्य बन चुकी है तथा कुछ इने-गिने राष्ट्रों का संघ में प्रवेश इसीलिए अटका हुआ था क्योंकि तात्कालीन महाशक्तियों में परस्पर समझौता नहीं हो पाया था।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर की व्यवस्थाएँ बहुत-कुछ संयुक्त राज्य अमेरिका के पक्ष में जाती हैं। चार्टर में उल्लेख है कि वे ही राज्य संघ के सदस्य बन सकेंगे जो 'शान्तिप्रिय' तथा सदस्यता के उत्तरदायित्व को निभाने के 'योग्य और इच्छुक' हों। संयुक्त राज्य अमेरिका का उद्देश्य यही रहा है कि अमेरिकी नेतृत्व में विश्वास रखने वाले राज्यों को ही सदस्यता के लिए समर्थन देकर विश्व-संस्था में अपनी राजनीतिक प्रभुता को बनाए रखा जाए। ऐसा सम्भव न होने पर अमेरिका सदस्यता के प्रत्याशी सभी राज्य को संघ से बाहर रखने को कटिबद्ध रहा है। इसके विपरीत सोवियत रूस की नीति अधिकांशत: यह रही है कि अमेरिका समर्थक प्रत्याशियों को संघ में तभी प्रवेश लेने दिया जाए जब उसके (रूस के) स्वयं के समर्थक प्रत्याशियों को संघ में स्थान मिले। इस प्रकार जहाँ संयुक्तराज्य अमेरिका के लिए एक समूह या कुछ नहीं का (One group or nothing) का लक्ष्य रहा है वहां सोवियत रूस का संघर्ष दोनों समूह या कुछ नहीं (Both groups or nothing) का रहा है। अमेरिका राजनीतिक विजय के लिए लड़ा है जबकि रूस का उद्देश्य राजनीतिक पराजय को टालने का रहा है। संघ की सदस्यता का संघर्ष 'आत्मविश्वासी बहुमत' और एक प्रतिरक्षात्मक अल्पमत की राजनीतिक चालों का अनोखा प्रदर्शन या खेल रहा है[1] और संघ में कतिपय राज्यों के प्रवेश के प्रश्न पर कूटनीतिक दाव-पेचों का तमाशा आज भी जारी है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के छोटे सदस्य राज्यों की प्रवृत्ति भी सदस्यता सम्बन्धी समस्या को संगठन के स्वस्थ संवैधानिक विकास की दृष्टि से न देखकर कर अपने राजनीतिक लाभ के लिए एक शस्त्र के रूप में प्रयोग करने की रही है। लघुशक्तियों ने सदस्यता सम्बन्धी प्रश्न को एक ऐसे युद्ध-स्थल के रूप में लिया है जहाँ वे संघ अपनी श्रेष्ठतर स्थिति के लिए संघर्ष कर सके। उन्होंने पञ्च-महाशक्तियों के निषेधाधिकार को असमानता का प्रतीक मानते हुए इस बात का आपत्ति की है कि सुरक्षा परिषद् को सदस्यता के प्रार्थना-पत्र पर विचार करने का अधिकार हो। अर्जेन्टाइना के नेतृत्व में यह आन्दोलन भी चला था कि सिर्फ महासभा अकेली ही सदस्यता के प्रार्थना-पत्रों पर निर्णय लेने में समक्ष है और इस सम्बन्ध में उसे सुरक्षा-परिषद् की सिफारिश की परवाह नहीं करनी चाहिए। यद्यपि चार्टर की इस व्याख्या में 1950 में ही विश्व-न्यायालय ने असहमति प्रकट कर दी थी, तथापि कतिपय लघु राष्ट्रों ने अभी तक अपने उपर्युक्त दावे को नहीं छोड़ा है। इस संघर्ष का मूल तत्त्व इस उद्देश्य में निहित है कि महासभा की स्थिति को सुरक्षा-परिषद् से प्रत्येक स्तर पर उच्च बनाया जाए और इस प्रकार विश्व-संगठन में महाशक्तियों के प्रभाव और विशिष्ट अधिकार को कम किया जाए।

सदस्यता सम्बन्धी प्रश्न को प्रभावित करने वाला दूसरा तत्त्व नैतिकीकरण का है और यह भी संयुक्त संघ की एक विशेषता बन चुका है। नैतिकीकरण के प्रभावशाली विकास की सम्भावनाएं सान फ्राँसिस्को सम्मेलन में ही स्पष्ट हो गई थी। इस तत्त्व का प्रभाव नए सदस्यों की 'शान्ति-प्रियता' और संघ के दायित्वों को पूरी करने की उसकी 'योग्यता एवं इच्छा' जैसे शब्दों से स्पष्ट है। जहाँ राष्ट्र संघ ने अपने नैतिक तत्त्वों का प्रभाव कुछ ही अर्से में खो दिया था वहाँ संयुक्त राष्ट्र संघ में अब तक नए सदस्यों के सन्दर्भ में नैतिक स्तरों का गम्भीरतापूर्वक लिया गया है और सौभाग्यवश सोवियत तथा पाश्चात्य दोनों ही राजनीतिक शिविरों ने नैतिकीकरण की इस प्रक्रिया के विकास में योग दिया है। प्राय: कहा जाता है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के नैतिकीकरण के विकास में संयुक्त राज्य अमेरिका का आर्थिक और निर्णायक योग रहा है, लेकिन संघ के राजनीतिक इतिहास का गम्भीर विश्लेषण इन दावे को अतिशयोक्ति ही सिद्ध करता है। नैतिकता के जामे की आड़ में सदस्यता के प्रश्न को महशक्तियों ने सदैव अपने राजनीतिक हित तथा प्रभाव की दृष्टि से ही लिया है और तद्नुकूल समयानुसार अपने रवैये में परिवर्तन किया है। सदस्यता सम्बन्धी प्रश्न के नैतिकीकरण का सर्वाधिक दु:खद पहलू यह है कि अभी तक यह अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के प्रति संयुक्त राष्ट्र संघ की नीति की किसी निश्चित धारणा के साथ सुसम्बद्ध नहीं हो पाया है। यह नैतिकीकरण अभी तक केवल संकीर्ण और सीमित क्षेत्रीय राजनीतिक स्थितियों (Narrow and short range Political Positions) के समर्थन में ही प्रयुक्त होता है।

1.5 संयुक्त राष्ट्रसंघ का स्वरूप एवं संरचना

संयुक्त राष्ट्रसंघ का स्वरूव राष्ट्रसंघ के स्वरूप से अधिक उच्च आदर्श भूमि पर स्थित है। इसके निर्माण में राष्ट्रसंघ सम्बन्धी अनुभवों का लाभ उठाया गया है और चार्टर की व्यवस्थाएं उन कारणों तथा परिस्थितियों को ध्यान में रखकर की गई है जिनसे द्वितीय महायुद्ध हुआ। ऐसे प्रावधानों की व्यवस्था की गई जिन पर ईमानदारी से अमल करने पर फिर कभी महायुद्धों की पुनरावृत्ति न हो सके। संघ की व्यवस्थाओं के मूल में यह विचार निहित है कि रंग-भेद और उपनिवेशवाद भावी संकटों को जन्म दे सकते हैं, अत: चार्टर में मौलिक मानव-अधिकारों पर बल दिया गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

संयुक्त राष्ट्रसंघ का किसी प्रकार का केन्द्रीय संगठन न होकर संघीय संगठन जैसा है। विभिन्न क्षेत्रीय कार्यक्रमों के लिए स्वायत्त सत्ता प्राप्त विशिष्ट एजेंसियों की व्यवस्था कर संघ ने सत्ता का विकेन्द्रीकरण किया है। ये एजेंसियाँ प्राय: संघ के सहयोग और निर्देशन में कार्य करती है तथापि अपने-अपने कार्य क्षेत्र में स्वतन्त्र हैं। एजेंसियों के कार्य-क्षेत्र का विषयवार विभाजन हो जाने से संयुक्त राष्ट्रसंघ ने एक संस्था की अपेक्षा एक व्यवस्था का रूप धारणा कर लिया है।

चार्टर की प्रस्तावना के आरम्भ में सदस्य-राष्ट्रों के विश्व-शान्ति सम्बन्धी संकल्पों को प्रकट किया गया है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों तथा विश्व-शान्ति एवं सुरक्षा को प्रभावित करने की दृष्टि से संघ के उद्देश्य अग्रलिखित है-

1. अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा की स्थापना करना, शान्ति पर होने वाले आक्रमणों को रोकना और उनके विरोध में प्रभावशाली सामूहिक कार्यवाही करना, शान्ति तथा अन्तर्राष्ट्रीय कानून भंग करने वाली चेष्टाओं को दबाना एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को शान्तिपूर्ण ढंग से तथा अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों के अनुसार सुलझाना।
2. जनता के आत्मनिर्णाय तथा समान अधिकार के आधार पर राष्ट्रों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का विकास करना और सार्वभौम शान्ति को बल प्रदान करने के लिए अन्य आवश्यक कदम उठाना।
3. संसार की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मानवीय समस्याओं को हल करने में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करना तथा नस्ल, लिंग, भाषा या वर्ग के भेदभाव के बिना मानव-मात्र के लिए मानवीय अधिकारों और मौलिक स्वतन्त्रताओं को प्रोत्साहन देना।
4. उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए राष्ट्रों के प्रयासों में सामञ्जस्य स्थापित करना और इसके लिए एक केन्द्र के रूप में कार्य करना।

संघ ऐसे सिद्धान्तों पर आधारित है जो अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति पारस्परिक सम्बन्धों को प्रभावित करने की भूमिका तैयार करते हैं। चार्टर की धारा 2 के अनुसार सदस्य राज्यों को इन सिद्धान्तों का निर्वाह करना होता है-

1. सभी राज्य प्रभुता-सम्पन्न हैं और समान हैं।
2. सभी सदस्य राष्ट्र चार्टर के अनुसार अपने दायित्त्वों व कर्त्तव्यों का सद्भावना से पालन करेंगे।
3. सभी सदस्य-राष्ट्र अपने विवादों का निपटारा शान्तिपूर्ण ढंग से इस प्रकार करेंगे कि शान्ति, सुरक्षा व न्याय के भंग होने का भय न रहे।
4. सदस्य-राष्ट्र अपने सम्बन्धों में आक्रमण की धमकी देने का दूसरे राज्यों के प्रति बल-प्रयोगों करने में दूर रहेंगे।
5. सदस्य-राष्ट्र चार्टर के अनुसार की जाने वाली संघ की प्रत्येक कार्यवाही को सब प्रकार का सहयोग व सहायता प्रदान करेंगे और वे किसी ऐसा देश की मदद नहीं करेंगे, जिसके विरुद्ध संघ शान्ति और सुरक्षा के लिए कोई कार्यवाही कर रहा हो।
6. शान्ति एवं सुरक्षा बनाए रखने के लिए संघ आवश्यक कार्यवाही करेगा। संघ यह भी देखेगा कि गैर-सदस्य-राष्ट्र भी यथासम्भव ऐसे कार्य न करें जिनसे अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व सुरक्षा को खतरा पैदा हो।
7. विश्व-शान्ति और सुरक्षा के अतिरिक्त संघ किसी राष्ट्र को घरेलू मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा।

स्पष्ट है कि संघ के उद्देश्यों और सिद्धान्तों की रचना इस प्रकार की गई है कि उनके द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को प्रभावित करने की भूमि तैयार हो और संघ का स्वरूप इस प्रकार स्पष्ट हो कि अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा विभिन्न राष्ट्रों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों की स्थापना तथा मानव-कल्याण के कार्य प्रमुख कर्त्तव्य समझें जाएं। संघ के सिद्धान्तों के लिए सदस्य-राष्ट्रों की निष्ठापूर्ण स्वीकृति ही संघ को इस दृष्टि से सक्षम बनाती है कि वह शान्ति एवं सुरक्षा के लिए अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अपनी सीमाओं में रहते हुए हस्तक्षेप कर सके।

जहां तक संयुक्त राष्ट्रसंघ के संगठन अथवा उसके विभिन्न अंगों का प्रश्न है, उनका विस्तार से विवेचन आगे किया गया है। भूमिका-स्वरूप यहाँ इतना ही जान लेना पर्याप्त है कि संघ के निम्नलिखित छ: प्रधान अंग हैं-

1. महासभा
2. सुरक्षा परिषद्

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. आर्थिक एवं सामाजिक परिषद्
4. न्याय परिषद्
5. अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय
6. सचिवालय

इनके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्रसंघ सहायक अंगों की भी स्थापना कर सकता है। इसी अधिकार के अन्तर्गत अपने कर्त्तव्यों के समुचित निर्वाह के लिए संघ द्वारा अनेक विशिष्ट अभिकरण की स्थापना की गई है, जैसे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन (I. L. O), यूनेस्को (UNESCO) आदि।

1.6 सुरक्षा परिषद्

संयुक्त राष्ट्र संघ का मुख्य दायित्व अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति को बनाए रखना है और चूंकि यह कार्य प्रधानत: महाशक्तियों का है, अत: सुरक्षा परिषद् में महाशक्तियों को स्थाई सदस्यता और विशेषाधिकार से विभूषित किया गया है। सुरक्षा परिषद् की रचना संयुक्त राष्ट्र संघ के कार्यकारी और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग के रूप में की गई है तथा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा कायम रखने का मुख्य दायित्व परिषद् पर ही डाला गया है। परिषद् ने अनेक अवसरों पर इस क्षेत्र में पर्याप्त सफलता प्राप्त की है तथापि कुल मिलाकर वह अपने निर्माताओं की आशाओं के अनुकूल प्रभावी होने में असमर्थ रही है। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि संयुक्त राष्ट्रसंघीय व्यवस्था के किसी भी अंग अथवा अभिकरण ने विशेषाधिकार और क्रियान्वयन के बीच इतना अधिक अन्तर और विवाद उत्पन्न नहीं किया है जितना सुरक्षा परिषद् ने। लगभग सभी राजनीतिज्ञ और नेता यह स्वीकार करते हैं कि परिषद् आशाओं के अनुकूल सफल नहीं रही है। आखिर इस असफलता का कारण क्या है? परिषद् अपनी निर्धारित भूमिका के निर्वहन में शिथिल क्यों रही है? इन प्रश्नों का आधारभूत उत्तर सम्भवत: यही है कि महाशक्तियों की आपसी फूट तात्कालीन शीत-युद्ध और विचारधाराओं तथा क्षेत्रीय प्रश्नों पर उनकी टकराहट आदि ने सुरक्षा परिषद् को उतना प्रभावशील अंग नहीं बनने दिया है जितनी 1945 में आशा की गई थी। महायुद्धोत्तर काल में अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शंकाओं, धमकियों, खुले संघर्षों, आरोप प्रत्यारोप आदि ने जिन प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष भयों और निराशाओं को जन्म दिया है तथा विश्व के राजनीतिक पटल को जिस प्रकार कलुषित किया है, उससे सुरक्षा परिषद् के गौरव को ठेस लगना अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। आंशिक रूप से सुरक्षा परिषद् की कार्य-प्रणाली और निर्णायकारी प्रक्रिया भी इसकी शिथिलता के लिए उत्तरदायी है।

1.6.1 सुरक्षा परिषद् का क्षेत्राधिकार

किसी भी संस्था को अपना क्षेत्राधिकारी स्वयं निर्धारित करना सिद्धान्त रूप से अनुचित-सा प्रतीत होता है। सुरक्षा परिषद् तो निषेधाधिकार के कारण कभी इस निर्णय पर नहीं पहुँच सकेगी। यदि परिषद् स्थायी सदस्यों की सहमति से कोई निर्णय करती है तो घरेलू मामलों का दावा करने वाले सदस्य राष्ट्रों को धारा 25 के अनुसार उसका निर्णय स्वीकार करने एवं मानने के लिए बाध्य होना पड़ेगा, परन्तु उसके साथ यह शर्त अवश्य जुड़ी रहती है कि कोई भी सदस्य राष्ट्र उसी समय निर्णय को मानने के लिए बाध्य है यदि वह निर्णय संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुकूल हो। सम्भवत: समझा यह जाता है कि सम्बन्धित राष्ट्र स्वयं यह निर्णय करेंगे कि उक्त प्रश्न चार्टर के अनुकूल है या नहीं। प्रमुख रूप से विश्व-शान्ति एवं सुरक्षा ही उसका कार्य-क्षेत्र है। यदि सुरक्षा परिषद् अपने उत्तरदायित्व का निर्णय नहीं करती या असफलतापूर्वक करती है तो महासभा उक्त उत्तरदायित्व के निर्वाह में पीछे नहीं रहेगी। सुरक्षा परिषद केवल ऐसा निकाय नहीं है जो केवल स्वीकृत कानून का पालन करवाती हो बल्कि वह स्वयं कानून की तरह महत्त्वपूर्ण है। यदि सुरक्षा परिषद् को यह आभास हो जाता है कि विश्व को खतरा उत्पन्न हो गया है तो वह यह निर्णय की क्षमता रखती है कि उक्त स्थिति में कौन से कदम उठाए जाएँ। संयुक्त राष्ट्र के निर्माण के अवसर पर सुरक्षा परिषद् से बहुत आशाएं थीं। उत्तरदायित्व के निर्वाह में उसकी असमर्थता के कारण महासभा का महत्त्व बढ़ना बहुत स्वाभाविक है।

सुरक्षा परिषद् के क्षेत्राधिकार में आने वाले बहुत से संगठनात्मक विषयों में उसे कानूनी रूप से बाध्यकारी अधिकार प्राप्त हैं। नए राष्ट्रों को संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता प्रदान करना, महासचिव का चयन, अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति आदि सभी ऐसे कार्य हैं जो वह महासभा से मिलकर करती है- बाध्यकारी प्रभाव रखते हैं। सुरक्षा परिषद् अपने आन्तरिक मामलों का स्वयं निर्णय करती है। यद्यपि महासभा उनके सम्बन्ध में चर्चा एवं सिफारिश कर सकती है। सुरक्षा परिषद् के कार्यों की प्राथमिकता होती है यदि वह चाहे तो ऐसे किसी विषय पर स्वयं अकेले विचार कर सकती है जो अन्तर्राष्ट्रीय जीवन में शान्ति एवं सुरक्षा को प्रभावित कर सकता है। जहाँ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

तक शान्ति एवं सुरक्षा सम्बन्धी निर्णयों को लागू करने का प्रश्न है केवल सुरक्षा परिषद् ही शान्ति भंग करने वाले के विरुद्ध कठोर कार्यवाही कर सकती है। यदि विषय इतना गम्भीर नहीं है कि जिसके कारण शान्ति को खतरा हो या शान्ति भंग हो रही हो एवं आक्रमणात्मक कार्य हो रहा हो तो सुरक्षा परिषद् के अधिकार महासभा की तरह ही हैं। यदि कोई विवाद इतना गम्भीर नहीं है जिससे विश्व-शान्ति एवं सुरक्षा को भय हो तो सुरक्षा परिषद् उस पर कुछ भी कार्यवाही नहीं कर सकती। परन्तु सुरक्षा परिषद् के ऊपर इस सीमा का अर्थ इतनी उदारता से लगाया जा रहा है कि वह निरर्थक हो जाती है। जब परिस्थिति गम्भीर हो तो सुरक्षा परिषद् को यह अधिकार है कि वह कानूनी महत्त्व के निर्णय ले सके। यदि सुरक्षा परिषद् यह निर्णय करती है कि किसी परिस्थिति से विश्व-शान्ति एवं सुरक्षा को खतरा उत्पन्न हो गया है या शान्ति भंग हो रही है एवं यदि किसी राष्ट्र ने दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण कर दिया है तो उसे कूटनीतिक, आर्थिक एवं सैनिक कार्यवाही का आदेश करने का अधिकार है एवं सदस्य राष्ट्र चार्टर की इच्छानुसार उक्त निर्णय को मानने एवं लागू करने के लिए बाध्य है। यथार्थ में प्रश्न क्षेत्राधिकार का नहीं बल्कि सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्यों की इच्छा का है। फिर भी स्थायी सदस्य की इच्छा के विरुद्ध न तो कोई विषय सुरक्षा परिषद् के समक्ष लाया जा सकता एवं न ही उस पर कोई निर्णय ही लागू हो सकता है। संयुक्त राष्ट्र के निर्माण के समय ही शायद रूस को भय हो गया था कि बहुमत के आधार पर पश्चिमी शक्तियाँ अपने निर्णय अन्य राष्ट्रों पर उसकी इच्छा के विरुद्ध भी लादने का प्रयास करेंगी, इसीलिए सोवियत संघ ने सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्यों को निषेधाधिकार दिए जाने का सफल हठ किया था।

1.6.2 परिषद् के कार्य

सुरक्षा-परिषद् संयुक्त के सम्पूर्ण सदस्यों के एजेन्ट के रूप में कार्य करने का उत्तरदायित्व वहन करती है और अपने निर्णयों तथा कार्यों से संस्थागत राजनीतिक और नैतिक दबाव (An Institutionalized political and moral pressure) उत्पन्न करती है। कोई भी राज्य चाहे वह संघ का सदस्य हो अथवा नहीं विश्व-शान्ति और सुरक्षा को खतरा पैदा होने पर परिषद् को राजनीतिक और नैतिक दबाव का शिकार बना सकता है। कतिपय अपवादों को छोड़कर अभी तक परिषद् के बहुमत ने संघर्षरत या विवादी पक्षों पर संयमित दबाव डालना ही अधिक पसन्द किया है। यथासम्भव परिषद् का प्रयास यही रहा है कि परिस्थितियों से चार्टर के अनुच्छेद 6 के अनुकूल निबटा जाए और अध्याय 7 के अन्तर्गत सामूहिक कार्यवाही (Collective action) से बचा जाए।

चार्टर के अनुच्छेद 24 के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बनाए रखने का प्राथमिक उत्तरदायित्व सुरक्षा-परिषद् का है। विवादों से निबटने में परिषद् समय-समय पर विभिन्न उपायों को काम में लेती रही है। प्लानो एवं रिग्ज ने विशिष्ट उपायों में विचार-विमर्श (Deliberation), जाँच-पड़ताल या खोज-बीन (Investigation), सिफारिश (Recommendation), समझौता (Concilation), मध्यस्थता (Mediation), अपील (Appeal), तथा आदेश (Enforcement) का समावेश किया है।

चार्टर के अनुच्छेद 33 में प्रावधान है कि यदि किसी विवाद से अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व सुरक्षा को खतरा हो तो विवादी-पक्ष उसको विचार-विमर्श, पूछताछ, बीच बचाव, मेल, न्यायपूर्ण समझौतों, प्रादेशिक संस्थाओं या व्यवस्थाओं द्वारा अथवा अपनी पसन्द के अन्य शान्तिपूर्ण साधनों द्वारा सुलझाने का प्रयास करेंगे और सुरक्षा परिषद् आवश्यकता समझने पर विवादी-पक्ष से अपने विवादों को ऐसे साधनों द्वारा निपटाने की मांग करेगी। परिषद् का विचार-विमर्श सम्बन्धी कार्य सामान्यत: तभी शुरू हो जाता है जब विवादी पक्षों को अपने मामले परिषद् के सम्मुख प्रस्तुत करने के लिए आमन्त्रित किया जाता है। परिषद् में होने वाली बहस का उद्देश्य इस बात का निर्धारण करना नहीं होता है कि कौन-सा पक्ष सही अथवा गलत है, बल्कि यह पता लगाना होता है कि विवादी-पक्षों में समझौते या राजीनामे के लिए सामान्य आधार-स्थल क्या है। विवादी-पक्षों द्वारा अपने प्रस्तुतीकरण और उन पर बहस आदि से एक ऐसा वातावरण बन जाने की सम्भावना रहती है जिससे परस्पर शांतिपूर्ण समझौते का मार्ग प्रशस्त हो जाए। यह भी हो सकता है कि उनसे केवल परिषद के सदस्यों की कठिन प्रकृति, विवादी पक्षों के मुद्दों पर मतभेद अथवा दोनों पक्षों द्वारा प्रस्तुत किए गए तथ्यों की आधारभूत असमानताओं का ही ज्ञान हो सके।

अनुच्छेद 34 के अनुसार सुरक्षा-परिषद् किसी भी विवाद अथवा स्थिति की जाँच-पड़ताल (Investigation) कर सकती है जो अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष का रूप ले सकता हो अथवा जिससे कोई दूसरा विवाद उठ सकता हो। परिषद् इस बात को भी निश्चित करता है कि ये विवाद अथवा स्थिति जारी रहे तो उससे विश्व की शान्ति और सुरक्षा को कोई खतरा पैदा हो सकता है या नहीं। ऐसे विवाद अथवा इस प्रकार की कोई स्थिति पैदा होने पर अनुच्छेद 36 के अनुसार सुरक्षा परिषद् किसी भी समय उसके लिए उचित कार्यवाही करने या उसके समाधान के उपायों की सिफारिश कर सकती है। इस अनुच्छेद के अन्तर्गत सिफारिश करते समय परिषद् को इस बात का भी विचार करना

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

चाहिए कि विवादी पक्षों द्वारा कानूनी विवादों को न्यायालय के विधान के उपबन्धों के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के सामने पेश किया जाए। आवश्यक जाँच-पड़ताल के लिए परिषद् का अध्यक्ष विवादी पक्षों से पूछताछ कर सकता है अथवा इस उद्देश्य के लिए एक समिति अथवा आयोग भी नियुक्त किया जा सकता है। यह भी हो सकता है कि समिति अथवा आयोग को संघर्ष-स्थल पर तथ्यों की जाँच के लिए भेजा जाए। जाँच-पड़ताल के उपायों द्वारा यद्यपि परिषद् विवाद से सम्बन्धित सभी तथ्यों का एकदम सही मूल्यांकन नहीं कर पाती फिर भी ऐसे स्थिति में पहुँचने की गुँजाइश रहती है कि परिषद् कामचलाऊ समाधान की दिशा में अग्रसर हो सके।

चार्टर का अध्याय 7 (अनुच्छेद 39 से 51 तक) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति-भंग, शान्ति-भंग के सम्भावित खतरे तथा आक्रामण कार्यवाहियों के सम्बन्ध में परिषद् द्वारा कार्यवाही की जाने से सम्बन्धित है। अनुच्छेद 39 के अनुसार परिषद् इस बात का निर्णय करेगी कि कौनसी चेष्टाएँ शान्ति को खतरे में डालने वाली, शान्ति-भंग करने वाली और आक्रमण की चेष्टाएं समझी जा सकती हैं। वही सिफारिश करेगी और तय करेगी कि अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा कायम करने अथवा फिर से स्थापित करने के अनुच्छेद 41-42 के अनुसार कौनसी कार्यवाही की जानी चाहिए। अनुच्छेद 40 में व्यवस्था है कि किसी स्थिति को बिगड़ने से बचाने के लिए सुरक्षा परिषद् अपनी सिफारिशें करने अथवा किसी कार्यवाही का निश्चय करने से पूर्व विवादी पक्षों से ऐसी अस्थायी कार्यवाहियाँ करने की माँग करेगी जिन्हें वह उचित या आवश्यक समझें। इन अस्थायी कार्यवाहियों से विवादी-पक्षों के अधिकारों दावों या उनकी स्थिति का कोई अहित नहीं होगा। यदि कोई पक्ष इस प्रकार की अस्थायी कार्यवाहियाँ नहीं करता है, तो सुरक्षा परिषद् इसका विधिवत् ध्यान रखेगी।

अनुच्छेद 41 के अनुसार सुरक्षा परिषद् अपने फैसलों पर अमल कराने के लिए ऐसी कार्यवाही भी कर सकती है जिसमें सशस्त्र सेना का प्रयोग न हो। वह संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्यों से इस प्रकार की कार्यवाही करने की माँग कर सकती है जिनके अनुसार आर्थिक सम्बन्ध पूर्ण अथवा आंशिक रूप से समाप्त किए जा सकते हैं, समुद्र, वायु, डाक, तार, रेडियों और यातायात के साधन पर रोक लगाई जा सकती है अथवा राजनीतिक सम्बन्ध-विच्छेद भी किया जा सकता है। अनुच्छेद 42 में उल्लिखित है कि यदि अनुच्छेद 41 में उल्लिखित कार्यवाहियाँ सुरक्षा परिषद् की दृष्टि से पर्याप्त न हों अथवा अपर्याप्त सिद्ध हो गई हों तो अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा बनाए रखने या पुनः स्थापित करने के लिए वह जल, थल और वायु सेनाओं की सहायता से आवश्यक कार्यवाही कर सकती है। इस कार्यवाही में संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य देशों की जल, थल और नभ सेना विरोध-प्रदर्शन कर सकती हैं, घेरा डाल सकती है अथवा अन्य दूसरे प्रकार की कार्यवाहियाँ कर सकती हैं। सैनिक स्टॉफ समिति (Military Staff Committee), जिसमें स्थायी सदस्यों के Chiefs of Staff होते हैं, सुरक्षा परिषद् के इन कार्यों में सहायता देती हैं। परिषद् का अब तक का इतिहास साक्षी है कि सैन्य-कार्यवाही से बचने का हर सम्भव प्रयत्न किया जाता रहा है। वास्तव में सामूहिक सैनिक कार्यवाही करने में यह भय रहता है कि कहीं परिषद् अपनी मुख्य भूमिका में असफल न हो जाए क्योंकि सामूहिक सुरक्षा सिद्धान्त में यह धारणा निहित है कि कानून भंग करने वाले सभी अथवा अधिकांश राज्य, सामूहिक कार्यवाही का खतरा उपस्थित होने पर, अपने आक्रामण कार्यों से बाज आएँगे। संयुक्त राष्ट्रसंघ के इतिहास में सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर प्रथम बार सैनिक कार्यवाही तब की गई थी जब उत्तरी कोरिया की फौजें, जून, 1950 में अतिक्रमण कर गई। अनुच्छेद 41 एवं 42 के प्रसंग में अनुच्छेद 51 भी की व्यवस्था ध्यान देने योग्य है। इसमें यह उल्लिखित है कि यदि संयुक्त राष्ट्रसंघ के किसी सदस्य पर कोई सशस्त्र आक्रामण होता है तो वह व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप से आत्मरक्षा करने का अधिकारी है और उस राष्ट्र पर तब तक कोई रोक नहीं लगाई जायेगी। जब तक सुरक्षा परिषद् अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा के लिए स्वयं कोई कार्यवाही न करे। आत्मरक्षा के लिए सदस्य जो भी कार्यवाही करेंगे उसकी सूचना तुरन्त परिषद् को दी जाएगी लेकिन इससे परिषद् के अधिकारों और दायित्वों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा और वह अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा स्थापित रखने या पुनः स्थापित करने के लिए आवश्कतानुसार कार्यवाही कर सकेगी। चीबर तथा हैवीलैण्ड के अनुसार अनुच्छेद 51 की यह व्यवस्था पोल या कमजोरी (Loophole) है जिससे अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के प्रतिरोधक चरित्र को भारी आघात पहुँचा है।[1]

अनुच्छेद 43 के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा कायम रखने में सहयोग देने के लिए संघ के सब सदस्यों का यह कर्त्तव्य है कि सुरक्षा परिषद् के मांगने पर और विशेष समझौते अथवा समझौतों के अनुसार अपनी सशस्त्र सेनाएं, सहायता तथा अन्य सुविधाएं उपलब्ध कराएंगे जिनमें मार्ग-अधिकार भी शामिल होगे। सेनाओं की संख्या, उनके प्रकार, उनकी तैयारी और स्थिति आदि के बारे में निश्चय समझौते द्वारा किए जाएँगे और इस प्रकार के समझौतों की बातचीत सुरक्षा परिषद् की प्रेरणा से जल्दी शुरू की जानी चाहिए। ये समझौते परिषद् और सदस्यों अथवा परिषद् तथा सदस्य-दलों के बीच होंगे और इन पर अमल तभी किया जा सकेगा जब हस्ताक्षरकर्त्ता राष्ट्र अपनी-अपनी वैधानिक प्रक्रियाओं द्वारा इनकी पुष्टि कर देंगे। अनुच्छेद 45 में यह भी व्यवस्था है कि सदस्य सामुदिक अन्तर्राष्ट्रीय कार्यवाही के लिए अपनी राष्ट्रीय वायुसेना के दल जल्दी से जल्दी उपलब्ध कराएँगे ताकि संयुक्त राष्ट्र संघ तुरन्त सैनिक कार्यवाही कर

Jai Vishwa Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सके। इन सैनिक दलों की संख्या, तैयारी आदि के बारे में निश्चय के लिए परिषद को उसकी सैनिक स्टॉफ समिति मदद देगी। सैन्य स्टॉफ समिति की मदद से ही सामूहिक कार्यवाही के लिए योजनाएँ तैयार की जाएँगी।

जब सुरक्षा परिषद् किसी राष्ट्र के विरुद्ध रोक-थाम की या अपने निर्णयों पर अमल कराने की कोई कार्यवाही कर रही हो, उस समय हो सकता है कि किसी दूसरे राष्ट्र के सामने कुछ विशेष आर्थिक समस्याएँ उठ खड़ी हों। अत: अनुच्छेद 50 में यह व्यवस्था दी गई है कि ऐसी स्थिति में उस राष्ट्र को, चाहे वह संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य है या नहीं, उसे अपनी समस्याओं को हल करने के लिए सुरक्षा परिषद् से सलाह लेने का अधिकार होगा। स्थायी विवादों के समाधान के लिए सुरक्षा परिषद् माध्यम के रूप में प्रादेशिक संगठन और एजेंसियों का उपयोग कर सकती है। इसके अतिरिक्त प्रादेशिक संगठन व एजेंसियाँ अपने क्षेत्रों में शान्ति और सुरक्षा बनाए रखने की दिशा में जो भी कदम उठाती हैं, उनकी सूचना उन्हें नियमित रूप से सुरक्षा परिषद् को देनी पड़ती है।

सामरिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों के सम्बन्ध में संयुक्त राष्ट्रसंघ ने जो दायित्व ग्रहण किए हैं, उन्हें निभाने का भार भी सुरक्षा परिषद् पर ही है। संरक्षित प्रदेशों को किसी भी राष्ट्र के संरक्षण में देते समय संरक्षण सम्बन्धी शर्तें भी सुरक्षा परिषद् द्वारा ही तय की जाती है। वही इन शर्तों में फेर-बदल या संशोधन कर सकती है। यदि सामरिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कुछ ऐसे क्षेत्र संयुक्त राष्ट्रसंघ के संरक्षण में हों तो इन क्षेत्रों की राजीनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक प्रगति के लिए सुरक्षा परिषद् उनके साथ मिलकर आवश्यक कदम उठा सकती है।

चार्टर ने जहाँ सुरक्षा परिषद् पर शान्ति और सुरक्षा के मामलों का मुख्य दायित्व डाला है, वहाँ इसे अपेक्षाकृत कुछ कम महत्त्वपूर्ण शक्तियों से भी विभूषित किया है जिनमें से अधिकांश का प्रयोग वह महासभा के साथ मिलकर करती है। ये कार्य निर्वाचनात्मक (Elective), प्रेरणात्मक या प्राम्भिक (Initiatory) और निरीक्षणात्मक (Superviory) हैं। निर्माताओं द्वारा परिषद् को ये कार्य इस दृष्टि से सौंपे गए हैं कि महाशक्तियां महत्त्वपूर्ण संगठनात्मक मामलों पर अपना कुछ नियन्त्रण रख सकें। महासचिव द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीश चुनाव में परिषद् का मुख्य हाथ रहता है।

1.7 महासभा

महासभा को, जिसे सीनेटर वेण्डेन वर्ग ने 'संसार की नागरिक सभा' की संज्ञा दी है और 1987 के मध्य में जिसमें विश्व के 159 राष्ट्र अपनी सदस्यता ग्रहण किए थे, संयुक्त राष्ट्र संघ की व्यवस्थापिका सभा कहा जा सकता है, यद्यपि इसके प्रस्तावों को बाध्यकारी सत्ता प्राप्त नहीं है। संयुक्त राष्ट्र संघ के सभी सदस्य महासभा के सदस्य होते हैं। प्रत्येक सदस्य-राज्य को महासभा में 5 प्रतिनिधि तथा 5 वैकल्पिक प्रतिनिधि (Alternate Delegates) भेजने का अधिकार है, किन्तु उसका मत एक ही होता है। महासभा का एक अध्यक्ष और 7 उपाध्यक्ष होते हैं। प्रतिनिधि, प्रत्येक अधिवेशन के लिए अपना सभापति चुनते हैं। पहले अधिवेशन के सभापति श्री पाल हेनरी स्पाक थे। 8 वें अधिवेशन के लिए भारतीय प्रतिनिधि श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित को सभापति निर्वाचित किया गया था। विश्व की वे पहली और अभी तक एकमात्र महिला हैं जिन्हें इस प्रकार का सम्मान प्राप्त हुआ है।

महासभा का अधिवेशन वर्ष में एक बार सितम्बर माह में आरम्भ होता है। वर्ष में एक अधिवेशन होना तो अनिवार्य है ही, परन्तु महामन्त्री सुरक्षा परिषद् की अथवा संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्यों के बहुमत की प्रार्थना पर विशेष अधिवेशन भी आयोजित कर सकता है। महासभा के अब तक के इतिहास में अनेक बार इसके विशेष अधिवेशन हो चुके हैं। उदाहरणार्थ, जून, 1967 में अरब-इजराइल संघर्ष पर विचार करने के लिए इसका विशेष अधिवेशन हुआ था।

1.7.1 महासभा में मतदान-पद्धति

महासभा में 'एक राज्य, एक वोट' के सिद्धान्तों देकर छोटे-बडे राष्ट्रों का भेद मिटा दिया गया है। महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के निर्णय के लिए उपस्थित सदस्यों का दो-तिहाई बहुमत और साधारणा प्रश्नों के निर्णय के लिए साधारण बहुमत पर्याप्त होता है। चार्टर के अनुच्छेद 18 के अनुसार महत्त्वपूर्ण प्रश्न ये हैं-(1) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के रक्षा सम्बन्धी सिफारिशें, (2) सुरक्षा परिषद् के अस्थाई सदस्यों का चुनाव, (3) आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् के सदस्यों का चुनाव, (4) संरक्षण परिषद् के सदस्यों का चुनाव, (5) संयुक्त राष्ट्रसंघ के नए सदस्य बनाना, (6) सदस्यों के अधिकारों और सुविधाओं का स्थान, एवं (7) संरक्षण-व्यवस्था के कार्यान्वयन सम्बन्धी प्रश्न। बजट सम्बन्धी अनुच्छेद 19 के अनुसार उस सदस्य को, जिसने संयुक्त राष्ट्र संघ को पूरा चन्दा ना दिया हो, मत देने का अधिकार नहीं होता। किन्तु महासभा किसी ऐसे सदस्य को मत देने की अनुमति प्रदान कर सकती है जिसकी तरफ से उसे यह सन्तोष हो कि चन्दे का भुगतान

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

करना सदस्य-राष्ट्र की शक्ति के बाहर है। यह भी व्यवस्था है कि यदि किसी विषय को महत्त्वपूर्ण प्रश्न में शामिल करना है तो साधारण बहुमत से ऐसा किया जा सकती है।

1.7.2 महासभा की समितियाँ

महासभा की समिति-संरचना, अनेक उल्लेखनीय परिवर्तनों के बावजूद, लीग की समिति-संरचना से मिलती-जुलती है। आज महासभा का कार्य 7 मुख्य समितियों में विभाजित है जिनमें प्रत्येक सदस्य-राज्य अपना एक प्रतिनिधि भेज सकता है। ये मुख्य समितियाँ इस प्रकार है-

1. राजनीतिक और सुरक्षा-समिति (Political and Security Committee)
2. आर्थिक और वित्तीय समिति (Economic and Financial Committee)
3. सामाजिक, मानवीय एवं सांस्कृतिक समिति (Social, Humanitarian and Cultural Committee)
4. न्यास समिति (Trusteeship Committee)
5. प्रशासनिक एवं बजट समिति (Administrative and Budgetary Committtee)
6. वैधानिक समिति (Legal Committee)
7. विशेष राजनीतिक समिति (Special Political Committee)

इसके अतिरिक्त दो अन्य प्रक्रियात्मक (Procedural) समितियाँ भी होती हैं- सामान्य समिति एवं प्रमाण-पत्र समिति। सामान्य-समिति का कार्य महासभा और उसकी विभिन्न समितियों को कार्यवाहियों में समन्वय स्थापित करना होता है। प्रमाण-पत्र समिति (Credential Committee) प्रतिनिधियों के प्रमाण-पत्रों जाँच करती है। महासभा अथवा उसकी किसी भी अन्य समिति द्वारा विशेष उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए काम चलाऊ समितियों की नियुक्ति की जा सकती है। ऐसी समितियों के उदाहरण हैं- संघीय विज्ञान परामर्शदात्री समितियों, अणुशक्ति के शान्तिपूर्ण प्रयोग सम्बन्धी परामर्शदात्री समिति, कोरिया के एकीकरण तथा पुनसंस्थान सम्बन्धी संघीय आयोग, फिलिस्तीन के लिए संघीय आयोजन आदि। काम चलाऊ एवं उप-समितियों का न्यायपूर्ण और समुचित प्रयोग वास्तव में मुख्य समितियों के कार्य-वाहन की क्षमता बढ़ाने का सर्वोत्तम तरीका है।

1.8 महासभा के कार्य

महासभा के कार्यों की प्रकृति मुख्य रूप से निरीक्षणात्मक एवं अन्वेषणात्मक है। यह संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर के कार्य-क्षेत्र में निहित सभी प्रश्नों पर विचार कर सकती है। इनमें किसी भी उपाँग के कार्यों और अधिकारों से सम्बन्धित विषय भी सम्मिलित है। प्लानों एवं रिग्ज ने असेम्बली के कार्यों को 9 भागों में वर्गीकृत किया है। (1) प्रबोधक (Horatory) (2) अर्द्धन्यायिक (Quasi-legislative) (3) अन्वेणात्मक (Investigatory) (4) मध्यस्थता सम्बन्धी और समन्वयात्मक (Inerpositional and Concilatory) (5) शान्ति-रक्षा सम्बन्धी (Peace Presevative) (6) बजट सम्बन्धी (Budgetary) (7) निरीक्षणात्मक (Supervisory) (8) निर्वाचन सम्बन्धी (Elective) एवं (9) संवैधानिक (Constituent)

महासभा सदस्य-राज्यों, गैर-सदस्य-राज्यों, महाशक्तियों, सुरक्षा परिषद् और अन्य अंगों यहां तक कि स्वयं अपने लिए ही प्रबोधन कार्यों (Inexthortation) में लगी रहती है। कभी-कभी "Manifestoes against sin" कहे जाने वाले प्रस्तावों के माध्यम से महासभा ऐसी भूमिका अदा करती है जिसे उसके समानार्थक चार्टर के सिद्धान्तों और मानव-समाज की चेतना की सुरक्षा के रूप में स्वीकार करते हैं और विरोधी सबक समझकर ठुकरा देते हैं। इस प्रकार के प्रस्तावों द्वारा महासभा ने अनेक बार सुरक्षा-परिषद के स्थाई सदस्यों को अपने निषेधाधिकार का प्रयोग संयम के साथ करने, महाशक्तियों को अपना युद्ध-प्रचार रोकने, सभी राज्यों की शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की अवधारण स्वीकार करने एवं संघर्षशील पक्षों को अपने विवादों का चार्टर के सिद्धान्तों के अनुकूल शान्तिपूर्ण ढंग से समाधान करने के लिए प्रबोधन दिया है।

महासभा के अर्द्ध न्यायिक कार्य विशेष प्रस्तावों, घोषणाओं और परम्पराओं द्वारा संचालित होते हैं। इन कार्यों का उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय कानून का विकास और संहिताकरण करना तथा मानव-अधिकारों और आधारभूत स्वतन्त्रताओं की रक्षा करना है। अपनी इस भूमिका के निर्वाह में महासभा बहुत कुछ एक राष्ट्रीय व्यवस्थापिका की विधि-निर्मात्री प्रवृति के अनुकूल आचरण करती है। महासभा द्वारा अनेक ऐसे प्रस्ताव Convention पारित किए जाते हैं, जैसे जाति-संहार सम्मेलन (The Genocide Convention) जिनके द्वारा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

राष्ट्रीय, जातीय अथवा धार्मिक समूहों की सामूहिक हत्या को अवैध करार दिया गया है और जो सदस्य राज्यों द्वारा अनुसमर्थित किए जाने के बाद अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में एक कानून की भाँति प्रभावी हो जाते हैं। अनेक प्रस्ताव (Resolutions) सदस्य-राज्यों द्वारा वैधानिक रूप से प्रयुक्त किए जाने होते हैं ताकि व्यक्तियों के आचरण अन्तर्राष्ट्रीय स्तर (International Standards) पर लागू हो सकें। उदाहरण के लिए 1948 की मानव-अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा (The Universal Declaration of Human Rights) महासभा के प्रबोधक और अर्द्ध-न्यायिक कार्यों के सन्दर्भ में एक ऐसा प्रयास मानी जा सकती है जिसका उद्देश्य इन सिद्धान्तों को कानून के समान प्रभावी बनाना है। अभी तक मानव-अधिकारों से सम्बन्धित अनेक संविदाएं (Covenants) बनाई जा चुकी हैं अथवा आर्थिक एवं सामाजिक परिषद् के आयोगों द्वारा बनाई जा रही हैं ताकि उन पर महासभा की स्वीकृति और सदस्य-राज्यों का अनुसमर्थन प्राप्त जा सके। प्लानो एवं रिग्ज की मान्यता है कि यदि सदस्यों में परस्पर सहमति और कार्य करने की इच्छा हो तो महासभा में अपने सीमित अर्द्ध-न्यायिक क्षेत्र में विश्व-संसद के रूप में कार्य कर सकती है।

अन्तर्राष्ट्रीय कानून क्रमिक विकास और संहिताकरण के क्षेत्र में महासभा का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है कि वह इस बात का अध्ययन करती रहती है कि ऐसे कौन से कानून हो सकते हैं जिन्हें सभी राष्ट्रों की स्वीकृति प्राप्त हो जाएगी। महासभा ऐसे कानूनों को क्रमबद्ध रूप से रखकर उन्हें सदस्य राष्ट्रों के समक्ष स्वीकृति के लिए सिफारिश के तौर पर भेजती है। अपने इस दायित्व का निर्वहन महासभा चार्टर की धारा 13 के अन्तर्गत करती है। महासभा के अन्वेषणात्मक कार्य इसके अर्द्ध-न्यायिक और विवाद-समाधान कार्यों के पूरक हैं। अन्वेषणात्मक भूमिका का सर्वोत्तम उदाहरण महासभा का अन्तर्राष्ट्रीय विधि-आयोग (International Low Commission) है जो 1948 से ही अन्तर्राष्ट्रीय कानून के विकास और संहिताकरण की दिशा में कार्यरत है। आयोग के सदस्य अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त और राष्ट्रीय कानूनों के अधिकारी विद्वान होते हैं। आयोग संहिता-बद्ध होने योग्य विषय के सम्बन्ध में अपनी सिफारिशें महासभा के सम्मुख प्रस्तुत करता है। ऐसा करते समय सम्बन्धित पूर्व उदाहरणों सन्धियों, न्यायाधीशों के निर्णयों और विद्यमान-मतभेदों तथा विवादों का उल्लेख किया जाता है। आयोग को यह भी काम सौंपा गया है कि वह औपचारिक अन्तर्राष्ट्रीय कानून का प्रतिपादन करने वाली सामग्री को संकलित और प्रकाशित करे। विशेषत: विवादों के समाधान के क्षेत्र में अन्वेषणा अथवा खोजबीज (Investigation) का विशेष महत्त्व है क्योंकि इसके आधार पर विवादों तथा वर्तमान तथ्यों को भली प्रकार समझा जा सकता है और एक न्यायपूर्ण तथा उचित हल खोजा जा सकता है।

महासभा की मध्यस्थता और समन्वय के विशिष्ट कार्य विवादों के समाधान से सम्बन्धित हैं और उनका प्रयोग सुरक्षा-परिषद् के कार्यों की भाँति किया जाता है। महासभा का हस्तक्षेप उस समय आवश्यक हो जाता है जब सुरक्षा-परिषद् किसी गम्भीर गतिरोध अथवा अन्य विवादों से व्यक्त कार्यक्रम (A deadlock or a full agenda) के कारण कार्य करने में असमर्थ रहती है। महासभा की शान्ति रक्षा सम्बन्धी भूमिका विशेष रूप में महत्त्वपूर्ण है। महासभा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिए खतरा उपस्थित करने वाले प्रत्येक समस्या पर सुरक्षा-परिषद् अथवा किसी सदस्य-राष्ट्र के अनुरोध पर या चार्टर की 35वीं धारा के अनुसार ऐसे किसी भी राष्ट्र के अनुरोध पर भी, जो संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य नहीं है, विचार करने का अधिकार रखती है। यह आवश्यक है कि ऐसी किसी भी शिकायत पर, जिसके बारे में महासभा कुछ कार्यवाही करना आवश्यक समझती है, सुरक्षा परिषद् में बहस के पहले अथवा बाद में परामर्श अवश्य किया जाना चाहिए। गुडरिच तथा हिनबरों के अनुसार, ''महासभा एक सार्वजनिक सभा-स्थल ही नहीं है बल्कि इसने अपने आपको निश्चय लेने योग्य भी प्रमाणित कर दिया है। विश्व-शान्ति और सुरक्षा को स्थापित रखने में भी इसने महत्त्वपूर्ण योग दिया है।'' स्वेज नहर के संकट के समय महासभा ने जो कार्य किया उससे यह सिद्ध हो गया कि यह संघ का एक प्रभावशाली अंग है। स्पेन, यूनान, हंगरी, फिलीस्तीन आदि की महत्त्वपूर्ण समस्या महासभा में प्रस्तुत हुई जिनमें से कुछ को इतने बड़ी सफलतापूर्वक सुलझाया। संयुक्त राष्ट्रसंघीय आपात सेना (United Nations Emergency force : UNEF) की स्थापना महासभा के प्रयत्नों के फलस्वरूप ही हुई है। महासभा ने विभिन्न विवादों में जो समन्वयात्मक भूमिका अदा की है, उसमें विभिन्न तकनीकों का प्रयोग होता रहा है, जैसे मध्यस्थता, पूछताछ और मध्यस्थता आयोगों की स्थापना, युद्ध-विराम के आदेश, राष्ट्रों से सहयोग के लिए आह्वान, विश्व-विख्यात और निष्पक्ष व्यक्तियों की मध्यस्थों के रूप में नियुक्ति आदि।

चार्टर की 11वीं धारा के अनुसार महासभा विश्व-शान्ति और सुरक्षा को स्थापित करने के सिद्धान्त पर विचार कर सकती है। वह नि:शस्त्रीकरण और शस्त्रों के नियन्त्रण पर विचार कर सकती है तथा इन सिद्धान्तों के बारे में संघ के सदस्यों तथा सुरक्षा-परिषद् अथवा दोनों से सिफारिश कर सकती है। चार्टर के 12 वें अनुच्छेद द्वारा महासभा की शक्तियों पर यह प्रतिबन्ध है कि यदि कोई परिस्थिति अथवा विवाद सुरक्षा-परिषद् के विचाराधीन है तो महासभा उसके सम्बन्ध में तब तक कोई सिफारिश नहीं करेगी जब तक परिषद् उससे ऐसा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

करने के लिए न कहे। अनुच्छेद 84 के अनुसार यदि किसी कारणवश कोई ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो जाए जिससे महासभा की राय में राष्ट्रों के साधारण हितों या राष्ट्रों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को ठेस पहुंचती है तो 12 वें अनुच्छेद के उपबन्धों के अधीन महासभा उस परिस्थिति के शान्तिपूर्वक समाधान के लिए सिफारिश कर सकती है।

महासभा बजट सम्बन्धी कार्य एक राष्ट्रीय व्यवस्थापिका की परम्परागत धन सम्बन्धी शक्ति (Power of the Purse) के समान है। संघ की आर्थिक व्यवस्था का संचालन महासभा के हाथों में रहता है। महासभा को संघ तथा अनुच्छेद 57 में वर्णित विशेष एजेन्सियों के वार्षिक बजट पर विचार और निर्णय करने का अधिकार है। वही इस बात का निर्णय करती है कि किसी देश को संघ के व्यय का कितना भाग वहन करना चाहिए।

चार्टर के अनुच्छेद 13 के अनुसार राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक और स्वास्थ्य सम्बन्धी क्षेत्रों में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को प्रोत्साहन देने के लिए महासभा प्रारम्भिक अध्ययन द्वारा जाँच-पड़ताल की व्यवस्था कर सकती है तथा इस विषय में अपनी सिफारिशें भी प्रस्तुत कर सकती है। साथ ही, जाति, लिंग, भाषा, धर्म आदि का भेदभाव किए बिना समाज को मानव-अधिकार और मौलिक स्वतन्त्रताएं दिलाने में सहायता देना इसका कर्त्तव्य है।

चार्टर के अनुच्छेद 57 के अधीन अन्तर्सरकारी समझौते द्वारा विस्तृत अन्तर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्वों से सम्पन्न आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी क्षेत्रों में महासभा द्वारा विशेष माध्यम खोले जाने का आदेश दिया जा सकता है। आर्थिक एवं सामाजिक परिषद् में इनमें किसी भी माध्यम के साथ समझौता कर उसे संयुक्त राष्ट्रसंघ से सम्बन्धित बना सकती है। ऐसे समझौतों के प्रति महासभा का अनुमोदन आवश्यक है। महासभा को अधिकार है कि वह माध्यमों की नीति और गतिविधियों को परस्पर सहयोग पूर्ण बनाने के लिए आवश्यक सिफारिशें करे।

चार्टर के अनुच्छेद 85 के अनुसार न्यास-समझौते की शर्तों और उनमें परिवर्तन तथा संशोधन के अनुमोदन सहित युद्ध के लिए सैनिक-क्षेत्रों के न्यास-समझौतों के जितने भी संयुक्त राष्ट्रसंघ के दायित्वों हों, उनको महासभा पूरा करती है। इस सम्बन्ध में यह भी व्यवस्था है कि महासभा के अधीन काम करते हुए न्यास-परिषद् उन कार्यों को पूरा करने में महासभा की सहायता करेगी।

अनुच्छेद 15 के अनुसार महासभा परिषद् से उन कार्यवाहियों के सम्बन्ध में वार्षिक और विशेष रिपोर्ट मांग सकती है जो सुरक्षा-परिषद ने अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा और शान्ति को स्थापित करने के लिए की हों, महासभा संघ के दूसरे भागों से भी उनकी रिपोर्ट मांग सकती है तथा उन पर विचार कर सकती है। सचिवालय का मुख्य कार्य महासभा की सेवा में संलग्न रहना है और उसका नियन्त्रण महासभा द्वारा ही होता है। सचिवालय के संगठन और कार्यों के सम्बन्ध में निर्णय उसके बजट, उसके संयुक्त राष्ट्रसंघ से सम्बन्धित कार्यों आदि का नियमन, नियन्त्रण सब कुछ महासभा द्वारा ही किया जाता है। सम्पूर्ण संयुक्त राष्ट्रसंघीय संगठन का निरीक्षणात्मक उत्तरदायित्व महासभा पर ही है।

महासभा दोहरे चुनाव सम्बन्धी कार्य (A tow-fold election function) करती है। इस कार्य के प्रथम पहलू में संयुकत राष्ट्रसंघ में नए सदस्यों का प्रवेश अथवा निर्वाचन शामिल है। दूसरा पहलू संघ के अन्य अंगों के निर्वाचक सदस्यों (Elective members) के चयन से सम्बन्धित है। महासभा उपस्थित सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत तथा सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्यों की सहमति से अधिक तथा सामाजिक परिषद् के सदस्यों एवं न्यास-परिषद् के निर्वाचक सदस्यों का चयन करती है। पृथक् मतदान द्वारा महासभा और सुरक्षा परिषद् न्यायालय के न्यायाधीशों का निर्वाचन करती है। महासभा सुरक्षा-परिषद् के परामर्श पर संघ के महासचिव की नियुक्ति करती है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर में संशोधन करने की सिफारिश भी महासभा द्वारा की जा सकती है। इस सम्बन्ध में यह आवश्क है कि महासभा के दो तिहाई सदस्यों द्वारा इसका समर्थन किया जाए। यह दो-तिहाई बहुमत प्राप्त हो पर ही संशोधन सुरक्षा परिषद में विचारार्थ उपस्थित किया जा सकता है। चार्टर में संशोधन करने के लिए महासभा सुरक्षा-परिषद की अनुमति से ही सम्मेलन बुला सकती है। सुरक्षा-परिषद् में भी दो-तिहाई बहुमत से (जिसमें 5 बड़े का होना आवश्यक है) स्वीकृति होने पर ही चार्टर में संशोधन किया जा सकता है।

1.9 लघुसभा

महासभा की शक्तियों के प्रसंग में 'लघुसभा' को ध्यान में रखना आवश्यक है। निषेधाधिकार के प्रयोग और महाशक्तियों की आपसी खींचतान के फलस्वरूप जब इस बात की आशंका की जाने लगी कि सुरक्षा-परिषद आक्रमणों को रोकने और शान्ति के शत्रुओं

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

का सामना करने के लिए एकमत नहीं हो सकती और न कोई कार्यवाही ही कर सकती है, तब 13 नवम्बर, 1947 को महासभा द्वारा एक 'अन्तरिम समिति' (Interim Committee) नामक एक नए सहायक अंग की स्थापना की गई जिसे सामान्यत: 'लघुसभा' कहा जाता है। इस अन्तरिम समिति अथवा लघुसभा पर यह उत्तरदायित्व डाला गया कि वह महासभा के अधिवेशन न होने के समय शान्ति और सुरक्षा के प्रश्नों पर अपने सुझाव प्रस्तुत करे। अपने कार्यों के समुचित निर्वहन के लिए जाँच-पड़ताल आयोग नियुक्त करने, आवश्यक खोज-बीन करने तथा महामन्त्री को महासभा का विशेष अधिवेशन बुलाने की सिफारिश करने का अधिकार दे सकती है। इस स्थिति को सुस्पष्ट करने के लिए महासभा ने यह भी निश्चय किया कि ''अन्तरिम समिति चार्टर के अनुसार सुरक्षा परिषद् के दायित्वों का ध्यान रखेगी।'' समिति में महासभा के प्रत्येक सदस्य राष्ट्र को अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार प्रदान किया गया।

यद्यपि अन्तरिम समिति का निर्माण महासभा के एक लघु संस्कारण के रूप में हुआ और यह सोचा गया कि सदैव अधिवेशन में रहने वाली यह स्थायी संस्था महासभा के कार्यों और दायित्वों को अधिक गतिशील एवं प्रभावी बना सकेगी, तथापि सोवियत गुट के देशों द्वारा इसकी वैधानिकता को कभी स्वीकार नहीं किया गया। प्रारम्भ में यह एक वर्ष के लिए निर्मित हुई थी परन्तु बाद में भी चालू रही। यह 1949 में पुनर्गठित हुई, लेकिन 1952 के बाद इसकी कोई बैठक नहीं की गई। प्रारम्भ में इस समिति ने इतना अधिक कार्य किया कि इसके स्थाई बनने की सम्भावना होने लगी, लेकिन रूस और उसके समर्थक देश तीव्र विरोध करते रहे। कालान्तर में इसका कार्य विभिन्न नियमित एवं विशेष समितियों तथा आयोगों द्वारा सम्भाला गया।

शान्ति के लिए एकता का प्रस्ताव

महासभा की शक्तियों में उल्लेखनीय वृद्धि 3 नवम्बर, 1950 के 'शान्ति के लिए एकता' (Uniting for Peace) प्रस्ताव पारित होने के लिए बाद हुई जो इस प्रकार है-''शान्ति को खतरा, शान्ति-भंग अथवा आक्रमण की विभीषिका के सम्बन्ध में स्थाई सदस्यों के एकमत न होने के कारण यदि सुरक्षा-परिषद् कार्य-संचालन में असफल रहे तो महासभा तुरन्त ही उस पर विचार कर सकती है और सामूहिक कदम उठाने के लिए उचित सिफारिशें कर सकती है तथा शान्ति एवं आक्रमण होने की अवस्था में शक्ति के प्रयोग की सिफारिश कर सकती है ताकि अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा कायम रहे।'' प्रस्ताव के अनुसार सुरक्षा परिषद् के किन्हीं सात साधारण मतों से अथवा संघ के सदस्यों के बहुमत से 24 घण्टे के नोटिस पर महासभा का संकटकालीन अधिवेशन बुलाया जा सकता है।

इस प्रस्ताव में अन्तर्राष्ट्रीय तनाव वाले क्षेत्रों की स्थिति का निरीक्षण कर रिपोर्ट देने के लिए 14 सदस्यीय 'शान्ति निरीक्षण आयोग'(Peace observation Commission) की व्यवस्था भी की गई है। प्रस्ताव के तीसरे (सी) भाग के अनुसार संघ द्वारा सदस्य-राष्ट्रों से यह प्रार्थना की गई है कि वे आवश्यकता पड़ने पर सुरक्षा-परिषद् की सिफारिश के अधीन कार्यवाही करने के लिए सुशिक्षित सेना प्रदान करे।

'शान्ति के लिए एकता प्रस्ताव' ने महासभा की स्थिति को सुरक्षा-परिषद् से अधिक महत्त्वपूर्ण बना दिया है। इस बात की सम्भावना कम हो गई है कि महाशक्तियों के निषेधाधिकार के निरन्तर प्रयोग से सुरक्षा परिषद को एकदम निष्क्रिय बनाकर अपना उल्लू सीधा करती रहें। महासभा में निषेधाधिकार की व्यवस्था नहीं है, अत: शान्ति के लिए एकता प्रस्ताव के अन्तर्गत महासभा अपने आपात्कालीन अधिवेशन में समस्या पर विचार कर सकती है। यद्यपि इस प्रस्ताव ने निषेधाधिकार की शक्ति को समाप्त नहीं किया है, तथापि इससे उत्पन्न गतिरोध को दूर करने का एक हल अवश्य निकाल लिया है। पुनश्च, यद्यपि महासभा सम्बन्धित समस्या पर केवल सिफारिशें ही करती है तथापि इन सिफारिशों को सुगमता से टकराया नहीं जा सकता क्योंकि वे विश्व-जनमत का प्रतीक होती हैं। नवम्बर, 1956 को मिस्र पर इजराइल, ग्रेट-ब्रिटेन और फ्रांस का संयुक्त आक्रमण होने पर महासभा ने अपने विशेष अधिवेशन में इस प्रस्ताव के अनुसार कार्य करते हुए सफलतापूर्वक शान्ति स्थापित की थी।

1.10 आर्थिक तथा सामाजिक परिषद्

संयुक्त राष्ट्र के चार्टर की रचना करते समय यह अनुभव किया गया था कि आर्थिक व सामाजिक अवस्थाओं का अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है, क्योंकि आर्थिक दरिद्रता, सामाजिक असन्तोष तथा विषमता विश्व में नैराश्य की भावना को जन्म देते हैं और तनावों का कारण बनते हैं। अत: अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिए आर्थिक विपन्नता, आर्थिक असमानता तथा सामाजिक असमानता को समाप्त करना आवश्यक है, अत: संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अनुच्छेद 55 में यह व्यवस्था की गई है कि संयुक्त राष्ट्र स्थायित्व तथा कल्याण की अवस्थाओं को, जो राष्ट्रों के मध्य शान्तिपूर्ण व मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों के लिए अपरिहार्य है, उत्पन्न करने में सहायता प्रदान करेगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

वास्तविकता तो यह है कि यह अनुभूति नई नहीं थी अपितु राष्ट्र संघ में भी आर्थिक व सामाजिक परिस्थितियों के महत्त्व को समझा गया था और इस दृष्टि से प्रयास भी किए गए थे। संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में व्यवस्था तो मात्र इस तथ्य की पुष्टि की थी कि ''विश्व की आर्थिक तथा सामाजिक समस्याओं का समाधान किए बिना विश्व शान्ति की कल्पना करना दिवा स्वप्न है।''

आर्थिक व सामाजिक परिषद् (Economic and Social Council ECOSOC) संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रमुख अभिकरणों में से एक है। यह संयुक्त राष्ट्र की महासभा के निर्देशन में कार्य करती है तथा आर्थिक, सामाजिक व मानवतावादी विषयों का प्रतिवेदन महासभा के वार्षिक अधिवेशन में प्रस्तुत करती है।

1.10.1 उद्देश्य

आर्थिक व सामाजिक परिषद एक प्रकार से समन्वयी अभिकरण है। इसके उद्देश्य निम्नाकित हैं–

(अ) उच्च जीवन स्तर, पूर्ण रोजगार, आर्थिक व सामाजिक प्रगति एवं विकास की अवस्थाएं,

(ब) अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक एवं स्वास्थ्य और उनसे सम्बन्धित समस्याओं का समाधान तथा अन्तर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक और शिक्षा सम्बन्धी सहयोग,

(स) जाति, लिंग, भाषा या धर्म के पक्षपात के बिना मानव अधिकारों और मौलिक स्वतन्त्रताओं के लिए सम्मान भाव की अभिवृद्धि करना तथा सर्वत्र उनका पालन कराना।

उद्देश्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि परिषद को अत्यधिक महत्त्व का उत्तरदायित्व सौंपा गया है क्योंकि विश्व शान्ति के मूल में आर्थिक व सामाजिक परिस्थितियाँ ही मूल है। यदि उनका समाधान उचित प्रकार से हो सके तो विश्व शान्ति की स्थापना सम्भव हो सकती है।

1.10.2 सदस्यता

संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् के लिए 18 सदस्यों की व्यवस्था की गई थी। 1965 के संशोधन द्वारा सदस्यों की संख्या 27 कर दी गई। पुन: 1971 में चार्टर में संशोधन करके सदस्यों की संख्या 54 कर दी गई। इन संशोधनों का उद्देश्य यही था कि संयुक्त राष्ट्र की सदस्य संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही थी और सभी क्षेत्रों को इनमें उचित प्रतिनिधित्व दिया जा सके। यह सदस्य महासभा द्वारा तीन वर्ष के लिए निर्वाचित किए जाते आर्थिक एवं सामाजिक परिषद्, न्यास-परिषद तथा अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय 193 हैं। सदस्य पुन: निर्वाचित हो सकते हैं किन्तु स्थाई सदस्यता का प्रावधान इस परिषद् में नहीं है। पुनर्निवाचन की व्यवस्था के कारण कुछ शक्तिशाली एवं औद्योगिक दृष्टि से विकसित देश इसके स्थाई सदस्य बन गए हैं। प्रत्येक राष्ट्र परिषद् के लिए एक प्रतिनिधि भेजता है। एक प्रतिनिधि-एक मत के अनुसार सभी राष्ट्र इसमें समान हैं। इसका वर्ष में दो बार अधिवेशन होता है। कोई भी प्रस्ताव साधारण बहुमत से पारित होता है। अपने कार्यों के लिए यह महासभा के प्रति उत्तरदायी है।

अपने कार्यों को सम्पादित करने के लिए परिषद् ने क्षेत्रीय आर्थिक आयोगों तथा कार्यात्मक आयोगों का गठन किया है। क्षेत्रीय आयोग चार हैं जो इस प्रकार हैं- यूरोप के लिए आर्थिक आयोग (E.C.E.), एशिया तथा सुदूर पूर्व के लिए आर्थिक आयोग (E. C. A. F. E.), लेटिन अमेरिका के लिए आर्थिक आयोग (E. C. L. A.) तथा अफ्रीका के लिए आर्थिक आयोग (E. C. E.)। कार्यालय आयोग आठ हैं जो इस प्रकार हैं- सांख्यिकी आयोग, जनसंख्या आयोग, परिवहन तथा संचार आयोग, सामाजिक आयोग, स्त्रियों की स्थिति विषयक आयोग, मूर्च्छाकारी औषधि आयोग, मानव अधिकार आयोग तथा भेदभाव के निवारण एवं अल्पसंख्यकों की सुरक्षा सम्बन्धी उप-आयोग तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार आयोग। यह परिषद स्थाई समितियों, अस्थाई समितियों तथा विशेष समितियों के माध्यम से भी अपने उत्तरदायित्व को पूरा करने का प्रयास करती है।

1.10.3 परिषद के कार्य

आर्थिक व सामाजिक परिषद् के कार्यों के विषय में वानडेनवोच तथा होगन ने अपनी पुस्तक "The United Nations" में लिखा है कि परिषद के कार्य तीन प्रकार के हैं। इन तीनों का कार्यों का संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. अध्ययन तथा प्रतिवेदन– संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 62 के द्वारा परिषद् को अध्ययन तथा प्रतिवेदन का कार्य सौंपा गया है। अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, स्वास्थ्य आदि विषयों का परिषद अध्ययन कर सकती है और अपना प्रतिवेदन राष्ट्र सभा को प्रस्तुत कर सकती है। इस परिषद् ने विश्व शरणार्थी समस्या, विश्व में आवासीय गृहों की अपर्याप्तता, युद्ध में ध्वस्त क्षेत्रों के पुनर्निर्माण व महिलाओं की आर्थिक व सामाजिक समस्याओं का समय-समय पर अध्ययन किया है।

आर्थिक व सामाजिक परिषद् ने द्वितीय महायुद्ध के बाद 'लुप्त व्यक्तियों' की मृत्यु से सम्बन्धित घोषणा का प्रारूप अध्ययन व तथ्य एकत्रित करके तैयार किया जिसने समस्या के समाधान में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह स्वीकार करना होगा कि परिषद् ने व्यावहारिक रूप से विश्व की समस्याओं का अध्ययन किया है। परिषद् की धारणा है कि विश्व के कुछ देशों में व्याप्त निर्धनता तथा कुछ प्रदेशों में प्रतिरोध का मूल कारण सामाजिक तनाव है जो आन्तरिक व बाह्य दोनों क्षेत्रों में प्रतिद्वन्द्विता को जन्म देते हैं और विश्व शान्ति में बाधक हैं। इस दृष्टि से कुछ संस्थाओं तथा यन्त्रावलियों में आवश्यक सुधार करना अपरिहार्य है।

2. विचार-विमर्श तथा संस्तुतियाँ– संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के 62वें अनुच्छेद में एक व्यवस्था यह है कि आर्थिक व सामाजिक परिषद महासभा, संयुक्त राष्ट्र के सदस्य राष्ट्रों तथा विशिष्ट अभिकरणों को आर्थिक, सामाजिक, स्वास्थ्य, सांस्कृतिक, शैक्षिक आदि विषयों पर संस्तुति कर सकती है। परिषद मानव अधिकारों तथा व्यक्ति की मौलिक स्वतन्त्रताओं के प्रति सम्मान में वृद्धि करने तथा उनके पालन कराने के लिए संस्तुति कर सकती है। परिषद की कोई संस्तुति अथवा निर्णय बाध्यकारी नहीं है। इस परिषद की उपयोगिता इसी में हैं कि इसकी संस्तुतियों को सदस्य राष्ट्र स्वीकार करे तथा उन्हें क्रियान्वित करावे। परिषद् सदस्य राज्यों को मानने व समझाने की प्रक्रिया ही अपनाती है। अत: इसी दृष्टि से परिषद् अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग व सद्भावना में वृद्धि करने का कार्य करती है।

परिषद् अपने अधिकार क्षेत्र में आने वाले विषयों पर अभिसमयों का प्रारूप तैयार करती है जिससे कि उन्हें महासभा के विचारार्थ प्रस्तुत किया जा सके। वह अपने कार्य क्षेत्र के अन्तर्गत कार्यों के लिए नियमों के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों का आयोजन भी कर सकती है। इस प्रकार के सम्मेलनों के द्वारा वह अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का मार्ग प्रशस्त करती है। यह विचार-विमर्श एवं संस्तुति का एक महत्त्वपूर्ण उपकरण है। इससे विश्व की समस्याओं का व्यापक सन्दर्भ में समझने व उनके निराकरण करने का अवसर प्राप्त होता है। विश्व जनमत को चेतनायुक्त बनाने में भी इससे सहयोग मिलता है।

3. समन्वय अथवा तालमेल– संयुक्त राष्ट्र के विशिष्ट अभिकरण विविध क्षेत्रों में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्य करते हैं। परिषद् उनके मध्य समन्वय करने का महत्त्वपूर्ण कार्य करती है। चार्टर के अनुच्छेद 57 के अनुसार परिषद् विशिष्ट अभिकरण से समझौते भी कर सकती है और परिषद् ने समझौते किए भी हैं। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ (I. L. O.), यूनेस्को (UNESCO), विश्व स्वास्थ्य संगठन (W. H. O.), खाद्य एवं कृषि संगठन (F. A. O.), विश्व डाक संघ (U. P. U.), पुनर्निर्माण व विकास का अन्तर्राष्ट्रीय बैंक (I. B. R. D), अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (I. M. F.) आदि ऐसी संस्थाएं हैं जिनसे परिषद ने समझौते किए हैं। इन समझौतों का उद्देश्य इन विशिष्ट अभिकरणों को निश्चित दिशा में कार्य करने की प्रेरणा देना है तथा इनके मध्य समन्वय स्थापित करना है जिनसे आर्थिक व सामाजिक समस्याओं का समन्वित हल हो सके और मानव मात्र का हित हो सके। परिषद् इन अभिकरणों से प्रतिवेदन माँग सकती है तथा संयुक्त राष्ट्र के सदस्य राज्यों को इन अभिकरणों की सेवाएं उपलब्ध करा सकती है। गैर-सरकारी संगठनों से भी सीधे विचार-विमर्श कर सकती है।

परिषद् का कार्य सरल नहीं है, अपितु जटिल है क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक व सामाजिक समस्याएँ नित्य जटिल होती जा रही है और उनका समन्वित हल खोजना एक जटिल प्रश्न है। परिषद् सरकारी तथा गैर सरकारी दोनों प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में कार्य करती है ताकि उसके द्वारा मानव मात्र की समस्याएं हल हों। डेनियल एस. चीवर्स तथा एच. फील्ड हैवीलैण्ड सदृश विद्वानों की धारणा है कि परिषद पर सरकारी संस्थाओं तथा संयुक्त राष्ट्र के अभिकरणों से सम्बद्ध कार्य इतना अधिक है कि गैर-सरकारी संगठनों के कार्यों व सुझावों पर परिषद् प्रभावी पग नहीं उठा सकी है। उनकी भूमिका सकारात्मक योगदान देने की अपेक्षा परामर्शक की रही है। कतिपय संगठनों ने प्रकाश की अपेक्षा ऊष्मा उत्पन्न की है। फिर भी यह कहना उचित होगा कि परिषद् ने इन संगठनों का सहयोग प्राप्त करने का सदैव प्रयास किया।

अध्ययन, प्रतिवेदन, विचार-विमर्श, संस्तुतियाँ, सम्मेलन तथा समन्वय गतिविधियाँ प्रमुख उपकरणों के माध्यम से आर्थिक व सामाजिक परिषद् ने अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, स्वास्थ्य तथा तत्सम्बन्धी क्षेत्रों में सराहनीय कार्य किया है। विश्व भर में वैषम्य व विविधता है। समस्याएँ व्यापक व उलझी हुई हैं और उस पर राजनीतिक प्रभाव परिषद् के कार्य को अधिक जटिल बना देता है। कभी-कभी सम्बन्धित राज्य द्वारा असहयोग भी उसके कार्य को कठिन बना देता है। परिषद् कोई सत्तायुक्त संस्था नहीं है जो अपने निर्णयों को किसी पर थोप सके। परिषद तो अपने कार्य का सतत् प्रयास समझाने की प्रक्रिया व आग्रह करके ही करा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सकती है। इसमें उसे पर्याप्त सफलता भी प्राप्त हुई है। संयुक्त राष्ट्र के राजनीतिक कार्य भले ही सन्तोषप्रद न भी हो तथापि संयुक्त राष्ट्र संघ की आर्थिक, सांस्कृतिक तथा मानवतावादी परियोजनाओं की सफलता हमारे विश्वास की पुष्टि करते हैं कि विश्व के राष्ट्र एक-दूसरे के सुखों में सहभागी होते हुए तथा दुख में एक-दूसरे की सहायता करते हुए मिलजुल कर चलते रहने को सदैव तत्पर हैं, इस दृष्टि से आर्थिक व सामाजिक परिषद् का कार्य उल्लेखनीय है।

महासभा के अधीनस्थ होने के कारण यह महासभा के कार्यों को सम्पूर्ण करने की अपेक्षा उनकी पुनरावृत्ति करती है। यह गाड़ी का पाँचवाँ पहिया है आदि वाक्यों एवं आलोचना से परिषद् को निरर्थक सिद्ध करने का प्रयास किया जाता है। यह आलोचना वास्तव में विश्व की परिस्थितियों को सही परिप्रेक्ष्य में न देखने के कारण की जाती है। विश्व की प्रवृत्तियों व शक्ति संरचना को देखते हुए आर्थिक व सामाजिक परिषद् का कार्य महत्त्वपूर्ण है, प्रशंसनीय है। अन्तर्राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने में उसका योगदान अतुलनीय है।

परिषद् की स्थायी समितियों में मुख्य है- प्राविधिक सहायता समिति, अन्तर्राष्ट्रीय संस्था से सम्पर्क करने वाली समिति, गैर-सरकारी संगठन या संस्थाओं से सस्म्बन्धित परामर्श समिति, कार्य-सूची समिति और अन्तरिम कार्यक्रम समिति। इन समितियों में प्राविधिक समिति सबसे महत्त्वपूर्ण है। प्रो. फेनविक का यह मत सही है कि आर्थिक व सामाजिक परिषद् कोई नीति निर्धारित करने वाली संस्था नहीं है, वरन् विशिष्ट समिति के समान है जिसका उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक एवं सामाजिक सहयोग के क्षेत्र में व्यावहारिक कार्य करना है। कुछ समालोचकों का मत है कि यह परिषद् ''बातूनी सुरक्षा परिषद् की मौन बहिन है।''

1.11 न्यास-परिषद्

चार्टर के अध्याय 12 के अनुच्छेद 75 से 85 तक अन्तर्राष्ट्रीय न्यास व्यवस्था (International Tuusteeship System) और अध्याय 13 के अनुच्छेद 86 से 91 तक न्यास परिषद् के संगठन, कार्य एवं अधिकार, मतदान, कार्यविधि आदि पर प्रकाश डाला गया है। पहले राष्ट्रसंघ में संरक्षण-व्यवस्था (Mandate System) थी और न्यास व्यवस्था बहुत कुछ इसी के स्थान पर अपनाई गई है जिसका मुख्य सिद्धान्त यह है कि विश्व में अनेक पिछड़े हुए तथा अविकसित प्रदेश का विकास तभी सम्भव है जब सभ्य और उन्नत देश उन्हें सहयोग प्रदान करें। अत: उन्नत देशों का यह कर्त्तव्य है कि वे स्वयं को न्यासी समझकर अविकसित प्रदेशों के हितों की देख-भाल करते हुए उनके विकास में हर सम्भव सहयोग दें। राष्ट्रसंघ की संरक्षण-व्यवस्था और वर्तमान न्यास-व्यवस्था में एक बड़ा अन्तर यह है कि जहाँ संरक्षण-व्यवस्था केवल जर्मनी, टर्की आदि से पीड़ित प्रदेशों के लिए थी, वहाँ न्यास-व्यवस्था का क्षेत्र उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद द्वारा पराधीन बनाए गए सभी क्षेत्रों के लिए है। न्यास-व्यवस्था के मूल उद्देश्य हैं-

(क) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा में वृद्धि करना,

(ख) न्यास प्रदेशों के निवासियों का स्वशासन की दिशा में विकास करना,

(ग) मानव-अधिकारों और मूल स्वतन्त्रताओं के प्रति सम्मान की भावना को प्रोत्साहन देना तथा यह भाव जाग्रत करना कि संसार के सभी लोग अन्योन्याश्रित हैं, एवं

(घ) सामाजिक, आर्थिक, वाणिज्यिक मामलों में संयुक्त राष्ट्र संघ के सब सदस्यों और उनके नागरिकों के प्रति समानता के व्यवहार का विश्वास दिलवाना।

न्यास-व्यवस्था में सम्मिलित प्रदेश दो भागों में विभाजित हैं- अस्वशासित प्रदेश (Non-Self Governing Territories) एवं न्यास या सुरक्षित प्रदेश (Trust Territories)। प्रथम प्रकार के प्रदेश (अस्वशासित पराधीन प्रदेश तथा उपनिवेश जो सुरक्षित प्रदेश बना दिए गए हों) ब्रिटेन, फ्राँस पश्चिमी देशों के साम्राज्य के अन्तर्गत है। दूसरे प्रकार के अर्थात् न्यास-प्रदेश वे है जो सम्बन्धित राज्यों के बीच हुए न्यास समझौतों द्वारा न्यास प्रदेश बना दिए जाते हैं और इन पर महासभा की स्वीकृति अनिवार्य है। कुछ वर्ष पूर्व न्यास व्यवस्था के अन्तर्गत न्यूगिनी, रुआपडाउरुण्डी, फ्रेंच कैमरुन्स, फ्रेंच टोगोलैण्ड, पश्चिमी समोआ, टाँगानिका ब्रिटिश फैमरुन्स, नौरु प्रशान्त महासागरीय द्वीप, सुमालीलैण्ड, टोगोलैण्ड नामक 11 देश थे। ये सभी स्वतन्त्रता प्राप्त कर चुके हैं।

1.11.1 संगठन एवं कार्य

न्यास-परिषद् मार्च, 1947 से कार्य कर रही है। इस परिषद् में संघ के निम्नलिखित सदस्य शामिल हो सकते हैं-

(1) सुरक्षा-परिषद् के स्थायी सदस्य, चाहे वे न्यास प्रदेश पर प्रशासन करते हों अथवा नहीं।

(2) संयुक्त राष्ट्रसंघ के वे सदस्य जो न्यास क्षेत्र का प्रशासन करते हों।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(3) महासभा द्वारा तीन वर्ष के लिए निर्धारित किए जाने वाले उतने सदस्य जितने न्यास परिषद् में न्यास-प्रदेशों पर शासन करने और करने वाले सदस्यों की संख्या को समान करने के लिए आवश्यक हों।

चार्टर की धारा 9 में न्यास-परिषद् की मतदान प्रणाली का उल्लेख किया गया है। इसके अनुसार परिषद् के प्रत्येक सदस्य का एक मत होगा। इसके निर्णय परिषद् में उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों के बहुमत से होंगे। न्यास-परिषद् अपनी कार्यविधि के नियम स्वयं बनाती है। अपने अध्यक्ष चुनने का तरीका भी वह स्वयं निर्धारित करती है। न्यास-परिषद् की बैठकें नियमानुसार होती है। सदस्यों की प्रार्थना पर विशेष बैठक भी बुलाई जा सकती है। यह परिषद् आवश्यकतानुसार आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् और अन्य संस्थाओं से सहायता ले सकती है। आर्थिक एवं सामाजिक परिषद् को अधिकार है कि वह समस्त आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं का अध्ययन करें अथवा उनके विषय में अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करे। यदि इस परिषद् को न्यास भू-भागों के सम्बन्ध में विशेष सिफारिश करनी हो तो इसे न्यास-परिषद् की सम्मति लेनी पड़ेगी। यदि न्यास-प्रदेशों के सम्बन्ध में मानव अधिकारों, महिलाओं की स्थिति आदि के बारे में याचिकाएँ हों तो उन पर सबसे पहले न्यास-परिषद् में विचार किया जाएगा। यह व्यवस्था है कि विशेष अभिकरणों को संयुक्त राष्ट्र के क्षेत्राधिकार में लाने के लिए जो विचार-विमर्श किया जाए उसमें न्यास परिषद तथा आर्थिक एवं सामाजिक परिषद् के प्रतिनिधि साथ-साथ सम्मिलित हो सकते है। चार्टर के अनुसार महासभा ने न्यास-परिषद् को यह भी अधिकार प्रदान किया है कि वह अपनी वैधानिक समस्याओं पर परामर्श के लिए अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय से प्रार्थना करे।

1.11.2 कार्य एवं अधिकार

न्यास-परिषद् महासभा से आदेश प्राप्त करती है और न्यास-प्रदेशों के शासन की देख-रेख करती है। प्रशासी अधिकारी अपने प्रतिवेदन प्रतिवर्ष न्यास-परिषद् के समक्ष प्रस्तुत करते हैं जिन पर आवश्यक विचार-विमर्श के पश्चात् परिषद महासभा और सुरक्षा परिषद् को अपनी सिफारिशें भेजती है। न्यास परिषद् की सिफारिशें इस प्रकार की होती हैं, जैसे मूल निवासियों को सरकार के विभिन्न अंगों में स्थान दिया जाए, उनके वेतन एवं जीवन-सतर को उच्च बनाया जाए, चिकित्सा तथा अधिक लाभप्रद स्वास्थ्य सेवाएं सुलभ की जाएं, दण्ड व्यवस्था में सुधार हो, सामाजिक कुरीतियों का अन्त कर मूल निवासियों की कला एवं संस्कृति को प्रोत्साहन दिया जाए आदि। न्यास-परिषद् ने न्यास भू-भागों में होने वाले अणुविस्फोटों पर भी विचार-विमर्श किया था।

न्यास-परिषद् का दूसरा मुख्य कार्य न्यास प्रदेशों के निवासियों की लिखित एवं मौखिक याचिकाओं पर विचार करना है। यह परिषद् का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य है जिसके माध्यम से परिषद् और न्यास प्रदेशों की जनता के मध्य सीधा सम्पर्क स्थापित होता है। अपने अल्पकाल में न्यास-परिषद् ने विभिन्न प्रश्नों से सम्बन्धित हजारों याचिकाओं पर विचार किया जिनमें कुछ व्यक्तिगत थीं और कुछ, साधारण। परिषद् ने सब प्रकार की याचिकाओं पर पूरा ध्यान देने का प्रयत्न किया है।

न्यास-परिषद् का तीसरा महत्त्वपूर्ण कार्य न्यास प्रदेशों को समय-समय पर निरीक्षण मण्डल (Visiting Missions) भेजना है। इन मण्डलों के माध्यम से पराधीन प्रदेशों पर अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण रखा जाता है। इनको परिषद् की आँख और कान कहा जाता है। न्यास-परिषद् के प्रति उत्तरदायी होने के कारण ये स्वतन्त्र और निष्पक्ष अन्वेषण कर सकते हैं तथा न्यास-प्रदेशों के आर्थिक विकास, शिक्षा-प्रसार, श्रम-व्यवस्था, सामाजिक-सुधार, भूमि-सुधार, आदि से सम्बन्धित नीतियों का अध्ययन करते हैं और सुधार के लिए आवश्यक सुझाव देते हैं। पिछड़े हुए प्रदेशों की जटिल समस्याओं का ज्ञान होने में इन निरीक्षक मण्डलों से बड़ी सहायता मिली है। डब्लू. एफ. कोटरल महोदय के अनुसार, ''जब निरीक्षक मण्डल न्यास भू-भागों का भ्रमण करता है तो वहाँ की जनता को ऐसा लगता है मानों संयुक्त राष्ट्र ही उनके समक्ष आ गया।''[1] राष्ट्रसंघ के अन्तर्गत ऐसा कभी नहीं होता था।

न्यास-परिषद् महत्त्वपूर्ण निर्णय स्वयं ही करती है तथा अपने कार्य को तत्परता से सम्पन्न करने अथवा किसी विशेष समस्या को हल करने के लिए समय-समय पर इसने कई समितियाँ स्थापित की हैं- शिक्षा समिति, ग्रामीण विकास समिति एवं प्रशासी-संघ समिति। महासभा की चौथी समिति तथा स्वयं महासभा ने न्यास-व्यवस्था के विकास में काफी योग दिया है। न्यास-परिषद् ने अपने 34 वर्ष के कार्यकाल में बहुत उपयोगी कार्य किए। महासभा जनरल सी. पी. रोम्यूलो के अनुसार ''न्यास-व्यवस्था ने शीघ्रता से विकास किया है और यह विकास विश्व में राजनीतिक नैतिकता का ऊँचा मानदण्ड है।'' इस परिषद् के गम्भीर प्रयासों, महाशक्तियों के सहयोग तथा बदलती हुई राजनीतिक परिस्थितियों के फलस्वरूप आज सभी न्यास भू-भाग स्वाधीन कर दिय गए हैं और अब वह समय दूर नहीं हैं जब न्यास-व्यवस्था को समाप्त करना पड़े क्योंकि इसके लिए तब तक कोई कार्य शेष नहीं रह जाएगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1.12 अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय

यह संयुक्त राष्ट्रसंघ का न्यायिक अंग है। यह वही पुरात्व अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय है जिसे राष्ट्रसंघ ने 1921 में हेग में स्थापित किया गया। नवीन न्यायालय अपने पूर्ववर्ती की अपेक्षा कई प्रकार से अधिक दोष-मुक्त है। इसकी स्थापना संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर तथा न्यायालय सम्बन्धी परिशिष्ट आधार पर की गई है। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का कार्य-क्षेत्र संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्य-राष्ट्रों के सभी विवादों तक व्याप्त है। गैर-सदस्य राज्य को भी सुरक्षा-परिषद् की सिफारिश पर अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का पक्ष बनाया जा सकता है। केवल राज्य ही इस न्यायालय के विचारणीय पक्ष हो सकते हैं, व्यक्ति नहीं।

1.12.1 संगठन एवं कार्य-प्रणाली

इस न्यायालय में 15 न्यायाधीश होते हैं जिनका चुनाव सुरक्षा-परिषद् एवं महासभा द्वारा 9 वर्ष के लिए किया जाता है किन्तु कार्यविधि की समाप्ति के बाद वे पुनः निर्वाचित हो सकते हैं। न्यायाधीशों का चुनाव करते समय उनकी राष्ट्रीयता पर विचार नहीं किया जाता है। एक राज्य से दो न्यायाधीश नहीं लिए जा सकते। यह प्रयत्न किया जाता है कि अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की न्याय-व्यवस्था में विश्व की सभी न्याय-व्यवस्थाओं को प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जाए। न्यायाधीश अपने पद पर रहते हुए किसी अन्य व्यवसाय में भाग नहीं ले सकते। न्यायाधीश को पदच्युत भी किया जा सकता है जब यह सदस्यों की सर्वसम्मति से आवश्यक शर्तों को भंग करने की दोषी पाया जाए। न्यायाधीशों को अनेक विशेषाधिकार और उन्मुक्तियाँ प्राप्त हैं। न्यायालय के विधान के अनुसार इसमें 15 न्यायाधीशों के अतिरिक्त अस्थाई न्यायाधीश नियुक्त करने की भी व्यवस्था है। यदि न्यायालय में किसी ऐसे राज्य का मामला विचारणीय है जिसका 15 न्यायाधीशों में प्रतिनिधित्व नहीं है तो वह मामले की सुनवाई के समय अस्थाई न्यायाधीश के रूप में अथवा एक कानूनी विशेषज्ञ नियुक्त करा सकता है। यह न्यायाधीश मामले की सुनवाई समाप्त होते ही पद-मुक्त हो सकता है। मामले के सम्बन्ध में उसकी कानूनी राय ली जाती है किन्तु निर्णय में उसका कोई हाथ नहीं रहता। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की गणपूर्ति संख्या 9 है। जब तक इतने न्यायाधीश नहीं होते, न्यायालय की कार्यवाही आरम्भ नहीं की जा सकती। न्यायालय में सभी निर्णय बहुमत से लिए जाते हैं। बहुमत न होने पर सभापति का निर्णायक मत मान्य होता है। न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध कोई अपील नहीं की जा सकती। विशेष परिस्थितियाँ उत्पन्न होने पर न्यायालय अपने निर्णयों पर पुनर्विचार कर सकता है।

न्यायालय की भाषा फ्रेंच तथा अंग्रेजी है। अन्य भाषाओं को भी अधिकृत रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय अपनी कार्यविधि और नियमावली स्वयं तैयार करता है। न्यायालय का व्यय महासभा द्वारा निर्धारित अनुपात में संयुक्त संघ द्वारा वहन किया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय से न्याय प्राप्त करने के अधिकारी देशों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है-

1. वे सभी राष्ट्र जो अन्तर्राष्ट्रीय सुविधाओं का प्रयोग करने की शक्ति स्वयं ही प्राप्त कर लेते हैं तथा जिन्होंने संघ के चार्टर पर हस्ताक्षर कर दिए हैं। हस्ताक्षर होते ही यह मान लिया जाता है कि सम्बन्धित देश ने अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय सम्बन्धी कानूनी व्यवस्था को स्वीकार कर लिया है।
2. वे राष्ट्र जिन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय सम्बन्धी कानून पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं, किन्तु सुरक्षा परिषद् द्वारा निर्धारित शर्तों पर अपने विवादों में अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में विचारार्थ उपस्थित किए जाने की बात स्वीकार कर ली है।
3. वे राष्ट्र जिन्होंने संघ के घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं, परन्तु जो अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय सम्बन्धी कानून पर हस्ताक्षर पर न्यायालय की सुविधाओं का उपयोग करने के लिए उत्सुक हैं।

1.12.2 न्यायिक निर्णय का निष्पादन

संयुक्त राष्ट्रसंघ के निर्णयों को क्रियान्वित करने के लिए संघ के चार्टर की धारा 94 में व्यवस्था की गई है। इसके अनुसार संघ का प्रत्येक सदस्य यह प्रतिज्ञा करता है कि वह किसी मामले में विवादी होने पर अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के फैसले को मानेगा। यदि एक पक्ष न्यायालय के निर्णय को नहीं मानता तो दूसरा पक्ष सुरक्षा परिषद् की सहायता ले सकता है। सुरक्षा-परिषद् आवश्यकतानुसार सिफारिश अथवा कार्यवाही करती है। न्यायालय के निर्णय यद्यपि सर्वसम्मति से लिए जाते हैं, फिर भी प्रत्येक न्यायाधीश निर्णय-पत्र के साथ अपना पृथक् विचार संलग्न कर सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

न्यायालय के निर्णय को कार्यान्वित कराने के लिए आवश्यक कार्यवाही का निश्चय करते समय सुरक्षा-परिषद् के सदस्यों की स्वीकृति आवश्यक है किन्तु इनमें से पाँच स्थाई सदस्य होने चाहिए, क्रियान्विति के उपाय धारा 41 तथा 42 में उल्लिखित हैं। प्रथम के अनुसार सुरक्षा-परिषद् सैनिक बल प्रयोग को छोड़कर ऐसे उपायों का प्रयोग कर सकती है जिनमें आर्थिक सम्बन्ध, रेल, समुद्र, डाक, रेडियो, यातायात के साधन तथा राजनीतिक सम्बन्ध का विच्छेद शमिल है। यदि ये उपाय असफल हो जाएँ तो धारा 42 के अनुसार सुरक्षा-परिषद् जल, स्थल और वायुसेना द्वारा ऐसी कार्यवाही कर सकती है जो अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा के लिए आवश्यक हो।

1.12.3 न्यायालय का क्षेत्राधिकार

जैसा कि रोजने ने लिखा है- क्षेत्राधिकार से हमारा तात्पर्य न्यायालय की उस शक्ति से है जिससे वह किसी वाद में, अधिकारी निर्णय देता है। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को यह शक्ति राज्यों की सहमति द्वारा प्राप्त होती है। राज्यों को अपने विवादों को न्यायालय के सम्मुख करने को न तो संयुक्त राष्ट्र चार्टर और न ही तत्कालीन अन्तर्राष्ट्रीय विधि का कोई नियम बाध्य करता है। डॉ. एस. के. क्यूट ने ठीक ही लिखा है कि अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय सही अर्थ में विश्व न्यायालय है और विश्व के सभी राज्यों के लिए खुला हुआ है। परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की संविधि के अनुच्छेद 34 के अनुसार केवल राज्य ही अपनी समस्याएँ इनके सम्मुख ला सकते हैं, अर्थात् व्यक्ति इस न्यायालय में अपनी समस्याओं के निवारण के लिए वाद नहीं ला सकते हैं, और राज्य भी कुछ सीमित परिस्थितियों में अपनी समस्याओं को इसके सम्मुख प्रस्तुत कर सकते हैं। राज्यों के अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के अंग तथा विशिष्ट एजेन्सियाँ भी अपने क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत प्रश्नों पर अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय से सलाहकारी मत प्राप्त कर सकते हैं। संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 96 के अनुसार महासभा तथा सुरक्षा परिषद् अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय से किसी विविध प्रश्न पर सलाहकारी मत के लिए कह सकती है। इसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र के दूसरे अंग तथा विशिष्ट एजेन्सियाँ भी सलाहकारी मत प्राप्त कर सकते हैं यदि महासभा उन्हें ऐसे अधिकार प्रदान करती है।

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के क्षेत्राधिकार को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है- (क) ऐच्छिक क्षेत्राधिकार, (ख) अनिवार्य क्षेत्राधिकार, एवं (ग) परामर्शात्मक क्षेत्राधिकार।

(क) ऐच्छिक क्षेत्राधिकार- अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की संविधा की धारा 36 के अनुसार न्यायालय उन सभी मामलों पर विचार कर सकता है। जिनको सम्बन्धित राज्य न्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत करें।

(ख) अनिवार्य क्षेत्राधिकार- राज्य स्वयं घोषणा करके इन क्षेत्रों में न्यायालय के आवश्यक क्षेत्राधिकार को स्वीकार कर लेता है। ये हैं- सन्धि की व्याख्या, अन्तर्राष्ट्रीय कानून के क्षेत्र से सम्बन्धित सभी मामले, ऐसे तथ्य का अस्तित्व जिसके सिद्ध होने पर किसी अन्तर्राष्ट्रीय कर्त्तव्य का उल्लंघन कर समरूप माना जाए तथा किसी अन्तर्राष्ट्रीय विधि के उल्लंघन पर क्षतिपूर्ति का रूप और परिणाम। प्रो. ओपेहेम ने तो न्यायालय के इस क्षेत्राधिकार को वैकल्पित आवश्यक क्षेत्राधिकार (Optional Compulsory Jurisdicition) कहा है। यह वैकल्पिक इसीलिए है क्योंकि यह उन्हीं राज्यों पर लागू होता है जो उपरोक्त घोषणा करें और लागू तभी होता है जब विवाद से सम्बन्धित अन्य राज्य भी इस प्रकार की घोषणा कर चुका हो। यह आवश्यक इसलिए है क्योंकि जो राज्य इस प्रकार की घोषणा कर चुका है उससे सम्बन्धित विवाद किसी विशेष समझौते बिना भी न्यायालय के समक्ष लाए जा सकते हैं।

राज्य इस प्रकार की घोषणा करते समय कोई भी शर्त लगा सकता है। कभी-कभी इस शर्त के कारण ये घोषणाएँ वास्तविक व्यवहार में निरर्थक बन जाती है। प्रो. ओपेनहेम का मत है कि सशर्त होते हुए भी वैकल्पित धारा अनिवार्य न्यायिक निर्णय की सर्वाधिक व्यापक और महत्त्वपूर्ण व्यवस्था है। वैकल्पिक धारा के कारण अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने जो उत्तरदायित्व ग्रहण किए हैं उनसे उसकी कार्य-कुशलता में एक महत्त्वपूर्ण स्त्रोत की वृद्धि हुई है।

(ग) परामर्शदात्री क्षेत्राधिकार- अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय द्वारा परामर्श देने का कार्य भी उत्पन्न किया जाता है। महासभा अथवा सुरक्षा परिषद् किसी भी कानूनी प्रश्न पर अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय से परामर्श माँग सकती है। संयुक्त राष्ट्र संघ के दूसरे अंग तथा विशेष अभिकरण भी उनके अधिकार-क्षेत्र में उठने वाले कानूनी प्रश्नों पर न्यायालय का परामर्श प्राप्त कर सकते हैं। परामर्श के लिए न्यायालय के सम्मुख लिखित रूप से प्रार्थना की जाती है। इस प्रार्थना-पत्र में सम्बन्धित प्रश्न का विवरण तथा वे सभी दस्तावेज होते हैं जो उस प्रश्न पर प्रकाश डाल सकते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का परामर्श केवल परामर्श होता है और सिद्धान्त रूप में सुरक्षा परिषद्, महासभा या अन्य संस्था इसकी अवहेलना कर सकती है पर व्यवहार में ऐसा करना सर्वथा कठिन रहा है। मि. स्टोन लिखते हैं- ''दोषी राज्य अपनी पोल खुलने से बचने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

के लिए विवाद के सहमतिपूर्ण निबटारे के लिए तैयार हो जाते हैं। न्यायालय के मत का नैतिक-बल भी बहुत अधिक होता है और यदि कोई राज्य अड़ियलपना करे तो उसे भी विश्व-जनमत के सामने झुकना पड़ता है।'' इस प्रकार न्यायालय का परामर्श चाहे कानूनी रूप से अनिवार्य नहीं है, किन्तु राजनीतिक दृष्टि से अत्यन्त मूल्यवान है।

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने अनेक महत्त्वपूर्ण विवादों के समाधान में सहयोग दिया है। उदाहरण के लिए, मोरक्को का मामला, एंग्लो-ईरानियन मामला, भारतीय प्रदेश में से पुर्तगाल को मार्ग देने के अधिकार का विवाद, कोरफूचेनल विवाद, एंग्लो-नार्वेजियन मछलीगाह विवाद आदि का उल्लेख किया जा सकता है। न्यायालय के कार्य संचालन में विभिन्न देशों अथा गुटों ने बाधा डाली है। राज्यों की अवहेलना तथा असहयोगपूर्ण दृष्टिकोण के कारण यह अधिक उपयोगी तथा शक्तिशाली संस्था नहीं बन सकी है। भारत के भूतपूर्व विदेश मन्त्री एम. सी. छागला के कथनानुसार ''अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय संयुक्त राष्ट्रसंघ का महत्त्वपूर्ण अंग है। यद्यपि यह पूर्ण नहीं है तथा इसके पास वह सत्ता और अधिकार भी नहीं हैं जो इसे प्राप्त होने चाहिए। फिर भी यह एक महान् विचार का मूर्तरूप है-एकमात्र यही विचार राष्ट्रों में शान्ति और सद्भाव लाने वाला है।'' इस विचार के अनुसार से व्यक्ति आपस में विवाद होने पर एक-दूसरे का गला काटने को नहीं दौड़ते वैसे ही राष्ट्रों को भी आपस में मतभेद होने पर शस्त्रों का सहारा नहीं लेना चाहिए। बल्कि एक स्वतन्त्र और निष्पक्ष न्यायालय के निर्णयों को स्वीकार करना चाहिए।

1.13 संयुक्त राष्ट्र का सचिवालय

आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का उदय, वास्तविक अर्थ में स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय सचिवालय के निर्माण के साथ हुआ माना जाना चाहिए।[1] एक स्थायी सचिवालय के अभाव में बहुउद्देशीय और बहुपक्षीय कार्यों वाली संस्थाएँ समुचित रूप से प्रभावशाली नहीं हो सकतीं और अपने दायित्व का ठीक प्रकार से निर्वहन नहीं कर पाती। स्थायी सचिवालय होने पर ही अन्तर्राष्ट्रीय संगठन में यह सामर्थ्य पैदा होती है कि वह प्राविधिक सहायता के कार्यक्रमों का संचालन कर सके, शान्ति-स्थापना के दायित्वों की पूर्ति की दिशा में अग्रसर हो सके तथा सूचना-नियमन और सेवा सम्बन्धी विभिन्न कार्यों को पूरा कर सके। स्थायी सचिवालय होने पर ही बहुत-कुछ वह क्षमता भी पैदा हो जाती है जिससे संगठन अन्तर्राष्ट्रीय घटनाचक्र पर कुछ स्वतन्त्र प्रभाव डाल सके।

राष्ट्रसंघ और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ के अनुभव से लाभ उठाते हुए संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में एक सचिवालय की व्यवस्था की गई है जो अपनी संरचना में एकात्मक (Unitary) है। चार्टर के अनुच्छेद 97 में उल्लिखित है कि ''सचिवालय में महासचिव और संघ की आवश्यकतानुसार कर्मचारी वर्ग रहेगा। महासचिव की नियुक्ति सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर महासभा करेगी। वही संघ का प्रमुख अभिशासक (प्रशासकीय अधिकारी) होगा।'' अनुच्छेद 101 के अनुसार महासचिव संघ के पदाधिकारियों और कर्मचारियों की नियुक्ति करता है। यह व्यवस्था है कि आर्थिक और सामाजिक-परिषद तथा न्यास-परिषद् को स्थायी रूप में यथोचित् कर्मचारी प्रदान किए जाएंगे और संयुक्त राष्ट्रसंघ के अन्य अंगों के लिए भी आवश्यकतानुसार कर्मचारियों की व्यवस्था की जाएगी। ये कर्मचारी सचिवालय का ही एक अंग होंगे। कर्मचारियों की भर्ती और उनकी नौकरी की शर्तों को निर्धारित करने में सबसे अधिक ध्यान इस बात पर दिया जाता है कि दक्षता, क्षमता और ईमानदारी का ऊँचे से ऊँचा स्तर कायम हो सके। विश्व के विभिन्न देशों के कर्मचारी भर्ती किए जाते हैं ताकि अधिक से अधिक देशों को सचिवालय की सेवाओं में प्रतिनिधित्व मिल सके। जहाँ राष्ट्रसंघ और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के कर्मचारी वर्ग की उच्चतम संख्या एक हजार के लगभग रही वहाँ आज संयुक्त राष्ट्र संघीय व्यवस्था में 20 हजार से भी अधिक नियमित असैनिक अथवा नागरिक कर्मचारी (Regular Civilian Employees) सेवारत हैं।

महासचिव और उसके कर्मचारी केवल संयुक्त राष्ट्र के प्रति निष्ठावान् रहते हैं। अनुच्छेद 100 में स्पष्टत: उल्लिखित है कि 'अपने कर्त्तव्यों की पूर्ति में महासचिव और कर्मचारी वर्ग किसी राज्य से अथवा संघ के बाहर किसी दूसरे अधिकारी से सलाह नहीं माँगेंगे और न उनको सलाह दी जायेगी। वे अन्तर्राष्ट्रीय अधिकारी हैं और केवल संघ के प्रति उत्तरदायी हैं। वे ऐसा कोई काम नहीं करेंगे जिससे उनकी इस स्थिति पर प्रभाव पड़े, तथापि ऐसे उदाहरण है जब अनेक बार उपयुक्त आदर्श के विपरीत कार्य हुआ है। उदाहरणार्थ, कुछ वर्ष पूर्व साम्यवाद विरोधी आन्दोलन बहुत उग्र होने पर संयुक्त राज्य अमेरिका ने अपने प्रभाव का उपयोग करते हुए महासचिव की सहायता से संघ में कार्य करने वाले साम्यवादी प्रवृत्ति वाले कुछ अमरीकियों को सचिवालय से निष्कासित कराया था। अनुच्छेद 100 (2) के अनुसार संयुक्त राष्ट्रसंघ का प्रत्येक सदस्य वचनबद्ध है कि वह महासचिव तथा उसके कर्मचारियों के दायित्वों के पूर्ण स्वरूप का मानेगा और उन दायित्वों के निर्वाह में किसी प्रकार का प्रभाव डालने का प्रयत्न नहीं करेगा। संरचना की दृष्टि से सचिवालय अनेक भागों में बँटा हुआ है जो इस प्रकार हैं- आर्थिक कार्य विभाग, सामाजिक कार्य विभाग, न्यास तथा अस्वशासित क्षेत्रों का सूचना विभाग, एवं

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सामान्य सेवाएँ, प्रशासकीय एवं वित्तीय सेवाएँ तथा वैधानिक या कानूनी विभाग। महासचिव की सहायता के लिए एक कार्यकारिणी-सहायक और एक टेक्नीकल सहायता-प्रशासन भी होता है। टैक्नीकल सहायता प्रशासन एक महासंचालक की रेख-रेख में कार्य करता है। जनवरी, 1955 से महासचिव का कार्य-भार कम करने के लिए 7 अवर सचिवों की भी नियुक्ति की गई है। महासचिव के कार्यालयों से अनेक कार्यालय, सम्बन्धित हैं, जैसे- महासचिव का कार्यकारी कार्यालय, विधि कार्यालय, नियन्त्रण कार्यालय, सेवीवर्ग कार्यालय तथा विशेष राजनीतिक कार्य सम्बन्धी उपसचिव कार्यालय। सचिवालय के प्रशासी और कर्मचारी वर्ग में अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, वैज्ञानिक, दुभाषिए, अनुवादक, पुस्तकालयाध्यक्ष, प्रशासक, सम्पादक, वित्तीय अधिकारी, विधिवेत्ता, फोटोग्राफर, सेवीवर्ग के अधिकारी तथा विशेषज्ञ, सरकारों और संयुक्त राष्ट्र को भेजे जाने वाले विदेशी सेवा अधिकारी आदि सम्मिलित हैं।

सचिवालय का प्रधान कार्यालय न्यूयार्क तथा जेनेवा में है किन्तु क्षेत्रीय सेवाओं, प्रादेशिक आयोगों तथा सूचना केन्द्रों के लिए इसके कर्मचारी विश्व के कई भागों में बंटे रहते हैं। सचिवालय द्वारा बहुत महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक कार्य सम्पन्न किए जाते हैं। यह संघ के अंगों एवं अभिकरणों की बैठकों के लिए अनेक सेवाएँ प्रदान करता है। यह इन बैठकों के लिए अध्ययन करता है तथा पृष्ठभूमि तैयार करता है। यह अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को छोड़कर संघ के अन्य अंगों के लिए सचिवालय सम्बन्धी सेवाएं प्रदान करता है तथा एक कार्यकारिणी की भाँति कार्य करता है। संयुक्त राष्ट्रसंघ की कार्यवाही के लक्ष्य को ध्यान में रखकर यह प्रत्येक साधन द्वारा हर प्रकार की सूचना एकत्रित करता है।

1.13.1 सचिवालय का अन्तर्राष्ट्रीय चरित्र

महासभा, सुरक्षा परिषद्, आर्थिक एवं सामाजिक परिषद् तथा न्यास परिषद् संयुक्त राष्ट्र के ऐसे अंग हैं जहाँ सदस्य राष्ट्र अपनी सरकारों के प्रतिनिधियों के माध्यम से अपने उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं। उपर्युक्त चारों अंगों के सदस्य निश्चित समय पर सम्मेलनों में एकत्रित होते हैं एवं आपस के सभी विवादों को निबटाते हैं तथा अपने राष्ट्रों के हितों की पूर्ति करने में उनका सहयोग प्राप्त करते हैं। संयुक्त राष्ट्र के इन सभी अंगों में निर्धारित नीतियों एवं चार्टर में दिए गए सिद्धान्तों के आधार पर राजनीतिक तथा अन्य समस्याओं पर विचार-विमर्श होता है जहाँ सदस्य राष्ट्र स्वतन्त्र रूप से अपने विचारों को प्रस्तुत कर सकते हैं एवं उनके निर्णयों को प्रभावित करते हैं। महासभा तथा सुरक्षा परिषद् तो मुख्य रूप से राजनीतिक समस्याओं के निदान हेतु अपने प्रभाव का उपयोग करती है जहाँ सदस्यों के प्रतिनिधि एकत्रित होते हैं, वाद-विवाद में भाग लेते हैं एवं स्वतन्त्र मतदान का प्रयोग करते हैं परन्तु उन्हें चार्टर के सिद्धान्तों की मर्यादा की पालन अवश्य करना पड़ता है।

सचिवालय एवं अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का इस तरह राजनीतिक स्वरूप नहीं है। इनकी गतिविधियों का अन्तर्राष्ट्रीय चरित्र है। विश्व न्यायालय के निर्णय अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों से प्रभावित होते हैं जो सबको मान्य होते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को बहुत से अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों तथा मान्यताओं का ध्यान रखना पड़ता है। विश्व न्यायालय के न्यायाधीशों को बहुत अनुभवी, विशेषज्ञ, न्यायविद एवं स्वतन्त्र निर्णय ले सकने की क्षमता वाला होना चाहिए। विश्व न्यायालय के न्यायाधीशों में राष्ट्रीय सद्भावना एवं मानव विशेषताओं का होना तो स्वाभाविक है परन्तु उनसे यह आशा की जाती है कि वे राष्ट्रीय राजनीतिक द्वन्द्व से ऊपर उठकर अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनाएँगे। ठीक इसी तरह सचिवालय में जो अधिकारी काम करते हैं उनसे भी यही आशा की जाती है कि अपने राष्ट्रीय हितों से ऊपर उठकर विश्व संगठन की मर्यादा के अनुकूल अन्तर्राष्ट्रीय हित में चार्टर के सिद्धान्तों के अनुकूल कार्य करेंगे। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की तरह सचिवालय के कर्मचारियों को भी अन्तर्राष्ट्रीय एवं संयुक्त राष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक होता है। प्रमुख कर्मचारियों से केवल यह आशा नहीं की जाती कि वे अपने राष्ट्रों की नीतियों के समन्वय से विश्व की समस्याओं को सुलझाने में सहयोग करेंगे बल्कि उनसे यह भी अपेक्षा की जाती है कि वे अन्तर्राष्ट्रीय मान्यताओं के आधार पर सब राष्ट्रों को स्वीकार होने वाले दृष्टिकोण प्रस्तुत करेंगे।

राष्ट्रसंघ के सचिवालय के संगठन के अवसर पर यह सलाह दी गई थी कि परिषद् के नौ सदस्य राष्ट्रों के राष्ट्रीय सचिवों का एक सचिवालय बना लिया जाए जो अपने राष्ट्रीय सहयोगियों की सहायता से पूरी व्यवस्था करेंगे एवं महासचिव उन्हें मार्गदर्शन देंगे। अन्तर्राष्ट्रीय सचिवालय का निर्माण अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना मानी जाती है। सचिवालय विश्व संगठन में एक स्थायी व्यवस्था के रूप में प्रकट हुआ जिसमें विशेषज्ञों की नियुक्तियाँ प्रारम्भ हुई जो स्थायी रूप से मुख्यालय में रहकर राजनीतिक संगठन को विशेषज्ञ के रूप में मार्गदशन प्रदान करने लगा। राष्ट्रसंघ में सचिवालय के सहयोग से ही आर्थिक एवं सामाजिक सहयोग तथा परतन्त्र राष्ट्रों के विकास में सफलता मिली। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की सफलता का पूरा श्रेय सचिवालय को ही दिया जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

राष्ट्रसंघ में सचिवालय की उपयोगिता सिद्ध हो चुकी थी जिससे संयुक्त राष्ट्र चार्टर के निर्माण के समय सुसंगठित सचिवालय की स्थापना पर बहुत अधिक जोर दिया गया। चार्टर के निर्माण के समय प्रमुख चर्चा का विषय यह था कि सचिवालय के राजनीतिक अधिकार क्या हों एवं अन्त में यह निर्धारित किया गया कि सचिवालय के प्रधान अधिकारियों को बहुत ही महत्त्वपूर्ण राजनीतिक भूमिका का भी निर्वाह करना पड़ेगा। सचिवालय एवं महासचिव को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थिति प्रदान की गई। संयुक्त राष्ट्र में सचिवालय उसके प्रमुख अंगों में एक माना जाता है। चार्टर के अन्तर्गत महासचिव को कार्यपालिका, प्रशासकीय, वित्तीय, राजनीतिक तथा प्रतिनिधित्व के महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व सौंपे गए हैं। सचिवालय के सभी सदस्यों की प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए यह व्यवस्था है कि उन्हें संयुक्त राष्ट्र के किसी भी सदस्य राष्ट्र की सरकार की ओर से प्रभावित नहीं किया जाएगा क्योंकि के अन्तर्राष्ट्रीय अधिकारी के रूप में केवल संगठन के प्रति उत्तरदायी होते हैं। संयुक्त राष्ट्र के सभी अंगों में अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के अतिरिक्त सचिवालय ही ऐसा संगठन है जहाँ कि अनेक विषयों के विशेषज्ञ स्थायी रूप से संयुक्त राष्ट्र की सेवा में रहकर विश्व संगठन को यथा उचित मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। संयुक्त राष्ट्र के महासचिव तथा उनके सभी सहयोगी विश्व संगठन को तकनीकी, कानूनी तथा राजनीतिक विषयों पर तथ्य उपलब्ध कराते हैं।

1.14 अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन संयुक्त राष्ट्रसंघस के विशिष्ट अभिकरणों में सर्वाधिक प्राचीन और महत्त्वपूर्ण है जिसका कार्यक्षेत्र अन्य सभी अभिकरणों से विशाल है। इसकी स्थापना 11 अप्रेल, 1919 को वर्साय की सन्धि के भाग 13 के अनुसार श्रमिकों के हित-साधन की दृष्टि से की गई थी। राष्ट्रसंघ से घनिष्ठ सम्बन्ध होने के बावजूद इस संस्था ने अपना स्वतन्त्र अस्तित्व कामय रखा और अप्रेल 1946 में संयुक्त राष्ट्रसंघ के एक विशिष्ट अभिकरण के रूप में इसे पुनर्गठित किया गया। संयुक्त राष्ट्रसंघ और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन के मध्य एक समझौता हुआ जिसके अनुसार इस संगठन ने विश्व के देशों में श्रम एवं सामाजिक कार्य सम्पन्न करने का दायित्व लिया।

1.14.1 सामाजिक-आर्थिक उत्थान का लक्ष्य

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन का उद्देश्य है कि ''अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग द्वारा श्रमिकों की दिशा उन्नत की जाए, उनकी आर्थिक स्थिति में स्थिरता लाई जाए और सामाजिक क्षेत्र में उनका स्तर उन्नत बनाया जाए। यह संगठन इस विश्वास पर आधारित है कि सार्वजनिक और स्थायी शान्ति की स्थापना सामाजिक न्याय की आधारशिला पर ही सम्भव है और श्रमिकों को सामाजिक न्याय तभी प्राप्त हो सकता है जब वे दूसरे लोगों के समान ही आर्थिक कल्याण और उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हों।'' 1944 में द्वितीय महायुद्ध के समय जो अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ उसमें स्वीकृत सिद्धान्तों को अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठनों के संविधान मे जोड़ दिया गया। तद्नुसार ये मौलिक सिद्धान्त निर्धारित किए गए-

1. श्रम को वस्तु नहीं माना जा सकता,
2. दरिद्रता कहीं भी हो, सर्वत्र समृद्धि के लिए खतरा है,
3. निरन्तर प्रगति के लिए आवश्यक है कि अभिव्यक्ति और संगठन को स्वतन्त्रता प्रदान की जाए, एवं
4. अभाव और दरिद्रता के विरुद्ध प्रत्येक देश में सम्पूर्ण उत्साह के साथ संघर्ष किया जाना चाहिए।

1944 में फिलाडेल्फिया के अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-सम्मेलन में सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए यह कार्यक्रम निर्धारित किया गया कि पूर्ण रोजगार और जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक वेतन की व्यवस्था का प्रयत्न किया जाए, पर्याप्त भोजन एवं आवास की व्यवस्थाओं का विस्तार किया जाए, सामूहिक रूप से मोल-तोल अथवा सौदा करने के अधिकार को प्रोत्साहन दिया जाए और सामाजिक रक्षा की व्यवस्था की जाए। कहना न होगा कि इन सभी उद्देश्यों, कार्यक्रमों और मौलिक सिद्धान्तों का निचोड़ इस बात में है कि अन्तर्राष्ट्रीय सुख एवं शान्ति के लिए श्रमिकों की स्थिति को हर प्रकार से उन्नत बनाया जाए, उनका आर्थिक विकास किया जाए और उन्हें आर्थिक शोषण से मुक्त किया जाए। आर्थिक विषमताओं से मुक्ति प्राप्त करने पर ही श्रमिकों का धार्मिक स्तर ऊँचा उठेगा, वे जीने योग्य जीवन बिता सकेंगे और जब आर्थिक सुख-समृद्धि का प्रसार होगा तो अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा के प्रसार में सहयोग मिलेगा।

1.14.2 संगठन

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन का कार्य तीन प्रमुख अंगों द्वारा सम्पन्न किया जाता है- अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-सम्मेलन (International Labour Conference) प्रबन्ध समिति (Governing), तथा अन्तर्राष्ट्रीय कार्यालय (International Labour Office)।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन एक नीति-निर्माता एवं व्यवस्थापन सम्बन्धी निकाय है। इसे संसार की औद्योगिक संसद कहा जा सकता है। प्रत्येक सदस्य-राज्य से इसमें चार प्रतिनिधि सम्मिलित होते हैं। इसकी नियुक्ति सम्बन्धित सरकार द्वारा की जाती है, किन्तु इनमें दो सरकार का प्रतिनिधित्व करते हैं और एक मालिकों का तथा एक मजदूरों का। सम्मेलन में सभी निर्णय दो-तिहाई बहुमत से लिए जाते हैं। यह सिफारिशों और समझौतों द्वारा प्रत्येक राज्य के श्रम-सम्बन्धी व्यवस्थापन को प्रोत्साहन देता है। राज्य इन सिफारिशों को मानने के लिए बाध्य नहीं हैं। सम्मेलन का समझौता सन्धि के रूप में होता है, यद्यपि यह सम्मेलन द्वारा स्वीकार किया जाता है और सदस्य-राज्यों के प्रतिनिधियों के इस पर हस्ताक्षर नहीं होते। सदस्य राज्यों का यह दायित्व है कि वे उपयुक्त सत्ता द्वारा इस समझौते के लिए व्यवस्थापन कराएँ। सदस्य-राज्य श्रम संगठन को वार्षिक प्रतिवेदन प्रेषित कर यह बताते हैं कि अभिसमय के अनुरूप व्यवस्थापन करने के लिए उन्होंने क्या कदम उठाए हैं।

प्रबन्ध समिति श्रम-संगठन का कार्यपालिका-निकाय है। इसमें 40 सदस्य होते हैं जिनमें 20 सरकारी प्रतिनिधि, 10 प्रबन्ध के प्रतिनिधि और 10 मजदूरों के प्रतिनिधि होते हैं। सम्मेलन के लिए श्रमिकों के प्रतिनिधियों का चुनाव मजदूरों के प्रतिनिधियों द्वारा किया जाता है। प्रबन्ध समिति श्रम-संगठन के महानिदेशक की नियुक्ति करती है, सम्मेलन के लिए कार्यक्रम तैयार करती है, जाँच-पड़ताल करती है तथा समितियों के माध्यम से स्थिति का अध्ययन करती है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय जेनेवा में है। इसके तीन सम्भाग हैं- राजनयिक सम्भाग, गुप्तचर सम्भाग एवं अनुसन्धान सम्भाग। राजनयिक सम्भाग विभिन्न राज्यों के साथ पत्र-व्यवहार करता है तथा सम्मेलन के अभिसमयों एवं सिफारिशों को विभिन्न राज्यों में क्रियान्वित करता है। गुप्तचर सम्भाग दुनिया के मजदूरों की परिस्थितियों के सम्बन्ध में सूचनाएं एकत्रित करता है। अनुसंधान सम्भाग श्रमिक समस्याओं की वैज्ञानिक जाँच से सम्बन्ध रखता है। कार्यालय का कार्य संगठन के सभी कार्य सम्पन्न करना है। यह मजदूरों के कार्य की शर्तों एवं आर्थिक परिस्थितियों के बारे में प्रतिवेदन भी प्रस्तुत करता है।

1.14.3 सामाजिक आर्थिक विकास के कार्य

यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन पर महाशक्तियों का प्रभाव रहता है, तथापि इसने पर्याप्त महत्त्वपूर्ण कार्य किए हैं। श्रमिकों के शोषण तथा महिलाओं और दासों के व्यापार के विरुद्ध इसने व्यापक प्रचार किया है। अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग एवं सद्भावना की दिशा में भी इसने महत्त्वपूर्ण योग दिया है।

इस संगठन का सर्वप्रमुख कार्य अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक समझौतों तथा सिफारिशों के रूप में विविध प्रकार की श्रम एवं श्रमिकों सम्बन्धी दशाओं के अन्तर्राष्ट्रीय मापदण्डों का निर्माण करना है, अर्थात् इसका प्रयत्न रहा है कि संसार में हर देश और समाज के श्रमिकों के श्रम का मूल्य और महत्त्व समान हो तथा सामाजिक जीवन में उनके स्तर को अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त हो। अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक समझौतों और सिफारिशों को सम्मिलित रूप से 'अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संहिता' (International Labour Code) कहा जाता है। संगठन में जिन समझौतों और सिफारिशों को स्वीकार किया गया है उनमें से कुछ में श्रमिक-स्वतन्त्रता के अधिकार दिन में 8 घण्टे काम, वेतन की सुरक्षा और सवेतन अवकाश की व्यवस्था है, तो कुछ में बालकों और स्त्रियों से कठोर श्रम लेने, खानों में स्त्रियों को काम पर लगाने तथा बेगार लेने के काम को वर्जित किया गया है। यह संगठन श्रमिकों की दिशाएँ सुधारने के लिए विभिन्न प्रकार के सामाजिक अनुसंधान करता है। आँकड़े तथा रिपोर्ट प्रकाशित करता है। यह अमेरिका, एशिया और यूरोप में समय-समय पर क्षेत्रीय अधिवेशन आयोजित करता है तथा विश्व के प्रधान उद्योगों के सम्बन्ध में सरकार, श्रमिक और मालिकों के त्रिदलीय सम्मेलन आमन्त्रित करता है।

अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों का अनुसरण करते हुए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने उन्नत श्रम-मापदण्डों के लिए सामाजिक और आर्थिक आधार निश्चित करने के साधन के रूप में सामान्य आर्थिक विकास की दिशा में हाल ही के वर्षों में अपने प्राविधिक सहायता कार्यक्रमों का विकास किया है। दो महायुद्धों से ध्वस्त आर्थिक व्यवस्था के सुधार और पुनर्निर्माण हेतु इस संगठन ने बहुत से देशों की सहायता प्रदान की है। इसने विभिन्न प्रकार के दार्शनिक कार्यक्रमों का विकास किया है तथा शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना की है। इसने प्राविधिक सूचनाएँ प्रदान की हैं, परामर्श गोष्ठियाँ आयोजित की हैं, छात्रवृत्तियाँ दी हैं तथा व्यावसायिक शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना में विशेष रुचि प्रदर्शित की है। इसने श्रमिकों, मालिकों और सरकारों को यथासम्भव परामर्श दिया है कि किस तरह अधिक और अच्छा माल उत्पादित किया जाए। विभिन्न देशों में जीवन-स्तर ऊँचा करने, श्रमिकों की कार्य क्षमता बढ़ाने, बेकारी को रोकने के बारे में भी इसने सलाह दी है। सहकारिता, सामाजिक सुरक्षा, औद्योगिक सुरक्षा, स्वास्थ्य आदि के सम्बन्ध में इसके द्वारा विभिन्न राज्यों को दिए गए परामर्श बड़े उपयोगी सिद्ध हुए हैं। इस संगठन ने विभिन्न सरकारों के उन नियमों को निरस्त कराने की चेष्टा की है जिनके कारण घने बसे हुए देशों

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

से अल्प विकसित देशों को तथा श्रम-शक्ति की कमी वाले स्थानों को श्रमिकों के जाने से बाधा पड़ती है। विभिन्न लक्ष्यों की पूर्ति के लिए चीन, इण्डोनेशिया, पाकिस्तान, भारत, टर्की, यूगोस्लाविया, मिस्र, थाईलैण्ड, बर्मा आदि में इस संगठन द्वारा प्रशिक्षण-केन्द्र संचालित किए गए हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन ने कारखानों में काम करने वालों के लिए अनेक संहिताएं तैयार की हैं, जैसे कोयले की खान में काम करने की संहिता, कारखाने के कार्यकर्त्ताओं से सम्बन्धित संहिता आदि। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन के प्रयत्नों के फलस्वरूप संसार में श्रमिक समस्याओं के प्रति जागृति उत्पन्न हो गई है और श्रमिकों की दशाओं को सुधारने के लिए कल्याणकारी कानून बनाए जा रहे हैं तथा विभिन्न प्रकार के प्रयत्न हो रहे हैं। इसने 'सामाजिक न्याय को अनिश्चय की लहरों और प्रतिक्रियावाद के प्रभुत्व से बन्धन-मुक्त' कर दिया है। यह संगठन आज एक विश्वव्यापी संस्था बन गया है जिसके अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों को 'श्रम की विश्व-संसद' (World Parliament of Labour) की संज्ञा दी जाती है। श्रमिक कल्याण के लिए सराहनीय प्रयास करने के बावजूद अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन की विशेष रूप से आलोचना की जाती है कि यह अपने व्यवहार में निष्पक्ष नहीं रहा है अथवा इसने जरूरतमन्दों की अपेक्षा गैर-जरूरतमन्दों या अपेक्षाकृत कम जरूरतमन्दों की अधिक सहायता की है। उदाहरणार्थ, इसने पश्चिमी देशों की ओर अधिक ध्यान दिया है तथा एशिया और अफ्रीका के पिछड़े हुए देशों की ओर कम। पुनश्च, यह संस्था इतने अधिक समझौते और सिफारिशें निरूपति करती जाती है कि उन्हें स्वीकार करना तथा उन सब पर प्रभावशाली रूप में अमल करना आज की जटिल राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक परिस्थितियों में सम्भव नहीं है। भारत अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन का प्रारम्भ से ही सदस्य रहा है। एक प्रमुख राष्ट्र होने के नाते यह देश संगठन की प्रबन्ध समिति का भी सदस्य है। अभी तक भारत-संगठन के दर्शनों-समझौतों का समर्थन कर चुका है, तथापि बहुसंख्यक समझौते, जो श्रम संगठन ने स्वीकार किए हैं, भारत में लागू होने के उपयुक्त नहीं समझ गए हैं। ऐसे समझौते पश्चिम के विकसित औद्योगिक राष्ट्रों के लिए अधिक उपयुक्त हैं।

1.15 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष

प्रथम महायुद्ध और द्वितीय महायुद्ध के बीच विश्व के विभिन्न देशों में यह अनुभव किया गया कि आर्थिक दशा को सुधारने के लिए और राजनीतिक मनमुटाव के आर्थिक कारणों को दूर करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग नितान्त आवश्यक है। यह समझ लिया गया कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक और वित्तीय क्षेत्र में जो अस्त-व्यस्त स्थिति व्याप्त है और विश्व-बाजार में जो कठिनाइयाँ छाई हुई हैं, उन्हें दूर करने के लिए कोई महत्त्वपूर्ण कदम उठाया जाना चाहिए। इसी अनुभूति के फलस्वरूप द्वितीय महायुद्ध के अन्तिम दिनों में अमेरिका में ब्रेटनवुड्स नामक स्थान पर एक अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें इस प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया कि युद्ध के आर्थिक कारणों और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में व्याप्त आर्थिक अस्त-व्यस्तता का समाधान करने के लिए क्या कदम उठाए जाएँ। यह सम्मेलन जुलाई, 1944 में हुआ और लगभग 44 मित्रराष्ट्रों ने इस सम्मेलन में अपने प्रतिनिधि भेजें। कई दिनों तक विचार-विमर्श के पश्चात् अन्त में सम्मेलन ने युद्ध के आर्थिक कारणों को दूर करने की एक योजना तैयार की जिसे दो भागों में विभाजित किया गया। प्रथम भाग में एक अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) की स्थापना का प्रस्ताव किया गया और दूसरे भाग में एक अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण तथा विकास बैंक (World Bank) की स्थापना की बात कही गई। आवश्यक व्यवस्थाओं की पूर्ति के बाद और विभिन्न राष्ट्रों द्वारा योजना के अनुच्छेद 2 पर हस्ताक्षर करने के उपरान्त, दिसम्बर, 1945 में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक की संस्थाएं अस्तित्व में आई। यद्यपि इस संस्थाओं की स्थापना ब्रेटनवुड्स (Brettonwoods) सम्मेलन के फलस्वरूप हुई, तथापि इसकी पृष्ठभूमि के निर्माण में पहले के और भी अनेक सम्मेलनों एवं प्रयत्नों का काफी सहयोग रहा है।

1.15.1 मुद्रा कोष के उद्देश्य

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के समझौता-पत्र से हमें उसके उद्देश्यों की निम्न जानकारी मिलती है।

1. अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग को प्रोत्साहन- मुद्रा कोष की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य विश्व के विभिन्न देशों के मध्य अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग को प्रोत्साहन देना है। यह कोष सदस्य-देशों में अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक क्षेत्र में विचार-विमर्श तथा सहयोग से कार्य करने की व्यवस्था करता है। मुद्रा कोष यह प्रयास करता है कि सदस्य-राष्ट्र एक ही प्रकार की मौद्रिक नीति का अनुसार करें।

2. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का विस्तार एवं सन्तुलित विकास- मुद्रा कोष का दूसरा प्रमुख उद्देश्य विभिन्न देशों के मध्य होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को विभिन्न प्रकार के नियन्त्रणों से मुक्त करना है ताकि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का विस्तार एवं सन्तुलित विकास हो सके।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कोष के समझौता-पत्र की धारा 8 (2)(अ) के अन्तर्गत यह व्यवस्था की गई है कि मुद्रा कोष का कोई की सदस्य-देश कोष की अनुमति के बिना अन्तर्राष्ट्रीय लेन-देन तथा भुगतानों पर प्रतिबन्ध नहीं लगा सकता।

3. विनिमय स्थायित्व को प्रोत्साहित करना- विनिमय दरों में उच्चावचन विश्व-व्यापार के लिए घातक होते हैं, अत: अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के समुचित विकास के लिए विनिमय दर में स्थायित्व लाना इस कोष का प्रमुख उद्देश्य है। यह कोष स्वतन्त्र विनिमय दर नीति की बुराइयों को दूर करने का प्रयास करता है और प्रतिस्पर्द्धात्मक विनिमय ह्रास को रोकता है।

4. बहुपक्षीय भुगतान प्रणाली की स्थापना और विनिमय प्रतिबन्धों को समाप्त करना- विभिन्न देशों की मुद्राएँ आपस में परिवर्तनशील नहीं हैं अत: विदेशी भुगतानों में कठिनाई होती है। अत: इस कोष का चौथा प्रमुख उद्देश्य विभिन्न देशों द्वारा लगाए गए विनिमय-नियन्त्रणों को समाप्त करके, अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान की ऐसी बहुपक्षीय प्रणाली की स्थापना में सहायता देना है जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के अवरोध समाप्त हो जाएं और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का विकास हो।

5. भुगतान शेषों के असन्तुलन को दूर करने के लिए अल्पकालीन ऋण देना- इस कोष का पाँचवाँ प्रमुख उद्देश्य सदस्य-देशों के मध्य भुगतान शेष के अल्पकालीन असन्तुलन को दूर करने के लिए विदेशी मुद्रा के (अल्पकालीन) ऋण देना है जिससे कि वे राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय समृद्धि के नष्ट करने वाले उपायों को न अपना सकें।

6. भुगतान शेषों के असन्तुलन की अवधि तथा मात्रा में कमी करना- मुद्रा कोष का अन्तिम उद्देश्य उपरोक्त प्रयत्नों द्वारा सदस्य-राष्ट्रों के भुगतान असन्तुलन की अवधि तथा परिमाण को कम करना है। इससे उनके आर्थिक विकास में सहायता होगी।

7. पिछड़े तथा अल्पविकसित देशों में पूँजी-निवेश में सहायता देना- अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष धनी देशों से पिछडे एवं अल्प-विकसित देशों को पूंजी-निर्यात में भी सहायता देता है ताकि इन देशों का आर्थिक विकास सम्भव हो सके।

क्राउथर (Crowther) के मतानुसार, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का मुख्य उद्देश्य घाटे वाले देशों को उन मुद्राओं को उपलब्ध कराना है जिनकी आवश्कता उन्हें इस घाटे को पूरा करने के लिए होती है।

प्रो. हॉम (Prof. Halm) के शब्दों में, ''अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष को स्थापना मौद्रिक क्षेत्र में राष्ट्रीय स्वतन्त्रता एवं पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय के मध्य एक समझौता मात्र है।''

प्रो. कुरीहारा (Kurihara) के अनुसार, ''इस कोष की स्थापना का उद्देश्य सदस्य देशों को एक सम्मिलित तरलता भण्डार प्रदान करना था जिससे अन्तर्राष्ट्रीय दायित्वों तथा भुगतान सन्तुलन के संकटों में वे अपनी रक्षा कर सकें।''

1.15.2 मुद्रा कोष के साधन एवं पूँजी

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के साधनों एवं पूंजी का निर्माण सदस्य देशों से प्राप्त निर्धारित अभ्यंशों के आधार पर होता है। प्रत्येक देश को अपने कोटे का 20 प्रतिशत अथवा अपने स्वर्ण तथा डॉलर स्टॉक का 10 प्रतिशत दोनों में जो कम हो, स्वर्ण के रूप में मुद्रा को देना पड़ता है। अपने कोटे का शेष भाग प्रत्येक सदस्य देश को राष्ट्रीय मुद्रा के रूप में जमा करना होता है। प्रारम्भ में मुद्रा कोष के कुल साधन 880 मिलियन डॉलर थे। इसमें विभिन्न देशों में के कोटों का निर्धारण उन देशों की राष्ट्रीय आय, उनके स्वर्ण और विदेशी विनिमय कोष तथा भुगतान सन्तुलन सम्बन्धी स्थिति को ध्यान में रखकर किया गया था। समय-समय पर अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर उसके साधनों में वृद्धि की जाती रही है। इस कोटे में वृद्धि तथा साथ ही सदस्य देशों की संख्या में वृद्धि के परिणामस्वरूप कोष की वर्तमान कुल पूंजी विशेष आहरण अधिकार के अन्तर्गत 39 बिलियन हो गई है।

1.15.3 मुद्रा कोष का संगठन एवं प्रबन्ध

मुद्रा कोष का प्रबन्ध बोर्ड ऑफ गवर्नर्स एवं संचालक मण्डल के माध्यम से होता है। बोर्ड ऑफ गवर्नर्स में प्रत्येक सदस्य देश द्वारा एक गवर्नर नियुक्त किया जाता है, जो पाँच वर्ष की अवधि तक काम करता है। सदस्य देश को एक वैकल्पिक गवर्नर नियुक्त करने का अधिकार भी होता है, जो गवर्नर की अनुपस्थिति में बोर्ड की बैठक में भाग लेता है। बोर्ड ऑफ गवर्नर्स द्वारा मुद्रा कोष की सामान्य नीति का निर्धारण किया जाता है। मुद्रा कोष का दिन-प्रतिदिन का कार्य संचालित करने के लिए 20 सदस्यों का संचालक मण्डल होता है। इसके 4 सदस्य स्थायी होते हैं, जो उन सदस्य देशों के होते हैं, जिनके कोटे सबसे अधिक होते है। संचालक मण्डल द्वारा एक प्रबन्ध संचालक का चुनाव होता है जो कोष के साधारण कार्यों के लिए उत्तरदायी होता है। प्रबन्ध संचालक मुद्रा कोष का मुख्य अधिकारी होता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

है। बोर्ड ऑफ गवर्नर्स के अधिकार बड़े व्यापक होते हैं। सदस्य देशों के कोटों में संशोधन, नए सदस्यों के प्रदेश, संचालकों के चुनाव और सदस्य देशों की मुद्राओं की क्षमता दरों के सम्बन्ध में निर्णय लेने का अधिकार इसी मण्डल को होता है।

1.15.4 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के कार्य

मुद्रा कोष के तीन प्रमुख कार्य हैं-

(1) मुद्रा कोष सदस्य देशों को विदेशी मुद्राएँ बेचकर तथा उधार देकर उन्हें भुगतान सन्तुलन में होने वाले अल्पकालीन असन्तुलन को दूर करने में सहायता प्रदान करता है। इस प्रकार की सहायता आर्थिक संकट की स्थिति में, विनिमय सम्बन्धी मौसमी कठिनाइयों की स्थिति में एवं उपभोग एवं विकास की योजनाओं में अत्यधिक पूँजी व्यय के परिणामस्वरूप चालू भुगतान में असन्तुलन की स्थिति में दी जाती है।

(2) मुद्रा कोष सदस्य देशों को अपने भुगतान सन्तुलन में होने वाले दीर्घकालीन असन्तुलन को दूर करने में भी सहयोग देता है। मुद्रा कोष सदस्य देशों की अर्थव्यवस्था में आधारमूलक परिवर्तन होने पर उन्हें अपनी मुद्राओं की समता दरें बदलने की अनुमति देता है। इस प्रकार सदस्य देशों के भुगतान सन्तुलन में होने वाले दीर्घकालीन असन्तुलन को दूर किया जा सकता है। मुद्रा कोष के विधान के अनुसार कोई भी सदस्य देश अपनी मुद्रा की पूर्व निश्चित समता दर में किसी भी दिशा में 10 प्रतिशत तक परिवर्तन बिना कोष की अनुमति से कर सकता है। परन्तु इससे अधिक परिवर्तन के लिए उसे कोष की अनुमति लेना अनिवार्य होता है। यदि परिवर्तन 20 प्रतिशत से भी अधिक हो तो कोष के दो-तिहाई सदस्यों के बहुमत की स्वीकृति होना आवश्यक होती है।

(3) मुद्रा कोष आर्थिक तथा मौद्रिक विषयों पर सदस्य देशों को परामर्श भी देता है। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय बैंक तथा सरकार के वित्त विभाग के उच्च पदाधिकारियों के लिए मुद्रा कोष सदस्य देशों के प्रतिनिधियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था भी करता है।

वित्तीय सहायता के साथ-साथ मुद्रा कोष सदस्य देशों को प्राविधिक सहायता भी देता है।

1.15.5 मुद्रा कोष द्वारा मुद्राओं की व्यवस्था

कुछ विशिष्ट कारणों से किसी देश की मुद्रा दुर्लभ मुद्रा हो सकती है अर्थात् इसकी पूर्ति, माँग की अपेक्षा बहुत कम हो सकती है। उदाहरण के लिए किसी देश के निर्यात अधिक होने पर तथा आयात बहुत कम होने पर उस देश की मुद्रा की माँग अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में अधिक होती है। परन्तु इसके बाजार में उपलब्ध न होने के परिणामस्वरूप इसे दुर्लभ मुद्रा कहा जाता है। मुद्रा कोष के पास क्योंकि सभी राष्ट्रों की मुद्राएँ होती हैं, अत: मुद्रा कोष उन्हें विभिन्न देशों को बेचता है अथवा उधार देता है। मुद्रा कोष स्वर्ण देकर उस देश से दुर्लभ मुद्रा खरीद भी सकता है। यदि फिर भी माँग न हो तो, मुद्रा कोष इस मुद्रा को दुर्लभ घोषित करके मुद्रा की राशनिंग कर सकता है। मुद्रा कोष ऐसी स्थिति में उस दुर्लभ मुद्रा के लिए विभिन्न देशों का कोष निश्चित कर देता है। किसी मुद्रा को दुर्लभ घोषित करने पर मुद्रा कोष उस देश को अपनी मुद्रा का पुनर्मूल्यन करने के लिए भी कह सकता है।

1.16 विश्व बैंक

अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण तथा विकास बैंक, जिसे बहुधा विश्व बैंक कहा जाता है, की स्थापना भी जुलाई, 1944 में ब्रेटनवुड्स सम्मेलन में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के साथ ही हुई थी और जून, 1946 में इसने अपना कार्य आरम्भ कर दिया। इस संस्था का मुख्य कार्यालय वाशिंगटन में है और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का सदस्य होने पर कोई भी राष्ट्र इसका सदस्य हो सकता है। मुद्रा कोष की स्थापना का मुख्य लक्ष्य सदस्य देशों की भुगतान सम्बन्धी विषमताओं को दूर करना था जबकि विश्व बैंक की स्थापना प्राय: इसीलिए की गई थी कि युद्ध जनित आर्थिक अव्यवस्था को दूर किया जा सके और विकसित तथा अविकसित देशों को दीर्घकालीन ऋणों के रूप में सहायता दी जाए ताकि वे प्रगति और पुनर्निर्माण के पथ पर अग्रसर हो सकें। विश्व बैंक का प्रमुख कार्यालय वाशिंगटन में है। इसके अतिरिक्त न्यूयॉर्क, लन्दन तथा पेरिस में भी इसके कार्यालय है।

1.16.1 विश्व बैंक के उद्देश्य

युद्धोत्तर जटिल आर्थिक परिस्थितियों और समस्याओं के निराकरणा की दृष्टि से विश्व बैंक की स्थापना के मुख्यत: अग्रलिखित चार उद्देश्य हैं-

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. बैंक का प्रथम उद्देश्य युद्ध द्वारा विनष्ट तथा अल्पविकसित देशों को दीर्घकालीन ऋण देकर उनके पुनर्निर्माण तथा आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए बैंक ने ब्रिटेन, फ्राँस, बेल्जियम, हॉलैण्ड, डेनमार्क आदि युद्ध विनष्ट देशों को तथा भारत, पाकिस्तान, लंका, बर्मा आदि पिछड़े देशों को विकास के लिए ऋणों के रूप में प्रचुर सहायता प्रदान की है। तकनीकी सहायता प्रदान करने के लिए भी इन देशों के आर्थिक विकास की गति को तीव्र करने का प्रयास किया गया है।

2. विश्व बैंक व्यक्तिगत विनियोगकर्त्ताओं को अविकसित देशों में उत्पादन कार्य के लिए पूंजी का विनियोग करने हेतु प्रोत्साहित करता है। इसके लिए इन विनियोगकर्त्ताओं को उनकी पूंजी पर गारण्टी देता है अथवा उनके विनियोग या ऋण सहायता करता है। यदि इस कार्य के लिए व्यक्तिगत विनियोग उचित शर्तों पर न हो पाए तो बैंक इन देशों के उत्पादन कार्यों के लिए उचित शर्तों पर ऋण देता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि बैंक द्वारा सदस्य-देशों में पूंजी एवं अन्य संस्थागत ऋण-पूंजी का विस्तार किया जाता है।

3. विश्व बैंक द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहन दिया जाता है। यह अपने सदस्य-देशों के उत्पादन साधनों का विकास करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय विनियोगों को प्रोत्साहन देता है ताकि सम्बन्धित देश में रोजगार आय तथा जीवन स्तर ऊँचा उठाया जा सके।

4. युद्ध के समय देश की आवश्यकताओं की प्रकृति शान्तिकाल की अपेक्षा भिन्न होती है। युद्ध के बाद यह आवश्यकता महसूस हुई कि उस समय की आर्थिक व्यवस्था को शान्तिकालीन आर्थिक व्यवस्था में परिणत कर दिया जाए। यह कार्य विश्व बैंक बैंक करता है।

1.16.2 सदस्यता

विश्व बैंक का सदस्य केवल वही राष्ट्र बन सकता है, जो अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का सदस्य है। वे 32 देश, जिन्होंने 31 दिसम्बर, 1945 तक अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की सदस्यता स्वीकार कर ली थी, विश्व बैंक के मौलिक सदस्य माने जाते हैं। इसके बाद सदस्यता प्राप्त करने वाले सदस्य देश साधारण सदस्य माने जाते हैं। भारत, विश्व बैंक के मौलिक सदस्यों में से एक है।

1.16.3 पूंजी

विश्व बैंक की स्थापना के समय उसकी अधिकृत पूंजी 1000 मिलियन डॉलर थी, जो 1 लाख डॉलर के प्रत्येक अंश के हिसाब से 1 लाख अंशों में विभाजित थी। सभी सदस्य देशों ने अपने कोटे के हिसाब से शेयर खरीदे थी। सदस्य-देशों द्वारा स्वीकृति पूंजी वास्तव में 9400 मिलियन डॉलर थी। प्रत्येक सदस्य-राष्ट्र को अपने अंश का 20 प्रतिशत तुरन्त जमा करना होता है, जिसका 2 प्रतिशत भाग स्वर्ण में तथा शेष 18 प्रतिशत भाग अपनी वैधानिक मुद्रा में देना होता है। शेष 80 प्रतिशत भाग माँग पर देना होता है। 30 जून, 1983 को विश्व बैंक की कुल अधिकृत पूंजी 76548 मिलियन डॉलर थी। परन्तु उसी दिन बैंक के सदस्य देशों द्वारा स्वीकृत उसकी वास्तविक पूंजी 52089 मिलियन डॉलर थी। विश्व बैंक की कुल स्वीकृत पूंजी में प्रतिशत के क्रमानुसार दस देशों के नाम वर्तमान में अग्र प्रकार हैं- अमेरिका, जापान, इंग्लैण्ड, फ्राँस, प. जर्मनी, सऊदी अरब, चीन, कनाडा, भारत तथा इटली। समय-समय पर विश्व बैंक की पूंजी में वृद्धि भी की जाती रही है जिससे सदस्य-देशों को अधिक से अधिक ऋण दिए जा सकें।

1.16.4 प्रबन्ध

विश्व बैंक का प्रबन्ध-संगठन तीन स्तरीय है, जिसमें अध्यक्ष, प्रशासनिक संचालक मण्डल तथा प्रशासक मण्डल आते हैं। अध्यक्ष की नियुक्ति 21 सदस्यीय प्रशासकीय संचालक मण्डल द्वारा की जाती है तथा उनमें से 5 सदस्यों की नियुक्ति उन देशों द्वारा भी की जाती है, जिनके बैंक में अधिकृत अंश हैं। बाकी 16 सदस्य प्रशासक मण्डल द्वारा चुने जाते हैं। प्रशासक मण्डल में प्रत्येक देश एक गवर्नर तथा एक वैकल्पिक गवर्नर की नियुक्ति करता है। इन दोनों का कार्यकाल पाँच वर्ष होता है। प्रशासक मण्डल विश्व बैंक की सबसे शक्तिशाली संस्था है। प्रत्येक गवर्नर का मत देने का अधिकार अपने देश के अंशदान के अनुपात में होता है। बैंक की कुल पूंजी में वृद्धि के परिणामस्वरूप भारत की मत देने की शक्ति 3.09 से घटकर केवल 2.9 प्रतिशत रह गई है।

1.16.5 कार्य

विश्व बैंक सदस्य देशों के लिए निम्नलिखित कार्य करता है-

1. पूँजी में प्रत्येक ऋण- प्रत्येक देश को अपने कोटे का 20 प्रतिशत भाग, जिसमें 2 प्रतिशत सोना तथा 18 प्रतिशत देश की मुद्रा होती है, बैंक के पास जमा करना पड़ता है। बैंक इस जमा सोने का किसी देश को ऋण देने में प्रयोग कर सकता है। परन्तु यदि ऋण

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

किसी सदस्य-देश की मुद्रा में देना होता है तो बैंक केवल उन्हीं परिस्थितियों में उधार दे सकता है जबकि सदस्य-राष्ट्र से पूर्व-अनुमति प्राप्त कर ली गई है।

2. उधार ली गई पूंजी से ऋण- विश्व बैंक सदस्य-देशों के विनियोगकर्त्ताओं को गारण्टी देकर उनकी पूंजी को किसी अन्य देश को उधार दिला सकता है। परन्तु गारण्टी देने से पूर्व बैंक को उन देशों की अनुमति प्राप्त करनी होती है। बैंक निम्न शर्तों पर ऋण गारण्टी देता है-(अ) ऋण प्रदान करने की शर्तें उचित तथा न्यायपूर्ण होनी चाहिए, (ब) जिस योजना के लिए ऋण दिया जाता है, वह उचित भी है या नहीं, (स) ऋण लेने वाले देश की सरकार को उस ऋण की गारण्टी भी देनी होगी।

3. तकनीकी सहायता देना- बैंक सदस्य राष्ट्रों को तकनीकी सहायता भी प्रदान करता है। समय-समय पर सदस्य राष्ट्रों में अपने विशेषज्ञ भेजकर उनका सर्वेक्षण करता है। बैंक ने 1956 में 'आर्थिक विकास संस्थान' की स्थापना की है जिसमें सदस्य-देशों के कर्मचारियों एवं अधिकारियों को आर्थिक विकास से सम्बन्धित अल्पकालीन प्रशिक्षण भी प्रदान किया जाता है।

4. राष्ट्रों के पारस्परिक विवादों में मध्यस्थता- राष्ट्रों के बीच उत्पन्न होने वाले आपसी विवाद उनके आर्थिक विकास में बाधा डालते हैं। अत: बैंक उन विवादों में मध्यस्थता कर उन्हें निपटाने का प्रयत्न करता है। भारत और पाकिस्तान के मध्य उत्पन्न नहर विवाद (1960), इंग्लैण्ड और मिस्र के मध्य स्वेज नहर विवाद (1959) को निपटाने का श्रेय विश्व बैंक को ही जाता है।

5. प्रशिक्षण सुविधाएं- विश्व बैंक ने 1949 से सदस्य-देशों के अधिकारियों के लिए एक प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रारम्भ किया है। साथ ही 1950 से सार्वजनिक वित्त में एक प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रारम्भ किया। इसके पश्चात् औद्योगिक वित्त, मौद्रिक व्यवस्था, बैंकिग, कर प्रणाली विषयों पर भी प्रशिक्षण दिया जाने लगा है। 1955 में 'आर्थिक विकास संस्थान' की स्थापना की है। जो विकास कार्यक्रमों से सम्बन्धित अधिकारियों को प्रशिक्षण देता है।

1.17 विश्व-स्वास्थ्य-संगठन

स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यों को सम्पादित करने के लिए स्थापित किए गए इस संगठन की नींव 19 जून, 1946 को संयुक्त राष्ट्रसंघ की आर्थिक एवं सामाजिक परिषद् द्वारा न्यूयॉर्क में आमन्त्रित एक सम्मेलन में पड़ी। स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं पर विचार करने के लिए आयोजित इस सम्मेलन ने 22 जुलाई, 1946 तक विचार किया और इसी मध्य उसने विश्व-स्वास्थ्य संगठन के संविधान की रचना की। इस संविधान की रचना में 67 देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया, तद्नुसार 7 अप्रेल, 1948 को इस संगठन की स्थापना हुई। इसीलिए 7 अप्रेल को समग्र विश्व में 'स्वास्थ्य दिवस' के रूप में मनाया जाता है।

सदस्यता- इस संगठन की सदस्यता सभी राष्ट्रों के लिए खुली है। संयुक्तराष्ट्र के सदस्य इसके संविधान को स्वीकार कर इसमें सम्मिलित हो सकते हैं। आज विश्व के 150 से भी अधिक देश इसके सदस्य हैं। प्रत्येक सदस्य राज्य का कर्त्तव्य है कि वह संगठन को भेजे जाने वाली वार्षिक रिपोर्ट में यह भी स्पष्ट करे कि उसने अपने नागरिकों के स्वास्थ्य के लिए क्या काम किया है। रिपोर्ट में यह भी उल्लेख किया जाता है कि सदस्य-राज्य ने संगठन द्वारा स्वीकृत समझौते और नियमों का कहाँ तक पालन किया है और स्वास्थ्य के सम्बन्ध में कौन-कौन से महत्त्वपूर्ण कानून बनाए हैं।

1.17.1 अंग

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अग्रलिखित अंग हैं- सभा (Assembly) कार्यकारी मण्डल (Executive Board) एवं सचिवालय (Secretariat)।

सभा में सभी सदस्य-राष्ट्रों के प्रतिनिधि होते है। इसकी वर्ष भर में एक बार बैठक होती है। इसका मुख्य कार्य नीति निर्धारण करना है।

कार्यकारी मण्डल में 24 सदस्य होते हैं जिनका निर्वाचन सभा (Assembly) द्वारा चिकित्सा आदि कार्यों के विशेषज्ञ व्यक्तियों द्वारा किया जाता है। इसकी बैठक वर्ष में दो बार अवश्य होती है।

सचिवालय में एक महानिदेशक (Director General) और उसका कर्मचारी होता है। महानिदेशक विश्व-स्वास्थ्य संगठन के प्रशासनिक एवं तकनीकी कार्यों की देख-भाल करता है। उसका मुख्य कार्यालय जेनेवा में है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इस संस्था के प्रादेशिक संगठन अफ्रीका, दक्षिण-पूर्वी, पूर्वी भूमध्य-सागर तथा पश्चिमी महासागर के क्षेत्रों में स्थित हैं। चूंकि विश्व-स्वास्थ्य-संगठन का काम सहायता, सलाह व सहयोग देना है, न कि एक सर्वोपरि राष्ट्रीय स्वास्थ्य संगठन की तरह काम करना। इस संगठन के द्वारा उपर्युक्त क्षेत्रों में जो प्रादेशिक संगठन अथवा कार्यालय स्थापित किए गए हैं, उन्हीं के द्वारा इसका अधिकांश कार्य-संचालन होता है। स्थानीय कार्यक्रमों को तैयार करने व प्रादेशिक कार्यालय के लिए प्रत्येक प्रदेश अथवा क्षेत्र के सदस्य-देशों की समिति की नियमित बैठक होती है। स्वास्थ्य-स्तरों पर प्रभाव डालने वाले विभिन्न विषयों के बारे में संयुक्त राष्ट्रसंघ के विभिन्न क्षेत्रों, एजेंसियों, संयुक्त राष्ट्रसंघीय शिशु-कोष तथा अनेक अन्तर्राष्ट्रीय गैर-सरकारी संगठनों में सहयोग व सम्पर्क स्थापित किया गया है।

1.17.2 उद्देश्य एवं कार्य

संगठन की प्रस्तावना में इसके उद्देश्यों को स्पष्ट किया गया है। प्रस्तावना में कहा गया है कि प्रत्येक मनुष्य का यह मौलिक अधिकार है कि उसे उच्चतम स्वास्थ्य-स्तर की सुविधाओं की प्राप्ति हो। संसार की शान्ति और सुरक्षा के लिए आवश्यक है कि सभी मनुष्यों के स्वास्थ्य का ध्यान रखा जाए। यदि किसी एक राज्य में स्वास्थ्य के संरक्षण और प्रोत्साहन की दृष्टि से कोई कदम उठाया जाता है तो वह दुनिया भर के लोगों के लिए उपयोगी होगा। संगठन के संविधान में स्वास्थ्य को लक्ष्य करते हुए कहा गया है कि ''यह बीमारी या दुर्बलता का अभाव नहीं है अपितु शारीरिक, मानसिक और सामाजिक दृष्टि से पूर्णरूप से उत्तम रहने की दशा है।''

स्वास्थ्य सम्बन्धी महान् उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संगठन जो कार्य करता है, उन्हें दो श्रेणियों में रखा जा सकता है- परामर्शदात्री सेवाएं एवं तकनीकी सेवाएं। यह अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य के कार्यों का संचालन और समन्वय करता है। संगठन द्वारा प्रसारित ज्ञान-विनिमय, परामर्श और रीतियों के बहुत अच्छे परिणाम निकले हैं। उदाहरणार्थ, विश्व के राष्ट्रों में मलेरिया का प्रकोप नगण्य हो गया है। संगठन किसी भी नए और सफल कार्यक्रम की सूचना संसार भर के देशों में प्रसारित करता है। महामारियों और बीमारियों के कार्यों को प्रोत्साहन तथा इस क्षेत्र की सरकारों को परामर्श देने में इस संगठन की प्रदर्शन टोलियों और व्यक्तिगत सलाहकारों ने प्रभावी भूमिका अदा की है। संगठन के परामर्शदाता क्षयरोग, मातृ एवं बाल सुरक्षा, पोषण, स्वच्छता आदि के क्षेत्रों में कार्य करते हैं। यह संगठन प्रति वर्ष सैकड़ों छात्रवृत्तियाँ देता है ताकि डॉ. और नर्से विदेशों में जाकर अध्ययन तथा अनुसंधान कर सके। स्वास्थ्य के क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्रसंघ, इसके विशिष्ट संगठनों तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी विभिन्न संस्थाओं में सहयोग स्थापित करना स्वास्थ्य-संगठन का महत्त्वपूर्ण कार्य है। यह स्वास्थ्य की समस्या पर अन्तर्राष्ट्रीय प्रशिक्षण कार्यक्रम और गोष्ठियाँ आयोजित करता है तथा हर सम्भव उपाय से विश्व के लोगों के स्वास्थ्य को उन्नत बनाने का प्रयास करता है।

संगठन द्वारा टीकों और औषधियों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मापदण्ड निर्धारित किए जाते हैं। संगठन हैजा, चेचक आदि संक्रामक रोगों की सूचना विश्व भर के राष्ट्रों को देता है। इस प्रकार की सूचनाएं संगठन की ओर से प्राय: रेडियों द्वारा प्रसारित की जाती है। रोगों के प्रसार को रोकने के कार्य में भी सरकारें सहयोग देती है। संगठन द्वारा विगत कुछ वर्षों से इन्फ्लूएंजा, पोलियो, मैलिटिस आदि रोगों पर विशेष शोध-कार्य कराया जा रहा है तथा तकनीकी बुलेटिन और अन्य साहित्य छापकर संसार भर के देशों में वितरित किया जाता है। संगठन के कुछ अन्य तकनीकी कार्य इस प्रकार हैं- मानसिक स्वास्थ्य के कार्यों में आहार, गृह-निर्माण, सफाई, मनोरंजन आदि स्वास्थ्य सम्बन्धी परिस्थितियों को उन्नत करना, मातृ-कल्याण एवं बाल-कल्याण के कार्यों को प्रोत्साहन देना, आकस्मिक आघात को रोकने का यत्न करना, स्वास्थ्य के क्षेत्र में प्रशासनिक और सामाजिक तकनीकी (Administrative and Social Techniques) का अध्ययन करना तथा लोगों के वातावरणीय स्वास्थ्य (Environmental Hygiene) की परिस्थितियों को उन्नत करना, बीमारियों के अन्तर्राष्ट्रीय नियमों और निदान सम्बन्धी (Diagnostic) कार्यों का मानकीकरण (Standardization) करना, खाद्य पदार्थों, दवाइयों तथा अन्य ऐसी वस्तुओं के सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय मानक (Standards) निश्चित करना।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों के बारे में निकटतम प्राविधिक बारीकियों से संगठन को अवगत रखने के लिए और आधुनिकतम अनुसन्धानों के आधार पर कार्यवाहियों की सिफारिश करने के लिए संसार भर में बड़ी सावधानी से चुने गए विशेषज्ञों के पैनल स्वास्थ्य-कार्य के सभी पहलुओं पर विचार करते हैं। संगठन ने विश्व में अनेक महामारियों का उन्मूलन करने में बहुमूल्य सहायता प्रदान की है, अल्पविकसित और पिछड़े हुए देशों को आवश्यक औषधियों एवं चिकित्सा सम्बन्धी बहुमूल्य सामान उपलब्ध कराया है तथा ऐसे देशों के सरकारी कार्यालयों के अफसरों एवं चिकित्सकों को सार्वजनिक स्वास्थ्य और चिकित्सा सम्बन्धी उच्च अध्ययन के लिए छात्रवृत्तियाँ प्रदान की हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

विश्व-स्वास्थ्य संगठन आणविक उपयोग के स्वास्थ्यजनक पहलुओं से भी निकट सम्पर्क रखता है तथा विश्व-स्वास्थ्य सम्बन्धी विभिन्न क्षेत्रों में महती भूमिका निभा रहा है, तथापि ग्राहम बैकिल का यह कहना सर्वथा उपयुक्त है कि विश्व-स्वास्थ्य संगठन विश्व बीमारी संगठन नहीं है। कोई भी संगठन अपनी स्वयं की शक्ति के बल पर संसार के सभी मनुष्यों की स्वास्थ्य सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता और विश्व-स्वास्थ्य-संगठन का ध्येय भी यह नहीं है। यह संगठन तो सब देशों को उस सहायता देता है जब वे स्वयं भी एक-दूसरे की सहायता करते हैं। यह संगठन रोग-उन्मूलन का ही प्रयत्न नहीं करता, वरन् उसका ध्येय सम्पूर्ण शारीरिक, मानसिक और सामाजिक कल्याण प्रोत्साहन देना है जिसके बिना अन्तर्राष्ट्रीय कल्याण सम्भव नहीं है।

1.17.3 संयुक्त राष्ट्रीय शिक्षा, विज्ञान और सांस्कृतिक संगठन : यूनेस्को

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन के पश्चात् संयुक्तराष्ट्र के विशिष्ट अभिकरणों में सर्वाधिक सफलता यूनेस्को को प्राप्त हुई है। 4 नवम्बर, 1946 को बीस देशों ने लगभग एक वर्ष पहले तैयार किए गए इसके संविधान को स्वीकार करके यूनेस्को का औपचारिक रूप से उद्घाटन किया था। तब से लेकर अब तक यह संगठन काफी लम्बी यात्रा तय कर चुका है और वर्तमान में इसके 159 सदस्य हैं। इसमें ऐसे भी राष्ट्र सदस्य हैं जो संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य नहीं है- उदाहरणार्थ, स्विट्जरलैण्ड।

1.18 यूनेस्को के अंग

यूनेस्को के तीन प्रमुख अंग हैं- सामान्य सभा (General Conference), कार्यकारिणी मण्डल (Executive Board) एवं सचिवालय (Secretariat)। सामान्य सभा संस्था की सर्वोच्च संस्था है जिसमें सभी सदस्य राज्यों के प्रतिनिधि होते हैं। प्रत्येक राज्य से पाँच प्रतिनिधि तक हो सकते है जिनका चुनाव राष्ट्रीय आयोग के परामर्श से या शैक्षणिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं के परामर्श से किया जाता है। प्रत्येक दूसरे वर्ष सामान्य सभा के अधिवेशन होते हैं। सामान्य सभा विश्व के महत्त्वपूर्ण शैक्षणिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं के विवेचन और विश्लेषण के लिए महत्त्वपूर्ण मंच है। यह सम्पूर्ण विश्व के लिए 'मानसिक कार्यकर्त्ताओं की संसद्' के रूप में कार्य करती है। सभा ही यूनेस्को का कार्यक्रम और बजट निश्चित करती है।

कार्यकारी मण्डल को यूनेस्को का हृदय कहा जाता है। यह मण्डल यूनेस्को तथा सामान्य सभा में सम्मिलित सभी राज्य शासको को प्रतिनिधित्व प्रदान करता है। कार्यकारी मण्डल यूनेस्को की सर्वोच्च सत्ता (सामान्य सभा) तथा महानिदेशक के मार्गदर्शन का कार्य करता है और साथ ही सचिवालय के मध्य कड़ी का कार्य करता है। कार्यकारी मण्डल का निर्वाचन सामान्य सभा द्वारा होता है। इसकी वर्ष में कम से कम दो बार बैठकें अवश्य होती हैं। इसका कार्य सामान्य सभा द्वारा निर्धारित नीतियों और कार्यक्रम को कार्यान्वित करना है।

सचिवालय 'विशेषज्ञों का आगार' माना जाता है। सचिवालय में एक महानिदेशक (Director General) तथा अन्य अधिकारी होते हैं। सचिवालय का प्रधान कार्यालय पेरिस में है और यह छः प्रमुख विभागों में विभाजित है- शिक्षा, प्राकृतिक विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, सांस्कृतिक कार्य, सामूहिक शिक्षा और प्रचार-साधन तथा प्राविधिक सहायता विभाग। महानिदेशक की नियुक्ति कार्यकारी मण्डल द्वारा की जाती है।

1.18.1 यूनेस्को की सदस्यता

संयुक्त राष्ट्र का कोई भी सदस्य यूनेस्को का सदस्य बन जाता है। जो राज्य संयुक्त राष्ट्र के सदस्य नहीं हैं वे भी यूनेस्को की सदस्यता प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु ऐसे राष्ट्रों की सदस्यता हेतु कार्यकारी मण्डल की सिफारिश पर यूनेस्को सामान्य सभा में उपस्थित सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से स्वीकृति मिलनी चाहिए। 1951 में यूनेस्को महासम्मेलन (सामान्य सभा) में एक संशोधन स्वीकार किया गया था जिसके अनुसार जो क्षेत्र या क्षेत्र समूह अपने विदेशी सम्बन्धों को स्वयं निर्धारित नहीं कर सकते वे उत्तरदायी सत्ता की प्रार्थना पर यूनेस्को के सम्बद्ध सदस्यों के रूप में प्रवेश पा सकते हैं।

1.18.2 यूनेस्को के उद्देश्य तथा सिद्धान्त

उच्च आदर्शों तथा महान् सिद्धान्तों की स्थापना हेतु यूनेस्को का प्रादुर्भाव हुआ। यूनेस्को के प्रस्ताव में उसका उद्देश्य निहित है। ''युद्ध मनुष्यों के मस्तिष्कों में प्रारम्भ होते हैं, अतः मनुष्यों के मस्तिष्कों में ही शान्ति की सुरक्षा के लिए व्यवस्था की जानी चाहिए।'' शान्ति स्थापना हेतु यह एक नया मार्ग एवं नया सन्देश है। शान्ति स्थापना जो अभी तक राजनीतिज्ञों का विषय माना जाता था, यूनेस्को की

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

स्थापना से यह शिक्षाशास्त्रियों एवं बुद्धिजीवियों के विचार का विषय बन गया है। यदि मनुष्य एक-दूसरे को अधिक से अधिक जानने का अवसर पाते हैं तो संघर्ष की सम्भावनाएँ कम होती जाती हैं। यूनेस्को के प्रस्ताव में स्पष्ट उल्लेख है कि ''मानव-जाति के समस्त इतिहास में एक-दूसरे के जीवन और ढंग के सम्बन्ध में अज्ञान सामान्यत: मानव-मानव के बीच सन्देश और अविश्वास को जन्म देता है तथा इन मतभेदों के परिणामस्वरूप ही युद्ध होते हैं।'' शासको के द्वारा किए गए राजनीतिक तथा आर्थिक समझौते ही शान्ति स्थापना के लिए पर्याप्त नहीं है बल्कि स्थायी शान्ति की स्थापना के लिए आवश्यक यह है कि मानव जाति की बौद्धिक तथा नैतिक भावना को दृढ़ता के आधार पर निर्मित्त किया जाए। यूनेस्को द्वारा प्राप्त की जाने वाली शान्ति सेनाओं एवं आर्थिक समझौतों की शान्ति नहीं है, बल्कि वह मस्तिष्क और हृदय की शान्ति है। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा मानव-जाति के कल्याण के लिए यूनेस्को का निर्माण हुआ है। मानव-जाति के सामान्य कल्याण का विकास करना उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की स्थापना करना है। सत्य तो यह है कि मानव-जाति के कल्याण से ही अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिए मार्ग प्रशस्त होता है।

यूनेस्को का उद्देश्य शान्ति एवं सुरक्षा के लिए योगदान करना है जिसकी पूर्ति हेतु शिक्षा, विज्ञान तथा संस्कृति के द्वारा राष्ट्रों के मध्य निकटता की भावना का निर्माण करना आवश्यक है। यह संस्था विभिन्न समुदायों में परस्पर ज्ञान एवं सद्भावना उत्पन्न करने में सहायक होती है। इसके द्वारा जनशिक्षा, संस्कृति, ज्ञान तथा मैत्री को प्रबल समर्थन मिलता है। यथार्थ में यूनेस्को का कार्य प्रेरणा एवं प्रोत्साहन देने का है न कि प्रत्यक्ष हस्तक्षेप का। यूनेस्को किसी भी राष्ट्र के आन्तरिक क्षेत्र में आने वाले विषयों पर हस्तक्षेप नहीं करता।

1.18.3 यूनेस्को के कार्य और सफलताएं

''स्वयं संयुक्त राष्ट्र संघ और संयुक्त राष्ट्रसंघ का परिवार'' कही जाने वाली अनेक विशिष्ट एजेंसियों की भाँति यूनेस्को का जन्म भी शान्ति की आकांक्षा का प्रतिफल था जो मानव-इतिहास के अभूतपूर्व संकट से पैदा हुआ था। यह संकट था 'विशाल और भयानक युद्ध का- जो गरिमा, समानता और मनुष्य के परस्पर सम्मान के लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों से वंचित रखने का परिणाम था। यूनेस्को का अपने इतिहास के प्रारम्भिक वर्षों से लेकर अब तक काफी विकास हो चुका है और इसके लक्ष्यों को व्यापक बनाया गया है। इस संगठन ने न्याय, कानून के शासन और मानव अधिकारों और आधारभूत स्वतन्त्रताओं के प्रति विश्वव्यापी सम्मान को बढ़ाने के लिए शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति के माध्यम से विभिन्न राष्ट्रों में सहयोग को बढ़ावा देकर शान्ति और सुरक्षा में योगदान दिया है। यह इच्छा नए सिरे से जोर पकड़ रही है कि सुविधाहीन समुदायों में अनुभव की जा रही आवश्यकताओं के अनुसार यूनेस्को के उत्तरदायित्व भी बढ़ते जा रहे। संसार की वास्तविकताओं और लोगों की आकांक्षाओं के प्रति अधिक सतर्क रहते हुए यह संगठन पूरे किए जाने वाले कार्यों तथा उनकी तात्कालिकता के बारे में अनुमान लगा रहा है।''

यूनेस्को के कार्य शिक्षा, विज्ञान एवं संस्कृति तथा जन-संचारण के विविध एवं विस्तृत क्षेत्रों को आवृत करते हैं। यूनेस्को के माध्यम से लेखकों, कलाकारों, वैज्ञानिकों तथा अन्य बुद्धिजीवियों के बीच राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का विकास होता है। शिक्षा का विकास, विज्ञान का मानव कल्याण के लिए प्रयोग तथा मानव-जाति की संस्कृति के सरंक्षण आदि की व्यवस्था यूनेस्कों के प्रयासों से सम्भव है। यूनेस्को ज्ञान को संग्रहित करता है, उसकी अभिवृद्धि करता है तथा उसका वितरण करता है। प्राकृतिक विज्ञान के क्षेत्रों में सचिवालय ने समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र आदि की वार्षिक ग्रन्थ-सूचियाँ प्रकाशित की हैं। ये ग्रन्थ-सूचियाँ विशेष अध्ययन एवं शोध के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

बुद्धिजीवियों, वैज्ञानिकों, सृजनात्मक कार्यकर्त्ताओं और कलाकारों के विद्यमान गैर-सरकारी संगठनों को आर्थिक सहायता देकर यूनेस्को ने उनका अन्तर्राष्ट्रीय विकास किया है। यूनेस्को की प्रेरणाा और प्रयत्नों के फलस्वरूप, विश्वविद्यालय तथा चिकित्सा विद्वानों के अन्तर्राष्ट्रीय संघों की परिषद् जैसे कई संघ स्थापित किए हैं। यूनेस्को ने इन संस्थाओं को आर्थिक सहायता भी प्रदान की है जिससे वे अपने कार्यों को सम्पन्न कर सकें। यूनेस्को के माध्यम से अनेक विश्व-संगठनों को आर्थिक सहायता प्रदान की गई है एवं उन संगठनों ने अपने विविध क्षेत्रों में यूनेस्को के कार्यक्रम को लागू करने में सहयोग प्रदान किया है एवं इन संघों के द्वारा ही यूनेस्को ने समस्त संसार में बौद्धिक सहयोग को एक ऐसी प्रेरणा दी है जो इतिहास में अनुकरणीय है। यूनेस्को का गैर-सरकारी संगठनों से सम्बन्धित होना संस्था की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

यूनेस्को ने राष्ट्रीय स्तर पर बुद्धिजीवियों एवं जन-साधारण का सहयोग प्राप्त करने का प्रयास किया है। सदस्य-राज्य अपने देशों में राष्ट्रीय आयोगों की स्थापना करेंगे एवं व्यापक रूप से शासकीय, शैक्षणिक, वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक निकायों के प्रतिनिधि होंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

शासकीय तथा अशासकीय निकायों का सहयोग प्राप्त करना एक नया कदम एवं नया प्रयोग है। यूनेस्को से सम्बन्धित विषयों में राष्ट्रीय आयोग अपनी सरकारों के लिए परामर्शदाता के रूप में कार्य करते हैं। राष्ट्रीय आयोग के माध्यम से ही यूनेस्को का सन्देश जन-साधारण तक पहुँचाया जा सकेगा। यूनेस्को अपने अनेक उपयोगों के कारण आध्यात्मिक शक्तियों का महान् संघ बनता जा रहा है।

यूनेस्को ने सदस्य-राष्ट्रों के मध्य अनेक विषयों में समझौते कराए हैं। 'सर्वव्यापी प्रतिलिप्याधिकार समझौता' लेखकों, वैज्ञानिकों तथा कलाकारों के अधिकारों की रक्षा करता है। युद्ध के समय सांस्कृतिक सम्पत्ति की सुरक्षा सम्बन्धी समझौता और सन्धि रूप (जिसे 'सांस्कृतिक रेडक्रास' कहा जाता है) के अनुसार, युद्ध के समय ऐतिहासिक भवनों, संग्रहालयों, पुस्तकालयों तथा अन्य कलात्मक तथा वैज्ञानिक कृतियों की सुरक्षा की जाएगी। यूनेस्को ने राष्ट्रों के मध्य अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों तथा प्रशासकीय व्यवस्थाओं के माध्यम से शिक्षा, विज्ञान, संस्कृति तथा जन-संचारण के क्षेत्र में सराहनीय सहयोग प्राप्त किया है। यूनेस्को परामर्श के लिए श्रेष्ठ स्थल है जो राष्ट्रों के आन्तरिक क्षेत्राधिकार में हस्तक्षेप किए बिना हर तरह के सहयोग के लिए तत्पर है।

शिक्षा इस संस्था के समस्त कार्यों के हृदय पर स्थित है। उसने निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा के विकास हेतु अनेक उपाय प्रस्तुत किए हैं। नव स्वतन्त्र राष्ट्रों को यूनेस्को से अत्यधिक सहयोग प्राप्त हो रहा है। यूनेस्को ने अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना के विकास के दृष्टिकोण से इतिहास, भूगोल एवं विदेशी भाषाओं के शिक्षण में सुधार करने के प्रयत्न किए हैं। अविकसित राष्ट्रों को यूनेस्को ने उच्च तकनीकी संस्थानों को स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया है।

यूनेस्को ने बुनियादी शिक्षा कार्यक्रम पर भी ध्यान दिया है जिससे अज्ञान, निर्धनता और अव्यवस्था की सीमा को तोड़कर सर्वसाधारण व्यक्तियों को भी शिक्षित किया जा सके। बुनियादी शिक्षा के कार्यकर्त्ताओं को प्रशिक्षित करने के लिए बुनियादी शिक्षा केन्द्र स्थापित किए हैं। राष्ट्रीय तथा क्षेत्र स्तर पर विचार गोष्ठियाँ आयोजित करके तथा विशेषज्ञों को भेजकर यूनेस्को ने अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों को वयस्क शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम विकसित करने में सहायता पहुँचाई है। बच्चों को विश्व समाज में रहने के लिए तैयार करने हेतु यूनेस्को ने अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना का विकास करने का प्रयास किया है। यूनेस्को को प्रयास है कि बच्चों के मस्तिष्क को मिथ्या राष्ट्रीय अभिमान, घृणा तथा पक्षपात की मनोवृत्तियों से दूर रखा जाए।

यूनेस्को ने प्राकृतिक विज्ञानों तथा सामाजिक विज्ञानों के विकास पर बहुत अधिक ध्यान दिया है। यूनेस्को के माध्यम से वैज्ञानिक सहयोग की पृष्ठभूमि का उचित निर्माण हुआ है। यूनेस्को ने अणु केन्द्रीय शोध की यूरोपीय परिषद् की स्थापना में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है क्योंकि अणुशक्ति के क्षेत्र में कोई देश अकेला शोध के व्यय भार नहीं उठा सकता। यूनेस्को ने अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक संघ परिषद् को आर्थिक सहायता दी जिससे कि अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष आयोजना के अन्तर्गत समस्त संसार में वैज्ञानिक शोध के कार्यक्रमों को प्रारम्भ किया जा सका। मरुप्रदेशों को उर्वर बनाने के सम्बन्ध में अनेक, राज्यों में जो प्रयोग हो रहे हैं, उन्हें भी यूनेस्को व्यवस्था प्रदान कर रहा है। यूनेस्को ने उत्तर-क्षेत्रों को रहने योग्य बनाने में सहयोग किया एवं सामुद्रिक सम्पत्ति को भोजन के लिए उपयोगी बनाने में सराहनीय कार्य किया। यूनेस्को ने लेटिन अमेरिका, मध्यपूर्व, दक्षिण एशिया तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के लिए क्षेत्रीय विज्ञान सहयोग केन्द्र की स्थापना की जिन्होंने अपने क्षेत्रों में सूचनाओं, कर्मचारी वर्ग तथा सामग्री के विनिमय एवं शोध के समन्वय में सहयोग किया है।

यूनेस्को ने अनेक राष्ट्रों में सामाजिक विज्ञान संस्थान स्थापित करने के लिए विशेषज्ञ भेजे हैं। राज्यों के अनुरोध पर आन्तरिक तनावों का अध्ययन करने के लिए सामाजिक विज्ञानों के विशेषज्ञों की व्यवस्था की है तथा गैर-सरकारी संस्थाओं की सहायता की है। सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में यूनेस्को ने शोध के विकास में सराहनीय योगदान दिया। सामाजिक समस्याओं के हल के लिए सामाजिक विज्ञानों का प्रयोग यूनेस्को का अनूठा प्रयास है। यूनेस्को ने अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना पर प्रभाव डालने वाले तनावों का अध्ययन किया है तथा उन्हें बढ़ावा दिया है। यूनेस्को के निर्देशित अध्ययन से यह स्पष्ट हो गया है कि एक जाति को दूसरी से उच्च मानने की कोई यथार्थ भूमिका नहीं है। जातीय पक्षपात तथा जातिय विभेद जैसी बुराइयों को दूर करने के लिए यूनेस्को ने मनुष्यों के मस्तिष्कों का अध्ययन करने का प्रयास किया है। यूनेस्को के इस प्रयास में राष्ट्रों तथा संयुक्तराष्ट्र का सहयोग अत्यन्त आवश्यक है परन्तु दुर्भाग्यवश सदस्य-राष्ट्रों का सहयोग न मिलने पर दक्षिण अफ्रीका जैसे राष्ट्रों में यह पाप अभी भी पनप रहा है।

यूनेस्को ने औद्योगिक तथा तकनीकी परिवर्तन के सामाजिक प्रभावों पर शोध को प्रोत्साहित किया है। विश्व के जिन क्षेत्रों का औद्योगीकरण हो रहा है, उनके सामाजिक परिवर्तन के ऊपर शोध कार्य हुआ है जिससे अफगानिस्तान, बर्मा, कम्बोडिया, श्रीलंका, भारत,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इण्डोनेशिया, लाओस, मलाया संघ, नेपाल, पाकिस्तान, फिलिपाइन्स, सिंगापुर, ब्रिटिश बोर्नियो, थाइलैण्ड तथा वियतनाम आदि को लाभ मिला है। यूनेस्को ने अपने मुख्यालय में ही यूरोप के लिए वैज्ञानिक सहयोग ब्यूरो की भी स्थापना की है। यह ब्यूरो विज्ञान और प्रौद्योगिकी से सम्बन्धित क्षेत्रीय संस्थाओं के बीच सम्पर्क स्थापित करता है। ब्रिटेन के जीव वैज्ञानिक सर जूलियन हक्सली के प्रेरणादायक प्रयासों के बिना शायद यह संगठन यू. एन. ई. सी. आर. के स्थान पर 'यू. एन. ई. सी. ओ.' ही रह जाता। सर हक्सली लन्दन में संगठन के तैयारी आयोग के सचिवालय के निदेशक थे और बाद में वे इस संगठन के पहले महानिदेशक भी बने। वास्तव में 1942 में लन्दन में आयोजित शिक्षा सम्बन्धी मन्त्रियों के पहले ही सम्मेलन में यह प्रस्ताव रखा गया था कि उन्हें शिक्षा और संस्कृति के दो विषयों- जो अपने आप में काफी बड़े विषय हैं, तक ही सीमित रहना चाहिए। विज्ञान को थोड़े समय बाद एक ऐसे क्षेत्र के रूप में शामिल किया गया जिसका विकास करना भी नए अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का लक्ष्य था। आरम्भ से ही विज्ञान के कार्यक्रम आपस में घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध दो लक्ष्यों से जुड़े थे। ये लक्ष्य थे- विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास तथा विकास के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी का प्रयोग। निस्सन्देह, यूनेस्को ने जिस अन्तर्राष्ट्रीय बौद्धिक सहयोग को बढ़ावा देने के लिए जो प्रयास किया, वह वैज्ञानिक क्षेत्र के लिए बहुत उत्साह-वर्द्धक और सक्रिय सिद्ध हुआ। इसके अलावा वैज्ञानिक आधार पर अध्ययन और खोज करके समुद्री संसाधनों का पता लगाने का कार्यक्रम एक ऐसा क्षेत्र था जहाँ अन्तर-सरकारी कार्यक्रम बड़ी सफलता के साथ चलाया जा सकता था।

समुद्री, महासागरीय और तटीय क्षेत्रों में अनुसंधान कार्य विश्व भर में चल रहा है और समुद्री प्रदूषण का क्षेत्र भी शामिल है जिसमें भूकम्प के बारे में पूर्व चेतावनी देने से लेकर इंजीनियरी विज्ञानों का विकास करना, कम्प्यूटर विज्ञान से लेकर ऊर्जा के नए और बार-बार काम में लाए जा सकने वाले साधनों के बारे में अध्ययन करने तथा जल विज्ञान से लेकर विभिन्न भू-विज्ञान तक के विषय शामिल हैं। इस प्रकार के अध्ययनों से प्राप्त होने वाले निष्कर्षों को सैकड़ों विशेष प्रकाशनों के माध्यम से विश्व के विज्ञान समुदाय तक या अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाया जाता है। 'इम्पेक्ट ऑफ साइन्स ऑन सोसायटी' या 'नेचर एण्ड रिसोर्सिज' तथा 'इन्टरनेशनल सोशल साइन्स जर्नल' ऐसे ही विशिष्ट में से है जो यूनेस्को की विभिन्न गतिविधियों में विभिन्न विज्ञानों के महत्त्व को दर्शाते हैं।

यूनेस्को ने साहित्य, कला, संगीत, नाटक तथा लोक परम्पराओं को यथा उचित स्थान दिलाने का हर सम्भव प्रयास किया है। उसने मानव जाति की सांस्कृतिक धरोहर का उचित मूल्यांकन किया है। यूनेस्को के द्वारा सदस्य-राज्यों में विशेषज्ञों के दल भेजे गए हैं तथा संग्रहालयों को लोकप्रिय बनाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर चर्चा की गई है। सांस्कृतिक सम्पत्ति की सुरक्षा तथा पुनर्निर्माण के अध्ययन के लिए अन्तर्राष्ट्रीय अभियान चलाया गया है। यूनेस्को ने भारत, कोलम्बिया तथा नाइजीरिया में सार्वजनिक पुस्तकालयों की योजनाओं को सफल बनाकर पुस्तकालयों के विकास की प्रेरणा प्रदान की है। महाग्रन्थों के अनुवाद, कलाकृतियों के प्रकाशन, संगीत की ध्वनिबद्धता, सांस्कृतिक कार्यकर्त्ताओं का विनिमय यूनेस्को की अभूतपूर्व उपलब्धि है। यूनेस्को ने विश्व में सद्भावना विकसित करके विश्व के सभी राष्ट्रों को निकट लाने का कार्य किया है। राष्ट्रों तथा संस्कृतियों की परस्पर निर्भरता को प्रमाणित करने के लिए मानव-जाति के वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक इतिहास को 6 खण्डों में प्रकाशित किया जा रहा है।

पूर्व तथा पश्चिम के व्यक्तियों एवं उनके मूल्यों को आपस में अधिकाधिक समझने के लिए यूनेस्को द्वारा सांस्कृतिक मूल्यों पर परस्पर अवधारणा सम्बन्धी योजना को क्रियान्वित किया गया है। सूचना सामग्री तथा विचारों का प्रवाह दोनों ओर से प्रारम्भ हो गया है। यूनेस्को द्वारा पूर्व तथा पश्चिम के सामाजिक विज्ञानों एवं मानवीय शास्त्रों के विशेषज्ञों की बैठकें आयोजित होती हैं। छात्रवृत्तियाँ प्रदान करके शिक्षकों तथा शोध करने वाले विद्वानों को अन्य देशों की सांस्कृतियों का अध्ययन करने का अवसर उपलब्ध किया जाता है। अन्य राज्यों के साँस्कृतिक मूल्यों के प्रति सम्मान की भावना विकसित करने के उद्देश्य से पाठ्यक्रमों में सुधार किए गए हैं। पूर्व के साहित्य-ग्रन्थों का पश्चिम की भाषाओं में अनुवाद को प्रोत्साहित किया जाता रहा है। सदस्य-राष्ट्रों को यूनेस्को में मार्गदर्शन प्राप्त होता है। हमारा विश्वास है कि यूनेस्को के प्रयास से बौद्धिक तथा सांस्कृतिक दीवारों को तोड़ा जा सकेगा जिसने विश्व को विभाजित कर रखा है।

यूनेस्को ने प्रेस, रेडियो, फिल्म तथा टेलीविजन के विस्तार पर भी बल दिया है जिससे समझौते की भावनाओं को विकसित किया जा सके। यूनेस्को ने सदस्य राष्ट्रों को आर्थिक सहायता दी है तथा विशेषज्ञ भेजे हैं ताकि वे अपने संचार साधनों को सुधार सकें। पत्रकारिता की उच्च शिक्षा के लिए यूनेस्को द्वारा अनेक साधन जुटाए गए हैं। सूचनाओं तथा विचारों के स्वतन्त्रतापूर्वक आदान-प्रदान हेतु सब साधन उपलब्ध कराए जा रहे हैं। संयुक्तराष्ट्र के द्वारा कुछ ऐसे प्रभावशाली उपाय किए जाएँ जिससे विश्व में कटुता का वातावरण समाप्त हो जाए तथा विश्व के सभी क्षेत्र अपनी बौद्धिक उन्नति कर सकें एवं यूनेस्को के उद्देश्यों को सफलता से पूरा किया जा सके।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

मानव अधिकार और शान्ति को प्रोत्साहन देने से सम्बन्धित कार्यक्रम यूनेस्को के सबसे महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों में से है और उन्हें समाज-विज्ञान कार्यक्रमों में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। गन्दी बस्तियों में रहने वाले लोगों, बाहर से आकर बसने वाले तथा शरणर्थियों जैसे अल्पसंख्यक वर्ग के लोगों द्वारा जिन्हें आम तौर पर विभिन्न सुविधाएँ और अधिकार मुहैया नहीं हैं, मानव अधिकारों को इस्तेमाल करने में आने वाले रुकावटों का भी अध्ययन किया जा रहा है। मानव अधिकारों के क्षेत्र में यूनेस्को शुरू से ही जातिवाद और जातिवाद से सम्बन्धित सिद्धान्तों की भर्त्सना करता रहा है। 1950 के दशक में यूनेस्को के विभिन्न प्रकाशनों में इस सम्बन्ध में प्रकाशित की गई सामग्री से क्षुब्ध होकर दक्षिण अफ्रीका ने यह संगठन छोड़ दिया था। इस कार्यक्रम में युवकों और उनकी गतिविधियों के विभिन्न पहलुओं के बारे में सूचना का संकलन करना, उनका प्रचार करने तथा विश्लेषण करने, विकास कार्यों में युवकों के योगदान को बढ़ावा देने, अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और शान्ति व निरस्त्रीकरण को बढ़ावा देना भी है। जिस प्रकार यह एक तथ्य है कि विभिन्न राष्ट्रों को समानता के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक दर्जा प्राप्त है, उसी प्रकार यह भी एक वास्तविकता है कि उनकी संस्कृतियों को भी समान रूप से सम्मान दिया गया है। एक बार उनकी स्वतन्त्रता को मान्यता दिए जाने के बाद सभी देशों ने अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के सहयोग की अपील करके अपनी सांस्कृतिक विरासत को फिर से प्राप्त करने और उसके बचाव के उपाय करने शुरू कर दिए हैं।

मानव-जाति की सांस्कृतिक धरोहर का संरक्षण करने के उद्देश्य से इस समय यूनेस्को को बीस से अधिक अन्तर्राष्ट्रीय अभियान आयोजन और क्रियान्वयन के विभिन्न चरणों में हैं। ये परियोजनाएँ विभिन्न महाद्वीपों में चल रही हैं और इनमें वेनिस, एक्रोपालिश ऑफ एथेंस, पाकिस्तान में स्थित 4500 वर्ष पुराना भूमि के नीचे दबा हुआ मोहनजोदड़ो नगर, हायती स्थित दुर्ग और सेन्ट सासी का महल , मोरक्को में फेज और सेनेगल में गोरी द्वीप शामिल हैं। सारी मानव-जाति की धरोहर माने वाले उत्कृष्ट स्मारकों का संरक्षण करने की विचारधारा 1950 के दशक में शुरू हुई जबकि न्यूबिया के प्राचीन मन्दिरों को डूबने का खतरा बनने पर नील नदी पर आस्वान हाई बाँध बनाया गया था। यूनेस्को ने ज्ञान की अभिवृद्धि तथा अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना के विकास के लिए विदेशों में अध्ययन, शैक्षणिक, शैक्षणिक यात्राएँ तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रशिक्षण जैसी प्रत्यक्ष पद्धतियों को अपनाया है। विदेशियों से व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित करने से, विदेशों में जाकर रहने से, वहाँ के जीवन के व्यक्तिगत अनुभव से अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना तथा मानवीय एकता की भावना प्रबल होती है। यूनेस्को ने सदस्य राज्यों, संयुक्त राष्ट्र की विशिष्ट संस्थाओं तथा अशासकीय संस्थाओं के सहयोग से अनेक छात्रवृत्तियाँ तथा भ्रमण हेतु अनुदान प्रदान करने की व्यवस्था की है। नवोदित-राष्ट्रों के औद्योगिकरण तथा उच्च तकनीकी प्रशिक्षण में यूनेस्को का योगदान अमूल्य माना जाता है। यूनेस्को के माध्यम से श्रमिकों, शिक्षकों तथा रुग्णों के अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय को बहुत प्रोत्साहन मिला है।

1.18.4 यूनेस्को द्वारा स्थापित संगठन और संस्थाएँ

यूनेस्को ने अपने उद्देश्यो और कार्यों की पूर्ति के लिए विभिन्न संगठनों अथवा संस्थाओं की स्थापना की है, जिनमें से मुख्य ये हैं- अन्तर्राष्ट्रीय नाट्य संस्थान (International Theatre Institute), अन्तर्राष्ट्रीय संगीत परिषद् (International Music Council), दर्शन और मानवतावादी अध्ययन की अन्तर्राष्ट्रीय परिषद (International Council of Philosophy and Humanistic Studies), अन्तर्राष्ट्रीय समाजशास्त्र संघ (International Sociological Association), अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक विज्ञान संघ (International Political Science Association) एवं तुलनात्मक विधि की अन्तर्राष्ट्रीय समिति (International Committee of Comparative Law) त्रुटियों तथा विषम परिस्थितियों के होते हुए भी यूनेस्को की सफलताएँ प्रभावपूर्ण एवं उत्साहवर्धक हैं। महत्त्वपूर्ण कार्य करने के लिए यह संस्था अन्य संस्थाओं की अपेक्षा अधिक अच्छी स्थिति में है। यूनेस्को ने जाति विभेद के दोषों की ओर विश्व का ध्यान विशेष आकर्षित किया है। संसार के शिक्षाशास्त्रियों को अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना हेतु विचार-गोष्ठियों में एकत्रित करना यूनेस्को की बड़ी उपलब्धि है। यूनेस्को ने बुनियादी शिक्षा की ओर राष्ट्रों का ध्यान आकर्षित करने में सफलता पाई है।

1.19 सारांश

अस्तु आधुनिक पीढ़ी के लिए यह संस्था वरदान स्वरूप है। यूनेस्को ने मनुष्यों के हृदयों में भय, लोभ, जातीय पक्षपात एवं अन्य दोषों के स्थान पर शान्ति एवं विश्वास का वातावरण उत्पन्न करने में सफलता प्राप्त की है। यूनेस्को ने युद्ध के भयावह कीटाणुओं को नष्ट करके अच्छे विश्व के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। विश्व में एकता, आध्यात्मिक भावना, विश्वास तथा मानव गुणों को प्रोत्साहन करके यूनेस्को ने मानवता के प्रति अपन कर्त्तव्यों का निर्वाह किया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1.20 अभ्यास प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की ऐतिहासिक विवेचना करें।
2. महासभा एवं उसके कार्यों का परिचय दें
3. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व बैंक के कार्यों की विवेचना करें।
4. विश्व स्वास्थ्य संगठन का परिचय दें।
5. यूनेस्को किस प्रकार विश्व शांति में योगदान दे रहा है?

लघु निबन्धात्मक प्रश्न

1. संयुक्त राष्ट्र संघ के स्वरूप एवं संरचना पर प्रकाश डालें।
2. सुरक्षा परिषद के महत्त्व को रेखांकित करें।
3. संयुक्त राष्ट्र संघ के सचिवालय के क्या कार्य हैं?
4. अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना एवं कार्यों का परिचय दें।

बहु वैकल्पिक प्रश्न

1. तेहरान सम्मेलन कब हुआ था?
   (अ) 1943 (ब) 1944 (स) 1945
2. महासभा की मुख्य समितियां कितनी है?
   (अ) 7 (ब) 10 (स)12
3. न्यास व्यवस्था के मूल उद्देश्य कितने हैं?
   (अ) 4 (ब) 7 (स) 9
4. यूनेस्को को कितने प्रमुख अंग हैं?
   (अ) 3 (ब) 5 (स) 7
5. दक्षिण अफ्रीका ने कब संघ से सदस्यता छोड़ी थी।
   (अ) 50 के दशक में (ब) 60 के दशक में (स) 1975 में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई-2

नोबल शांति पुरूस्कार संस्था, स्टॉकहॉम अन्तर्राष्ट्रीय शांति शोध संस्थान, सर्वसेवा संघ एवं अणुव्रत विश्वभारती

संरचना

2.0 प्रस्तावना

2.1 उद्देश्य

2.2 नोबल शांति पुरस्कार संस्था

2.3 अल्फ्रेड नोबल की वसीयत

2.4 नोबल प्रतिष्ठान के उद्देश्य प्रक्रिया

2.5 नोबल शांति पुरूस्कार के मनोनयन एवं चयन की प्रक्रिया

2.6 नोबल शांति पुरूस्कार प्राप्त प्रमुख व्यक्ति एवं संस्थाएं

2.7 स्टॉकहॉम अन्तर्राष्ट्रीय शांति शोध संस्थान

2.8 सर्व सेवा संघ : स्थापना, उद्देश्य, सदस्यता, संरचना एवं कार्य

2.9 अणुव्रत विश्व भारती : परिचय एवं गतिविधियां

2.10 सारांश

2.11 अभ्यास प्रश्नावली

2.0 प्रस्तावना

अहिंसा एवं शांति की स्थापना प्रारम्भ से ही मानव सभ्यता का लक्ष्य रहा है तथा इस दिशा में निरन्तर प्रयास भी हो रहे हैं। आधुनिक काल में अहिंसा एवं शांति की प्रतिष्ठा की और भी आवश्यकता प्रतीत हुई है तथा इस लक्ष्य प्राप्ति के प्रयासों में गति भी आई है। इस दिशा में अनेक राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं वर्तमान में कार्यरत हैं तथा अपने-अपने क्षेत्र में उल्लेखनीय उपलब्धियां प्राप्त कर रहे हैं।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई में कुछ उन प्रमुख राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय शांति संस्थाओं को अध्ययन का विषय बनाया गया है, जो अहिंसा एवं शांति जैसे मूल्यों के प्रति समर्पित है।

2.2 नोबल शांति पुरस्कार संस्था

अहिंसा एवं शांति को समर्पित संस्थाओं में नोबल शांति पुरस्कार संस्था का नाम अग्रणी रूप से लिया जाता है, जो विश्व में अहिंसा एवं शांति की प्रतिष्ठा एवं प्रसार हेतु बहुमूल्य योगदान दे रही है। नोबल प्रतिष्ठान की स्थापना अलफ्रेड नोबल (डायनामाइट के अविष्कारक) के वसीयत के अनुसार 1900 में हुई। 10 दिसम्बर, 1896 को अल्फेड़ नोबल की मृत्यु उपरान्त वसीयत पर गंभीर विचार विमर्श हुआ जिसे अंतत: अप्रेल 26, 1897 को नार्वे की संसद द्वारा संस्तुति प्राप्त हुई। अल्फ्रेड नोबल की वसीयत मानवजाति के विज्ञान, साहित्य एवं शांति की विकास यात्रा में एक मील का पत्थर प्रमाणित हुई।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2.3 अल्फ्रेड नोबल की वसीयत

"The whole of my remaining realizable estate shall be dealt with in the following way : the capital, invested in safe securities by my executors, shall constitute a fund, the interest on which shall be annually distributed in the form of prizes to those who, during the preceding year, shall have conferred the greatest benefit to mankind. The said interest shall be divided into five equal parts, which shall be apportioned as follows : one part of the person who shall have made the most important discovery or invention within the field of physics, one part to the person who shall have made the most important chemical discovery or improvement; one part to the person who shall have made the most important discovery within the domain of physiology or medicine; one part to the person who shall have produced in the field of literature the most outstanding, work in an ideal direction, and one part to the person who shall done the most or the best work for fraternity between nations, for the abolition or reduction of standing armies and for the holding and promotion of peace congresses. The prize for physics and chemistry shall be awarded by the Swedish Academy of Sciences, that for physiological or medical works by Karolinska Institute in Stockholm; that for literature by the Academy in Stockholm; and that for champions of peace by a committee of five persons to be elected by the Norwegian Storting. It is my express wish that in awarding the prizes no consideration whatever shall be given to the nationality of the candidates, but that the most worthy shall receive the prize whether he be a Scandinavian or not."

2.4 नोबल प्रतिष्ठान के उद्देश्य प्रक्रिया

अपनी स्थापना एवं कार्य सम्पादन हेतु नोबल प्रतिष्ठान ने निम्नलिखित उद्देश्यों को स्वीकार किया है :-

1. नोबल प्रतिष्ठान की स्थानपना अल्फ्रेड नोबल की वसीयत के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु स्थापित की जायेगी।
2. नोबल पुरूस्कार वसीयत में उल्लिखित सांस्कृतिक उन्नयन हेतु पिछले वर्ष के किये गये कार्यों के अंकन के आधार पर किया जायेगा।
3. नोबल पुरूस्कार की अर्हता हेतु लेखन कार्य मुद्रित या प्रकाशित रूप में होने पर सुनिश्चित होगी।
4. एक ही कार्य से संबंधित 2-3 व्यक्तियों को सम्मिलित रूप से पुरुस्कार प्रदान किया जा सकता है, किन्तु तीन से अधिक व्यक्तियों को संयुक्त रूप से सम्मानित नहीं किया जायेगा।
5. यह पुरुस्कार केवल जीवित व्यक्तियों को ही प्रदत्त किया जायेगा।
6. यदि किसी वर्ष किसी को पुरुस्कार के योग्य न पाया जाये, तो पुरुस्कार की राशि अगले वर्ष के पुरुस्कार हेतु कार्य में ली जायेगी।
7. हर पुरस्कार के निर्णय हेतु तीन, चार या पांच सदस्यीय नोबल समिति का गठन किया जायेगा, शांति पुरुस्कार के लिए नार्वे संसद Storting जिसे नार्वे नोबल समिति के नाम से जाना जायेगा, निर्णय करेगी।
8. नोबल समिति के सदस्य होने के लिए स्वीडन की नागरिकता पूर्व अपेक्षा नहीं होगी तथा नार्वे नोबल समिति के सदस्य होने के लिए भी नार्वे की नागारिकता पूर्व अपेक्षा नहीं होगी एवं सीमित के सदस्य को मानदेय देय होगा।
9. पुरुस्कार हेतु व्यक्ति स्वयं को मनोनीत नहीं कर सकता, पुरुस्कार प्राप्त या अन्य योग्य अर्हता धारी ही किसी व्यक्ति या संस्था को मनोनीत कर सकेगा।
10. मनोनयन के साथ मनोनीत व्यक्ति या संस्था के संबंध में समस्त आवश्यक सूचनाएं एवं औपचारिकताएं पूर्ण होनी चाहिए।

2.5 शांति पुरूस्कार के मनोनयन एवं चयन की प्रक्रिया

शांति पुरुस्कार हेतु योग्य उम्मीदवार के चयन का दायित्व नार्वे नोबल कमेटी का है। यह कमेटी Storting (नार्वे की संसद)द्वारा पांव सदस्यों के नियुक्ति द्वारा गठित की जाती है। अन्य नोबल पुरूस्कारों के विपरीत नोबल शांति पुरुस्कार नार्थे की राजधानी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

ओसलो में प्रदान किया जाता है। नोबल कमेटी द्वारा आमंत्रित व्यक्ति के किसी संस्था का व्यक्ति के सन्दर्भ में मनोनयन प्रस्ताव पर ही विचार किया जाता है। कोई व्यक्ति या संस्था स्वयं का मनोनयन करने हेतु स्वतंत्र नहीं होते।

2.5.1 चयन प्रक्रिया

शांति पुरुस्कार हेतु चयन की प्रक्रिया प्रति वर्ष प्राय: सितम्बर माह से प्रारम्भ होकर अगले वर्ष के 10 दिसम्बर माह पुरुस्कार प्रदान किये जाने पर सम्पन्न होती है, जिसे संक्षेप में निम्नत: जाना जा सकता है।

सितम्बर : – सितम्बर माह में नोबल कमेटी अर्हता प्राप्त व्यक्तियों को गोपनीय मनोनयन पपत्र प्रेषित करती है। इन अर्हता प्राप्त व्यक्तियों में राष्ट्रीय संसद, सरकारों तथा अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालयों के सदस्य, विश्वविद्यालयों के कुलपति, सामाजिक शास्त्र, इतिहास, दर्शन, कानून, धर्मशास्त्र के आचार्य, शांति शोध संस्थाओं तथा विदेश विभाग के संस्थानों के मुखिया, पूर्व नोबल शांति पुरुस्कार विजेता, वर्तमान एवं भूतपूर्व नार्वे कमेटी के सदस्य तथा नार्वे नोबल प्रतिष्ठान के सलाहकार होते हैं।

फरवरी : – नोबल कमेटी, फरवरी तक प्रेषित किये गये मनोनयन आवेदनों पर ही विचार करती है। उसके बाद प्रेषित आवेदनों को अगले शांति पुरुस्कार के समय विचार करने हेतु स्थगित रखा जाता है।

मार्च-मई : – नोबल कमेटी प्राप्त मनोनयन आवेदनों पर विचार कर उनमें अत्यन्त योग्य उम्मीदवारों की सूची बना लेती है।

जून-अगस्त : – चयनित सूची की समीक्षा कमेटी के स्थायी सलाहकार के द्वारा होती है। सलाहकार का कार्य केवल समीक्षा ही होती है, वह किसी संस्था या व्यक्ति के मनोनयन का अंकन या इस हेतु किसी प्रकार की अनुशंसा हेतु स्वतंत्र नहीं होता है।

अक्टूबर : – अक्टूबर माह के पूर्वाद्ध में बहुमत की सम्मति से नोबल कमेटी शांति, पुरुस्कार हेतु व्यक्ति या संस्था का चयन करती है। यह निर्णय अंतिम होता है तथा इस के विरुद्ध कोई अपील नहीं की जा सकती है। इसके उपरान्त नोबल शांति पुरुस्कार की घोषणा की जाती है।

दिसम्बर : – शांति पुरुस्कार प्रदान करने का आयोजन 10 दिसम्बर को ओसलो में होता है, जहाँ पुरुस्कृत व्यक्ति को मेडल, डिप्लोमा और पुरुस्कार राशी का अभिलेख प्रदान किया जाता है।

इस पूरी प्रक्रिया में नोबल कमेटी पूर्ण गोपनीयता रखती है। मनोनीत व्यक्ति की सूचना, पुरुस्कार चयन हेतु की गई समीक्षा एवं व्यक्त किये गये विचारों को अगले 50 वर्षों तक गोपनीय रखा जाता है।

2.6 नोबल शांति पुरुस्कार प्राप्त प्रमुख व्यक्ति एवं संस्थाएं :

1901 में प्रारम्भ हुए नोबल शांति पुरुस्कार प्राप्त मुख्य व्यक्ति एवं संस्थाएं निम्न है। चूंकि यह समस्त व्यक्ति एवं संस्थाएं विदेशी हैं, अत: इन्हें अंग्रेजी में ही लिखा गया है :

1901 : Jean Henri Dunant (Switzerland), and Frederic Passy (France), 1902: Elie Ducommun (Switzerland) and Charles Albert Gobat, ;1903 : Sir William Randal Cremer (UK), ; 1904 : Institut de droit international (Gent, Belgium); 1905: Bertha Sophie Felicitas Baronin von Suttner, nee Countess von Chinic und Tettau (Austria), ; 1906 : Theodore Roosevelt (USA), president of the United States,; 1907 : Ernesto Teodoro Moneta (ltaly), : Louis Renault (France), ; 1908 : Klas Pontus Arnoldon (Sweden), : Fredrik Bajer (Denmark) ; 1909 : Augusts Marie Francois Beernaert (Belgium), : Paul Henribenjamin Balluet d'Estournelles de Constant, Baron de Constant de Rebecque (France); 1910 : Bureau International Permanent de la Paix (Permanent International Peace Bureau), Berne; 1911 : Tobias Michael Carel Asser (Netherlands) Alfred Hermannn Fried (Austria) ; 1912 : Elihu Root (USA), ; 1913 : Henri la Foutaine (Belgium), ; 1917 : International Red Cross, Geneva; 1919. Woodrow Wilson (USA); 1920 : Leon Victor Auguste Bourgeois, president of the Council of the League of Nations.

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1921 : Karl Hazalmer Branting (Sweden), Christian Lous Lange (Norway), 1922 : Fridtjof (Narway), 1925 : Sir Austen Chamberlain (UK) : Charles Gates Dawes (USA), ; 1926 : Aristide Briand (France) ;1927: Ferdinand (France), : Ludwig Quidde (Germany), ; 1929 : Frank B. Kellogg (USA) 1930 : Archbishop Lars Olof Nathan (Jonathan) 1931: Jane Addams (USA), : Nicholas Murray Butler (USA) ; 1933 : Sir Norman Angell (Ralph Lane) (UK) ; 1934 : Arthur Henderson (UK), 1935 : Carl von Ossietzky (Germany), 1936 : Carlos Saavedra Lamas (Argentina), 1937 : Viscount Cecil of Chelwood (Lord Edgar Algermon Robert Gascoyne Cecil), 1938 : Nansen International office for Refugees, Geneva ; 1944 : International Committee of the Red Cross : 1945 : Cordell Hull (USA) ; 1946 : Emily Greene Balch (USA), : John R. Mott (USA), 1947 : The Friends Service Council (UK) and The American Friends Service Committee (USA); 1949 : Lord John Boyd Orr of Brechin (UK), 1950 : Ralph Bunche for mediating in Palestine (1948); 1951 : Leon Jouhaux (France), ; 1952 : Albert Schweitzer (France) 1953 : American Secretary of George Catlett Marshall for the Marshall Plan.; 1954 : The office of the United Nations High Commissioner for Refugees.; 1957: Lester Bowles Pearson (Canada), 1958 : Georges Pire (Belgium), ; 1959 : Philip Noel-Baker (UK), ; 1960 : Albert Lutuli (South Africa), ; 1961 : Dag Hammarskjold (Sweden), ; 1962 : Linus Carl Pauling (USA) ; 1963 : International Committee of the Red Cross, Geneva : League of Red Cross Societies, Geneva.; 1964 : Martin Luther King Jr (USA), 1965 : United Nation's Children's Fund (UNICEF); 1968 : Rene Cassin (France), 1969 : International Labour Organization (I.L.O), Geneva.; 1970 : Norman Borlaug (USA), 1971 : Willy Brandt (Germany), ; 1973 : Secertary of State Henry A Kisinger (USA) and Foreign Minister Le Duc Tho (Vietnam, declined) ; 1974 : Sean Mac Bride (Ireland), : Eisaku Sato (Japan), prime minister.; 1975 : Andrei Dmitrievich Sakharov (USSR) ; 1976 : Betty Williams and Mairead Corrigan, ; 1977 : Amnesty International, London, ;1978 : President Anwar Al-Sadat (Egypt) and Prime Minister Menachem Begin (Israel) ; 1979 : Mother Teresa (India) ; 1980 : Adolfo P?ez Esquivel (Argentina), 1981 : The office of the United Nations High Commissioner for Refugees.; 1982 : Alva Myrdal (Sweden) and Alfonso Garcia Robles (Mexico), ; 1983 : Lech Walesa (Poland), 1984 : Bishop Desmond Mpilo Tutu (South Africa) ; 1985 : International Physicians for the Prevention of Nuclear War, Boston.; 1986 : Elie Wiesel (USA).; 1987 : Oscar Arias Sanchez (Costa Rica) ; 1988 : The United Nations Peace-Keeping Forces, New York.; 1989 : Tenzin Gyatso, the 14 th Dalai Lama.; 1990 : President Mikhail Sergeyevich Gorbachev (USSR),; 1991 : Aung San Suu Kyi (Burma), ;1992 : 1993 : President Nelson Mandela (South Africa) and former President Frederik Willem de Klerk (South Africa) ; 1994 : PLO Chairman Yasser Arafat (Palestine), Foreign Minister Shimon Peres (Israel) and Prime Minister Yitzhak Rabin (Israel), ; 1995 : Joseph Rotblat (Poland/UK) and the Pugwash Conferences and World Affairs, ; 1996 : Carlos Felipe Ximenes Belo (East Timor) and Jose Ramos-Horta (East Timor) ; 1997 : International Campaign to Ban Landmines (ICBL) and Jody Williams (VVAF) ; 1998 : John Hume (UK) and David Trimble (UK) ; 1999 : Medecins Sans Frontieres, Brussels, ; 2000 : President Kim Dae Jung (South Korea) ; 2001 : The United Nations and its secretary-general Kofi Annan (Ghana); 2002 : Jimmy Carter-former President fo USA ; 2003 : Shirin Ebadi, Iran.

2.7 स्टाकहोम अन्तर्राष्ट्रीय शांति शोध संस्थान (SIPRI)

स्टाकहोम अन्तर्राष्ट्रीय शांति शोध संस्थान (सिपरी) एक जागरूक संस्था है। इसकी स्थापना 1960 के दशक में स्वीडन की संसद द्वारा इस उपलक्ष में की गई थी कि पिछले एक सौ पचास वर्षों में स्वीडन ने किसी युद्ध में भाग नहीं लिया। इसकी स्थापना से लेकर अब तक इसका भरण–पोषण स्वीडन की संसद द्वारा किया जाता रहा है। इन बातों से ऐसा लगता है कि सिपरी स्वीडन के आन्तरिक मामलों से सम्बन्धित कोई राष्ट्रीय संस्थान होगी परन्तु वस्तुस्थिति इससे बिल्कुल भिन्न है। इसकी स्थापना एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के रूप में की गई थी। इसकी भाषा अंग्रेजी है तथा इसमें विश्व स्तर की सभी समस्याओं पर कार्य होता है। इसका एक अन्तर्राष्ट्रीय बोर्ड है जिसमें सारे विश्व के अनेक राष्ट्रों के प्रतिनिधि इसके सदस्य हैं। मिश्रित तथ्य यह है कि इस बोर्ड में स्वीडन का मात्र एक प्रतिनिधि होता है वह

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

भी अध्यक्ष के रूप में। यह बोर्ड अपने निर्णय लेने में सक्षम होता है तथा इस पर स्वीडन सरकार या उसकी संसद का कोई नियंत्रण नहीं होता तथा इसके कार्यों में स्वीडन की संसद एवं विदेश विभाग का कोई हस्तक्षेप नहीं होता।

संघर्ष सिद्धान्त, हिंसा के कारण एवं अन्तर्राष्ट्रीय तनाव जैसे विषय सिपरी के शांतिशोध के प्रमुख क्षेत्र है। शस्त्र भण्डार, शस्त्र नियन्त्रण एवं नि:शस्त्रीकरण के क्षेत्र में सिपरी का विशेष योगदान रहा है। यद्यपि शांति शोध का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है फिर भी कुछ विशेष क्षेत्रों तक सीमित रहते रहने के पीछे यही सिद्धान्त है कि यदि कार्य क्षेत्र बहुत व्यापक होता है तो शोध कर्त्ताओं के बीच सूचनाओं एवं प्रतिवादों का आदान-प्रदान सुचारू रूप से नहीं हो पाता और उनके शोध कार्यों के ठोस निष्कर्ष निकलने की सभांवनाऐं क्षीण हो जाती है। यहां पर भी उल्लेखनीय है कि सिपरी के ग्रन्थागार में उपलब्ध पुस्तकें, पाठ्यसामग्री एवं जर्नलस आदि मात्र उपरोक्त विषयों से ही संबंधित है। सिपरी द्वारा उपरोक्त कार्य-क्षेत्रों का चुनाव करने के पीछे यह भावना निहित थी कि इसकी स्थापना के काल में शस्त्रों की होड़ अपनी चरम सीमा पर थी और नित नये अस्त्र शस्त्रों का निर्माण एवं उनके भण्डारण का कार्य तीव्रता से चल रहा था। स्वीडन के तत्कालीन नि:शस्त्रीकरण मंत्री अलवर मिरडाल का ऐसा मानना था कि उस समय के अन्य अनेक संस्थान इस बात की जानकारी उपलब्ध नहीं करवा पा रहे थे जिसे जिनेवा शांति वार्ता के लिए आधार बनाया जा सके। वे एक ऐसे संस्थान की स्थापना करनी चाहती थी जिसके अध्येता सैन्य बलों को एवं उसके विकास की प्रक्रिया से उसके परिणामों को अच्छी तरह समझते हों तथा दुश्मनों के गम्भीर खतरे का हवाला देकर शस्त्रों के उत्पादन एवं उनका भण्डारण करने की वकालत करने वालों के प्रत्युत्तर में इन शस्त्रों के गम्भीर एवं विनाशकारी परिणाम सम्बन्धी तथ्य उपलब्ध करवा सकें। उन दिनों हालात कुछ ऐसे थे कि एक वर्ग तरह-तरह के तथाकथित दुश्मनों से होने वाले खतरें की बात करके अपनी-अपनी सरकारों के बजट का बड़ा हिस्सा शस्त्र उत्पादन पर लगाने का दबाव दे रहा था। ऐसे में इस वर्ग के प्रभावों को निष्फल करने के लिए नि:शस्त्रीकरण के पक्ष में तर्क पूर्ण एवं प्रभावकारी ढंग से तथ्य प्रस्तुत करने की आवश्यकता थी और यह कार्य सिपरी ने प्रारम्भ किया।

सिपरी का स्पष्ट लक्ष्य है सारे विश्व में होने वाली सैन्य विकास गतिविधियों का लेखा जोखा रखते हुए उसे रोकने के उपायों पर गहनता से विचार करना एवं ऐसे प्रस्ताव सामने लाना जिससे सैन्य विकास को निरूत्साहित किया जा सके। सिपरी समस्यापरक ऐसी संस्था है जो कोई सिद्धान्तों पर नहीं बल्कि तात्कालीन जीवन्त पहलुओं पर अध्ययन एवं शोध करता है। यह एक तटस्थ राष्ट्र में स्थित है तथा इसमें कार्यरत शोध अध्येताओं का चुनाव अलग-अलग राजनीति एवं आर्थिक ढांचे वाले राष्ट्रों से किया जाता है जो विभिन्न राजनीति एवं सामाजिक विषयों पर निष्पक्ष रूप से वस्तुस्थिति का प्रतिपादन कर सकें और जिनका किसी राष्ट्र या संगठन विशेष से विशेष झुकाव न हो। सिपरी ने जब 1960 में अपना कार्य प्रारम्भ तो शस्त्र नियन्त्रण की धारणा विशेषज्ञों के छोटे से समूह तक ही सीमित थी। उनको सिपरी द्वारा प्रकाशित पठन सामग्री भेजी गई। उसके पश्चात् परिस्थितियों में परिवर्तन हुआ और अधिकाधिक संख्या में लोग आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों एवं उनके विनाशकारी प्रभावों को समझने लगे और तब सिपरी का दायरा भी बढ़ने लगा। तीन रूपों में प्रकाशित होने वाली सिपरी के प्रकाशन विश्व शांति स्थापना हेतु सिपरी के कार्यों का एक आयाम है। इसकी शोध परियोजनाएं मुख्यतया चार वर्गों में चलायी जाती हैं-

1. सैन्य खर्चे एवं शस्त्र व्यापार का अध्ययन जिसके अन्तर्गत सारे विश्व में शस्त्र उत्पादन, उसके क्रय-विक्रय के आंकड़ों का अध्ययन किया जाता है।
2. सैन्य टेक्नालोजी विशेष रूप से रासायनिक एवं जैविक अस्त्र टेक्नालोजी के विकास का अध्ययन।
3. नि:शस्त्रीकरण एवं शस्त्र नियन्त्रण कार्यक्रमों का अध्ययन।
4. संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा आंशिक रूप से आर्थिक सहायता प्राप्त सैन्य गतिविधियों का पर्यावरण पर प्रभावों का अध्ययन।

विगत 10-15 वर्षों से आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों के उत्पादन, उनके भण्डारण एवं उनके नियन्त्रण का मुद्दा सभी अन्तर्राष्ट्रीय शांति वार्ताओं का केन्द्र बिन्दु बना रहा है। विश्व के अन्य अनेक संचार माध्यमों ने इस विषय पर चिन्तनोपरान्त काफी विस्तार से चर्चा की है। इनसे जुड़े सभी पहलुओं पर लम्बी बहस चलती रही है। इस बहस का ही परिणाम है कि आज लोग इन आणविक अस्त्र-शस्त्रों के विनाशकारी प्रभावों के प्रति जागरूक हो गये हैं। और विश्व के सभी देशों की सरकारों पर इन शस्त्रों को समाप्त करने का दबाव बढ़ता जा रहा है। इस उपलब्धी में सिपरी का योगदान उल्लेखनीय है। इन परिस्थितियों में सिपरी जैसी संस्थाओं का दायित्व और भी गुरूतर हो गया है। उन्हें लोगों तक यह संदेश पहुंचाने का जिम्मा अपने ऊपर लेना होगा कि वर्तमान समय की सबसे प्रमुख आवश्यकता शस्त्र नियन्त्रण एवं आणविक अस्त्र-शस्त्रों की समाप्ति की है।

Jawaharlal Nehru Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2.8 सर्व सेवा संघ

गांधीजी अपने जीवन काल में सर्वोदय की उद्देश्य पूर्ति में दृढ़ता से जुटे रहे, जिसमें उन्हें सन्तोषजनक उपलब्धि भी मिली। बापू ने कई संस्थाओं तथा आश्रमों की स्थापना एवं रचनात्मक कार्यक्रमों द्वारा सर्वोदय के लक्ष्य को प्राप्त करने का कठिन कार्य किया। संस्थाओं के माध्यम से जैसे-

1. अखिल भारतीय चरखा
2. अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ
3. हरिजन सेवक संघ
4. हिन्दुस्तान तालीम संघ

5. गौ-सेवा संघ आदि के द्वारा भारत के राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक कलेवर को स्वस्थ करने की भरपूर कोशिश की गयी। सन् 1930 में सेठ जमनालाल बजाज ने ''गाँधी सेवा संघ'' की स्थापना की और अपनी सारी सम्पत्ति बापू को दे दी। बापू ने जमनालाल बजाज को उस सम्पत्ति का ट्रस्टी बना दिया तथा इस ट्रस्टी के सदस्य राजगोपालाचारी, सरदार पटेल तथा राजेन्द्र बाबू बनाये गये। ''गांधी सेवा संघ'' नौ सत्याग्रहियों की अनुसंधान संस्था थी, जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अहिंसा के प्रयोग के बारे में खोज करती थी।

भारत की स्वतन्त्रता के पश्चात् गाँधीजी ने विचार व्यक्त किया कि प्रचार और व्यवस्थापन कार्य के साधन के रूप में कांग्रेस की उपयोगिता समाप्त हो चुकी है, अत: इसे विघटित कर ''लोक सेवक संघ'' के रूप में विकसित होना या करना चाहिए। संघ को राष्ट्र के उन सेवकों को समुदाय होना चाहिए, जो आर्थिक, सामाजिक और नैतिक स्वतन्त्रता की उपलब्धि के उद्देश्य से अधिकतर गाँवों में रचनात्मक कार्यक्रमों में लगे हुए हों। लोक सेवक शक्ति यानी सत्ता-संघर्ष से अलग रहेंगे और राष्ट्र के मतदाताओं को अपनी नैतिकता और सेवा से प्रभावित करेगे। गांधी जी के उक्त विचार को कांग्रेस के सदस्यों ने नहीं माना और वे सत्ता की कुर्सियों पर आसीन होकर भारत का कल्याण करने लगे। ''सर्व सेवा संघ'' की स्थापना गाँधी जी के उक्त विचारों को साकार करने की दिशा में ही एक प्रयत्न है।

2.8.1 स्थापना

गांधी जी के स्वर्गवास के पश्चात् उनके चिन्तनों पर विचार करने के उद्देश्य से 11 से 15 मार्च 1948 को गांधी प्रेमी नेताओं और रचनात्मक संस्थाओं के संचालकों ने विनोबा जी के मार्गदर्शन में एक राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन सेवाग्राम (वर्धा) में किया। इसी सम्मेलन में विनोबा जी के नेतृत्व में 13 मार्च 1948 को ''सर्व सेवा संघ'' की स्थापना की गयी।

2.8.2 उद्देश्य

सर्व-सेवा संघ का उद्देश्य सत्य और अहिंसा पर आधारित एक ऐसे समाज की स्थापना करनी है, जिसमें जीवन मानवीय तथा लोकतांत्रिक मूल्यों से अनुप्राणित हो, जो शोषण, दमन, अनीति और अन्याय से मुक्त हो तथा जिसमें मानव व्यक्तित्व के समग्र विकास के लिए पर्याप्त अवसर हो। इस उद्देश्य की सिद्धि की दृष्टि से संघ राज्य सत्ता की प्राप्ति के लिए होने वाली प्रतिद्वन्द्विता से सर्वथा निर्लिप्त रहेगा। वह ऐसे लोकतंत्र के विकास तथा स्थापना के लिए प्रयत्नशील होगा, जिसका आधार दलीय राजनीति नहीं, बल्कि शासक निरपेक्ष निर्दलीय ''लोकनीति'' होगी। वह समाज में जाति, पंथ, सम्प्रदाय, वर्ण, वर्ग, लिंग, रंग, भाषा, देश आदि के कारण उत्पन्न होने वाले भेदभाव को स्वीकार नहीं रहेगा। उसका प्रयत्न होगा कि समाज में एक ऐसी जीवन पद्धति का विकास हो, जिसमें मानव-मानव के बीच निरन्तर समता और साझेदारी बढ़े, वर्गों का निराकरण हो, पूंजी और श्रम का विरोध मिटे तथा विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत खादी, उद्योग, कृषि और पशुपालन जीविका के मुख्य साधन बनें। संघ अपने कार्यक्रमों द्वारा शांति, प्रेम, मैत्री, करुणा और न्याय की उदात्त भावनाओं को जागृत करेगा। अहिंसा की मर्यादाओं का पालन करते हुए संघ लोकशक्ति का निर्माण करेगा तथा सम्पूर्ण क्रान्ति के द्वारा सर्वोदय की सिद्धि के लिए रचनात्मक कार्यक्रम और आवश्यकतानुसार सत्याग्रह के उपायों का प्रयोग करेगा।

2.8.3 सदस्यता की शर्तें

15 साल या उससे अधिक आयु का हर व्यक्ति, जो लोकसेवक की निष्ठाओं को मान्य करके सदस्यता पत्र पर हस्ताक्षर करता है, लोक सेवक बन सकेगा, बशर्तें सदस्यता के लिए उसे ऐसे दो लोक सेवकों का अनुमोदन प्राप्त हो, जो कम-से-कम दो वर्षों से

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

लोकसेवक हो। लोकसेवक पहले लोक श्रद्धांजलि के रूप में हाथ की काती हुई एक गुण्डी सूत या एक रुपया सदस्यता शुल्क के रूप में देते थे। अब शुल्क के रूप में पाँच रुपये या छः गुण्डी सूत देना पड़ता है। सर्व सेवा संघ के उद्देश्यों और कार्यक्रमों के प्रति सहानुभूति और सहयोग की भावना रखने वाले सर्वोदय मित्र बन सकते हैं। सर्वोदय मित्र अपनी भावना के प्रतीक के रूप में वह जिला सर्वोदय मण्डल या सर्वे सेवा संघ को एक रुपया देगा। सर्वोदय मित्र की सदस्यता की शर्ते कार्य समिति समय-समय पर तय करेगी।

2.8.4 संरचना

(क) प्राथमिक सर्वोदय मण्डल :- किसी एक क्षेत्र में काम करने वाले कम-से-कम पाँच लोक सेवकों की संगठित इकाई प्राथमिक सर्वोदय मण्डल कहलाती है।

(ख) जिला सर्वोदय मण्डल :- लोक सेवकों की संख्या कम-से-कम 25 हो, तो वे मिलकर ''जिला लोकसेवक'' और कम-से-कम 15 सर्वोदय मित्र बने हों, वहाँ जिला सर्वोदय मण्डल का गठन किया जा सकता है, लेकिन हर हालत में मण्डल का पदाधिकारी लोकसेवकों में से होगा।

(ग) प्रदेश सर्वोदय मण्डल :- जिला सर्वोदय मण्डलों के संयोजक अथवा अध्यक्ष तथा प्रत्येक जिले के एक प्रतिनिधि को मिलाकर हर राज्यों में एक प्रदेश सर्वोदय मण्डल होगा।

जिला सर्वोदय मण्डलों की ओर से निर्वाचित प्रतिनिधियों और प्रतिनिधियों की कुल संख्या के दस प्रतिशत की मर्यादा में अध्यक्ष-द्वारा मनोनित लोकसेवकों को मिलाकर सर्व सेवा संघ बनता है। सर्व सेवा संघ के बहुमत के बजाय सर्वसम्पत्ति-सहमति से पदाधिकारी की नियुक्ति करते हैं। इन लोकसेवकों का अधिवेशन वर्ष में दो बार होता है, जिसमें संघ के कार्यक्रम तय किये जाते हैं।

सर्व सेवा संघ सर्वोदय समाज को सलाह और मदद देने वाली एक संयुक्त संस्था है। यह सच है कि यह एक संगठन है, फिर भी यह मानवों का संगठन न होकर कार्यों का संगठन है। यह सर्वोदय के कार्यालय सम्बन्धी कार्य करता है। उसके पास सेवा के सिवा और किसी प्रकार की सत्ता नहीं होती। सर्व सेवा संघ के सारे निर्णय सर्व-सम्मति या सर्वानुमति से होता है।

2.8.5 सर्व सेवा संघ के कार्य

1. सर्वोदय दिवस मनाना :- प्रत्येक वर्ष 30 जनवरी महात्मा गांधी के निर्वाण दिवस को अपने-अपने गाँव मुहल्ले की सफाई करना, दोपहर को एक घंटा मौन रहना, सूत कातना और उसके बाद सामूहिक प्रार्थना की जाती है।

2. सर्वोदय मेला :- 12 फरवरी को (गाँधी जी के अस्थि विसर्जन के दिन) ऐसे स्थानों पर जहाँ गाँधी जी की अस्थियाँ बहायी गई हों, वहाँ सर्वोदय मेला का आयोजन करना सर्व सेवा संघ का कार्य है। सर्वोदय में आस्था रखने के चिह्नस्वरूप सूती लत्ती (अपने हाथ की काती गयी) सेवा संघ में जमा करना, सामूहिक मौन कताई और प्रार्थना करनी। इस जमा की गई सूत की गुण्डी से आय का उपयोग श्रम पर या श्रमदान पर चलने वाली संस्थाओं की स्थापना या मदद करने में आता है।

3. सर्वोदय पखवारा :- 30 जनवरी से 12 फरवरी तक उपर्युक्त कार्यक्रमों को सम्पादित करना, सर्वोदय साहित्य का प्रचार-प्रसार करना।

4. सर्वोदय आन्दोलन :- सर्वोदय समाज व्यापक बने, सारे विश्व में सर्वोदय समाज का मुक्त संगठन बने, इसके लिए स्थायी संयोजन समिति का निर्माण करना, जो विदेशों में अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों का आयोजन करे। आपस में सम्पर्क और विचार विनिमय के लिए आमतौर पर फरवरी या मार्च में तीन-चार दिनों का शिविर करना भी सर्व संघ के कार्य के अन्तर्गत आता है।

5. सर्वोदय मासिक पत्रिका :- सर्व सेवा संघ सर्वोदय विचार से अनुप्राणित सर्वोदय मासिक पत्रिका का भी प्रकाशन करता है। वर्तमान में ''सर्वोदय जगत'' के नाम से सर्व सेवा संघ एक पत्रिका प्रकाशित करता है। यह पाक्षिक पत्रिका है। इसके सम्पादक गाँधी विचारक ही होते हैं।

2.8.6 सर्व सेवा संघ द्वारा किये गये कार्य

आचार्य विनोबा भावे, लोकनायक जयप्रकाश, दादा धसर्माधिकारी, आचार्य धीरेन्द्र मोहन दत्त, राममूर्ति आदि जेष्ठ मार्ग दर्शकों

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

के साथ सारे देश भर में कार्यरत हजारों लोक सेवकों ने इन पैंतालिस सालों में कई राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय समस्यायें सुलझाने में योगदान दिया। सर्व सेवा संघ के द्वारा सम्पादित कार्य निम्नवत हैं :-

1. सेवा व शांति कार्य

भारत विभाजन तथा बंगला देश के बनते समय, असमी-बंगाली भाषाई झगड़े में, बिहार, गुजरात, महाराष्ट्र में साम्प्रदायिक दगे आदि में शांति प्रस्थापना कार्य और विस्थापितों के लिए सेवा शिविर चलाया गया।

बिहार का आकाल, मौरवी का बांध टूटने के कारण तबाही, आन्ध्र में सामुद्रिक तूफान से पीड़ित लोगों में कई महीने कार्यकर्त्ता सेवा में जुटे रहे। चीन के हमले के बाद सरहद पर केन्द्र खोलकर लोगों को ढाँढ़स बँधाया गया।

सर्व सेवा संघ ने सन् 1960 और 1972 में चम्बल के 541 बागियों का विनोबा एवं जयप्रकाश जी के सामने समर्पण और बाद में बागियों को बसाने का काम किया।

विदेशों में मिश्र, साइप्रस तथा अफ्रीकी देशों के कबिलाई दंगों में अशांति शमन, विश्वशांति सेना में योगदान, अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध निरोधक संघ के काम में सहयोग इत्यादि।

2. राष्ट्रीय संकट और एकात्मकता

सर्व सेवा संघ नागालैण्ड के विद्रोही नेता फिजो, कश्मीर के नेता शेख अब्दुल्ला और भारत सरकार के बीच सुलहनामा कराया। हिन्दी के विरुद्ध दक्षिण भारत में खड़ी बगावत को शान्त करने वाला ''त्रिभाषी फार्मूला'' संघ ने ही दिया। संघ द्वारा पंजाब के आंतकवादी और असम विद्यार्थी आन्दोलन की समस्या हल करने के लिए उनमें कार्य करके सरकार को सुझाव दिये गये।

3. आजादी बचावो कार्य

सर्व सेवा संघ ने आपातकाल में भाषण, लेखन तथा संगठन की आजादी को समाप्त करने के शासकीय कदम के खिलाफ सत्याग्रह किया। भारत में फिर से प्रजातन्त्र की स्थापना के लिए योगदान किया।

संघ ने विदेशी कम्पनियों द्वारा होने वाली लूट, शोषण और तद्जन्य आने वाली आर्थिक गुलामी, बेकारी, आतंकवाद का मान कराने के लिए गाँधी की चुनौती, प्रचार आन्दोलन आठ हजार गाँवों में पहुँचाया।

विदेशीय बहुर्राष्ट्रीय के शिकांजे से विदेशी कर्ज और उससे आने वाली राजनैतिक सम्प्रभुता के संकोच के खिलाफ ''विदेशी भगाओं और स्वदेशी अपनाओ'' का जन आन्दोलन, आजादी बचाओ आन्दोलन सर्व सेवा संघ-द्वारा आज भी चल रहा है।

4. अर्थनीति की नयी दिशा

राजकीय आजादी जैसा ही शांतिमय आन्दोलन आर्थिक शोषण से मुक्ति के लिए भूदान, ग्रामदान के जरिये चलाया गया, जिससे तीन लाख भूमिहीन परिवारों में चौदह लाख एकड़ जमीन बँटी। सैकड़ों गाँवों में ग्राम कोष, व्यसन मुक्ति, कुरीती निर्मूलन, खेती ग्रामोद्योग-द्वारा उत्पादन में बढ़ोत्तरी, ग्रामसभा-द्वारा गाँव का नियोजन, आपस में झगड़ों का निपटारा आदि काम राजस्थान, बिहार, गुजरात, उत्तरप्रदेश, तमिलाडू, महाराष्ट्र आदि प्रदेशों में चले रहे हैं।

5. ट्रस्टीशिप

''सर्व भूमि गोपाल की'' तथा ''सम्पत्ति सब रघुपति के आही'' इस विचार का प्रचार किया। श्रमिक, कलाकार, उद्योगपति, विद्वान सभा को स्वामित्व की भावना को छोड़कर अपने गुण, साधन इत्यादि समाज की भलाई में लगाने चाहिए- इस मान्यतास को लेकर बम्बई, अहमदाबाद, पूना में प्रयत्न चल रहे हैं।

6. नेताशाही, घरानाशाही निराकरण तथा गणसेवकत्व का प्रस्थापन

किसी बड़े नेता के बिना सामान्य कार्यकर्त्ता एक जुट होकर सामूहिक पद-यात्राओं द्वारा भूमि और अन्य समस्याओं का समाधान कर सकते हैं- सर्व सेवा संघ-द्वारा यह कई बार सिद्ध किया गया।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जब देश में सत्ता और सम्पत्ति की दौड़ में नेता कहलाने वाले लोग हों, भ्रष्टाचार फैला हो, गुण्डों के डंके बजे हों, गुटबाजी से देश त्रस्त हो, ऐसे समय किसी पद या पैसे से गुमराह न होने वाले हजारों नि:स्वार्थ समाज सेवक संघ ने खड़े किये हैं।

7. राष्ट्रीय सम्पत्ति और नैतिक मूल्यों का रक्षण

संघ ने गोवंश हत्या रोकने के लिए सत्याग्रह, जंगल बचाने के लिए चिपको आंदोलन, भूमि, पानी, हवा, फसल को दूषित करने वाले रसायनिक खाद और कीटानाशकों का परिचय देने तथा देसी खाद प्रचार करके पर्यावरण रक्षा में योगदान दिया।

लोगों की नैतिकता को खत्म करने वाली शराब, जुआ, लॉटरी, अश्लील चित्र के खिलाफ आंदोलन, भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन, ऐसे कई कार्यक्रम संघ ने स्वत: चलाये और अन्यों को सहयोग दिया है।

8. लोकनीति का निर्माण

सर्व सेवा संघ ने मतदाताओं को प्रशिक्षित करके अनियंत्रित लोक प्रतिनिधियों पर अंकुश लगाने हेतु और मतदाताओं की सीधी भागीदारी प्रशासन में हो, इसलिए मतदान जागरण का कार्य चलाया।

9. सत् साहित्य प्रकाशन

संघ ने इस विचार-धारा को लोगों में प्रचारित करने के लिए वाराणसी में सर्वोदय दर्शन, अध्यात्म, ग्राम स्वराज्य, प्राकृतिक चिकित्सा, खेती, गौ-सेवा, सेवाधर्म समन्वय, सम्पूर्ण क्रान्ति आदि विषयों पर अंग्रेजों हिन्दी में दो सौ से अधिक किताबें ''न हानि न लाभ'' के आधार पर प्रकाशित कीं। इन दो भाषाओं के अलावा प्रादेशिक भाषाओं में भी साहित्य और पत्रिकाएं प्रकाशित की जाती है। 'सर्वोदय जगत' पत्रिका संघ का मुख्य पत्र है।

2.8.7 सर्व सेवा संघ की आर्थिक-व्यवस्था

सर्व सेवा संघ अपने कार्यकर्त्ताओं और कार्यालयीन कामों के लिए विदेश या सरकार से मदद नहीं लेता है। संचित निधि बड़े धनी दाता को भी प्रमुख स्रोत इस संघ ने नहीं माना है। जनता के उत्थान के लिए आम जनता की हिंसा शक्ति विरोधी दंडशक्ति से (शासकीय शक्ति) भिन्न स्वतन्त्र 'तीसरी लोकशक्ति' खड़ी करके प्रकृति को हानि न पहुँचाकर सर्वोदयकारी, समृद्ध-सन्तुलित समाज का गठन संघ का लक्ष्य है।

इस काम के लिए कार्यकर्त्ता प्रशिक्षण, सभा, सम्मेलन, शिविर व अन्य कार्यों के लिए जिला, प्रदेश सर्वोदय मंडलों और सर्व सेवा संघ को पच्चीस लाख रुपय आम लोगों से चन्दे में प्राप्त होते हैं।

2.8.8 हर कोई गांधी अंजलि दे

गाँधी सवा सौ साल जीवित रहकर सबकी भलाई होने वाले सर्वोदय समाज देखना चाहते थे। सन् 1994 में उनकी 125 वीं वर्षगाँठ मनाई गई है। दुनिया में सोवियत प्रणीत या अमरीका प्रणीत व्यवस्थाओं ने मानव जाति के सामने प्रश्न चिह्न खड़े किये हैं, तब दुनिया के 53 नोबेल पारितोषिक विजेताओं और अनेक चिन्तकों-द्वारा गाँधी मार्ग पर ध्यान खींचा गया है और गाँधी जी की कर्मभूमि भारत पर उनकी निगाहें हैं।

सर्व सेवा संघ का भारतवासियों से यह निवेदन है कि गाँधी का रास्ता छोड़ने के कारण भारत की सभी क्षेत्रों में दयनीय हालत हो गयी है। भारत में आपसी लड़ाई चल रही है, और विदेशियों का जाल बिछाया जा रहा है। संघ आपसे प्रार्थना करता है कि आज की भोगवादी केन्द्रित शासकीय अर्थनीति की जगह संयम, सादगी, सहिष्णुता पर आधारित ग्राम नगर स्वराज्य की ओर हम कदम बढ़ाये।

2.9 अणुव्रत विश्व भारती

विश्व की अन्य अनेक अहिंसा शिक्षण-प्रशिक्षण की संस्थाओं की भांति भारत में भी कई सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थाएं अहिंसा के शिक्षण-प्रशिक्षण एवं प्रसार के द्वारा अहिंसा के व्यावहारिक स्वरूप को प्रसार का आधार प्रदान करती है। अणुव्रत विश्व भारती (राजसमन्द) संस्था अन्य अनेक रचनात्मक कार्यक्रमों को अहिंसा के शिक्षण-प्रशिक्षण एवं कार्यक्रमों के द्वारा एक शक्तिशाली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

मंच प्रदान करता है। ये संस्था जैन श्वेताम्बर तेरापंथ सम्प्रदाय के नवम आचार्य श्री तुलसी की परिकल्पनाओं का मूर्त्त रूप है। एक धार्मिक गुरू होने के उपरान्त भी समाज में व्याप्त हिंसा, अनैतिकता, भ्रष्टाचार, आतंकवाद, प्रदूषण, सामाजिक कुरीतियां, अस्पृश्यता, साम्प्रदायिकता, बढ़ती आबादी इत्यादि समस्याओं के निराकरण के लिए 1948 में अणुव्रत आन्दोलन का प्रवर्तन किया था जिसमें व्यक्ति के अन्य अनेक कार्यक्रमों के द्वारा चरित्र विकास तथा नैतिक विकास हेतु प्रयास किये गये। इन प्रयासों को विभिन्न स्तर तथा विभिन्न रूपों में क्रियान्वित करने हेतु राजसमन्द में 1982 में अणुव्रत विश्व भारती की स्थापना की गई। अणुव्रत आन्दोलन के स्वरूप को राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान करने हेतु तथा अहिंसक आन्दोलन के कार्यक्रमों का परिचय कराने हेतु शिक्षण, प्रशिक्षण, प्रदर्शन द्वारा उल्लेखनीय कार्य किये गये है।

अणुव्रत विश्व भारती के अन्तर्गत कई नवीन प्रवृत्तियों की रूप-रेखा बनी जिसके अन्तर्गत संचालित प्रवृत्तियों में मुख्य निम्न हैं-

1. बालोदय
2. अणुव्रत दीर्घा
3. प्राकृतिक जीवन-केन्द्र
4. अणुव्रत साहित्य परिषद्
5. अणुव्रत अन्तर्राष्ट्रीय परिवार
6. प्रेक्षाध्यान एवं जीवन-विज्ञान अकादमी
7. अणुव्रत अन्तर्राष्ट्रीय ग्राम
8. तारा मण्डल (प्लेनेटोरियम)
9. मैत्री सभागार
10. विश्व-दर्शन
11. शांति एवं समस्या-समाधान केन्द्र
12. छात्रावास
13. अतिथि गृह

2.9.1 बालोदय

बालक का सहज स्वाभाविक गुण है- वातावरण को निहारना, अनुभव करना और ग्रहण करना। वातावरण ही बालक के भावी जीवन का सांचा होता है, उस सांचे के अनुरूप ही बालक का जीवन बनता और बढ़ता है। यह तथ्य ही आधार है 'बालोदय' की सम्पूर्ण योजना का। इसके अन्तर्गत 'निलयम्' में कुछ ऐसे कक्षों का निर्माण किया गया है जो बिना पुस्तकों के बालकों के सर्वांगीण विकास में सहायक होंगे, जैसे-

(क) वीर बालक कक्ष

(ख) विनीत बालक कक्ष

(ग) महान् बालक कक्ष

वीरता, विनम्रता और महानता की प्रेरणा प्रदान करने वाले विश्व के कुछ चुने हुए बालकों के जीवन परिचयमय चित्र एवं झाकियों का इनकी दीवारों पर प्रदर्शित किया है ताकि बालकों के मन में वीरता, विनम्रता एवं महानता के भाव उत्पन्न हो सकें।

(घ) कौतुकालय- इस कक्ष द्वारा विश्व के दर्शनीय स्थानों, विचित्र पशु-पक्षियों तथा विश्व की भिन्न-भिन्न संस्कृतियों को पर्दे पर दिखाया गया है। मनोरंजन और जानकारी की दृष्टि से यह अत्यधिक कौतुक भरा है।

(ङ) गुड़िया घर- गोलाकार दूसरी और तीसरी मंजिल में क्रमशः भारत के विभिन्न प्रान्तों और विश्व के विभिन्न राष्ट्रों की वेश-भूषा एवं सांस्कृतिक जानकारी गुड़ियाओं के माध्यम से दी जाती है।

(च) संग्रहालय- देश-विदेश की भिन्न-भिन्न विषयों से संबंधित वस्तुओं का संग्रह, वस्तुओं के गुण, दोष, विशेषता और उपयोग का बालकों को प्रत्यक्ष दर्शन और प्रायोगिक ज्ञान कराया जाता है।

(छ) पुस्तकालय एवं वाचनालय- तीसरी मंजिल में तीन बड़े कक्ष हैं। प्रथम कक्ष में भारत की प्रत्येक भाषा का बाल साहित्य, द्वितीय कक्ष में विदेशी भाषाओं का बाल साहित्य तथा तृतीय कक्ष में पत्र-पत्रिकाओं के पठन-पाठन की व्यवस्था है। विभिन्न भाषाओं के बाल-साहित्य का यह अनूठा पुस्तकालय एवं वाचनालय है।

(ज) मुक्त मंच- प्रकृति की गोद में वृक्षों और लताओं की छांव में बैठने के लिए ऊपर से नीचे तक लम्बी चौकियां, सामने स्टेज और पानी के टेंक हैं। यहां सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा सभा-सम्मेलन आदि आयोजनों का अपना अलग ही आनन्द है। यहाँ बालक आसन, प्राणायाम, व्यायाम आदि के अभ्यास भी करते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(झ) महापुरुष जीवन– विश्व के 100 महापुरुषों के जीवन–परिचय से युक्त पदों का निर्माण कराया जाता है। यह लघु रंगमंच लताओं से आच्छादित है।

(ञ) बाल कला–केन्द्र– घर और स्कूल की टूटी–फूटी बेकार वस्तुओं का उपयोग कलात्मक साधन–सामग्री बनाने में कैसे किया जाये, इसका यहां बालकों को प्रशिक्षण दिया जाता है।

(ट) जीवन–विज्ञान कक्ष– अपने आपको देखने, जानने और समझने के साथ–साथ अपनी शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक क्षमताओं तथा क्रियाओं को स्वस्थ और सन्तुलित रखने की विधियों और प्रयोगों का ज्ञान एवं अभ्यास तथा उनसे संबंधित यन्त्रों व साधन–सामग्री की व्यवस्था है।

(ठ) प्रेक्षा–कन्दराएं– इनमें कुछ ऐसी साधन–सामग्री उपलब्ध करायी जाती है जिनसे बच्चों को लगता है कि वे कोई खेल–खेल रहे हैं किन्तु इससे उनमें एकाग्रता का सहज विकास होता है। प्रथम कन्दरा में चिन्तन की एकाग्रता, दूसरी में इन्द्रियों की एकाग्रता तथा तीसरी में बुद्धि की एकाग्रता का बालकों को अभ्यास कराया जाता है।

(ड) सहस्त्रधारा– ऊपर के जलाशयों से नीचे के जलाशयों में जब सैकड़ों छिद्रों से पानी गिरता है तो जलतरंग की मधुर–ध्वनि से संगीतमय वातावरण उपस्थित होता है। इससे बालक सहज ही आनन्द्रित होते हैं।

(ढ़) बाल–क्रीड़ांगन– दो ऊंटों, दो जिराफों, दो हाथियों की विशाल आकृतियों के बीच झूलने के झूले आदि, अनेकानेक विचित्र आकृतियों में निर्मित साधनों के बीच बहते पानी की छटा और तैरने के अभ्यास के लिए तरण ताल आदि हैं। बालकों के आमोद–प्रमोद एवं सर्वांगीण विकास का यह अद्वितीय उपक्रम है।

(ण) नन्दन वन– एक टेढ़ी–मेढ़ी, ऊंची–नीची पगडन्डियों वाली जापानी शैली की वाटिका, चारों और वृक्षों और लताओं के कुंज, बीच में छोटी–सी तलैया में निर्मित कृत्रिम नाव, मगरमच्छ आदि। एक छोर पर झरता पानी, रंग–बिरंगी रोशनी के बीच फव्वारे आदि से नन्दन वन की रचना की गई है।

(त) पंचवटी– चारों ओर ऊंचे–नीचे भवनों का निर्माण, किनारों पर जलाशय, वृक्षों और लताओं पर खिलते फल–फूल तथा चारों ओर प्राकृतिक दृश्यावलियां पंचवटी में हैं।

2.9.2 अणुव्रत दीर्घा

अणुव्रत दर्शन के विभिन्न आयामों को संजीव एवं आकर्षण चित्रों में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। अणुव्रत ग्राम एवं अणुव्रत नगर की परिकल्पना को प्रत्येक आकृति में चार गहरे विस्तृत एवं खुले प्रसालों मे विकसित करने की योजना साकार की गई है।

2.9.3 प्राकृतिक जीवन–केन्द्र

प्राकृतिक चिकित्सा के लिए एक सुव्यवस्थित एवं सभी उपकरणों से युक्त आरोग्य सदन की स्थापना की गई है।

2.9.4 अणुव्रत साहित्य परिषद्

परिषद् अणुव्रत सिद्धान्तों पर आधारित सृजनात्मक साहित्य के निर्माण के उत्तरदायी है। यह प्रसिद्ध साहित्यकारों को अणुव्रत मूल्यों पर आधारित उपन्यास, कहानियां तथा लेख लिखने के लिए आमंत्रित करती है, साथ ही चरित्र निर्माणात्मक तथा मूल्यपरक साहित्य को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से एक वार्षिक पुरस्कार भी प्रदान करती है। परिषद् हिन्दी एवं अंग्रेजी में (अणुविभा) नामक पत्रिकाओं के प्रकाशन के द्वारा अहिंसा के विकास एवं स्थापना में योगदान दे रही है।

2.9.5 अन्तर्राष्ट्रीय अणुव्रत परिवार

(अंतर्राष्ट्रीय सह–जीवन का अनूठा प्रयोग)

''वसुधैव कुटुम्बकम्''– सम्पूर्ण विश्व एक परिवार है, हजारों वर्ष पूर्व प्रबुद्ध भारतीय मनीषियों द्वारा व्यक्त यह दर्शन मनुष्य को मनुष्य से विभक्त करने वाली कृत्रिम दीवारों को स्वीकार नहीं करता। विश्व के सभी मनुष्य केवल एक ही परिवार से सम्बद्ध हैं और वह है मानवीयता। अणुव्रत ने सदैव मानव जाति को शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व के लिए एक सूत्र में बांधने का प्रयत्न किया है। 'अन्तर्राष्ट्रीय

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अणुव्रत परिवार' धर्म, राष्ट्रीयता, जाति एवं रंग आदि संकुचित विचारों में विभाजित विश्व के कोने-कोने में फैले परिवारों को एक परिवार के रूप में संगठित करने का प्रयत्न करता है। अणुव्रत आचार संहिता एवं मानवीय एकता के आदर्शों में विश्वास करने वाले दूसरे देशों में स्थित परिवारों या उनके सदस्यों को कुछ अवधि के लिए अन्य देशों में स्थित परिवार उन्हें अपने परिवार के सदस्यों के रूप में रहने के लिए आमंत्रित करता है। यह संस्था विभिन्न देशों में ऐसे परिवार का पता लगाता है जो ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' के आदर्श में विश्वास रखते हों। वैयक्तिक परिवार-स्तर पर अन्तर्राष्ट्रीय सह-जीवन का यह एक रचनात्मक कदम है, जिससे प्रेम, मित्रता तथा मेल-मिलाप की भावना को बल मिलता है।

2.9.6 'प्रेक्षाध्यान' तथा 'जीवन-विज्ञान' अकादमी

'प्रेक्षाध्यान' लोगों के दृष्टिकोण में सकारात्मक परिवर्तन लाने तथा संतुलित व्यक्तित्व के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। वस्तुत: शिक्षा के क्षेत्र जीवन-विज्ञान में यह एक क्रान्तिकारी कदम है। यह विज्ञान छात्र-छात्राओं को स्वयं के भीतर देखने की प्रेरणा देता है। प्रस्तावित अकादमी 'प्रेक्षाध्यान' तथा 'जीवन-विज्ञान' के शिक्षकों को प्रशिक्षित करती है, ताकि वे इस बहुमूल्य उपलब्धि को प्रसारित कर सकें।

2.9.7 अणुव्रत अन्तर्राष्ट्रीय ग्राम

विभिन्न सांस्कृतिक परम्पराओं एवं मान्यताओं के बावजूद विश्वभर के लोग एक साथ प्रेमपूर्वक रहकर सहअस्तित्व, सहिष्णुता एवं मानवीय एकता का आदर्श प्रस्तुत कर सकें, इसके लिए अणुविभा 'अन्तर्राष्ट्रीय अणुव्रत ग्राम' की एक महत्त्वपूर्ण एवं महत्त्वाकांक्षी योजना बनी है। इस योजना के अन्तर्गत अल्प अवधि या स्थाई रूप से जुड़ने के लिए सभी देशों से अणुव्रत दर्शन में विश्वास करने वाले लोगों को आमंत्रित किया जाता है। इस योजना के तहत ग्राम अविश्वास एवं तनाव से पूर्णरूप से मुक्त रहता है। सहजीवन के प्रयोग में सम्मिलित होने वाले व्यक्ति वहां के निवासियों के लिए स्वीकृत आचार-संहिता का पालन करते हैं।

2.9.8 तारा-मंडल

'बालोदय' के अन्तर्गत तारा-मंडल के निर्माण की कल्पना भी मूर्त्त रूप ले चुकी है।

2.9.9 मैत्री-सभागार (प्रेक्षा-गृह)

करीब 500 बालकों के बैठने की क्षमता वाला एक सभागार निर्मित किया गया है। विदेशों से अनेक युवक-युवतियां एवं बालक यहां सांस्कृतिक विविधता के दर्शन करने के लिए आते हैं। इस प्रेक्षा-गृह का नाम 'मैत्री-सभागार' रखा गया है।

2.9.10 विश्व-दर्शन

सभागार के दोनों ओर स्थित ऊँची दीवारों में बड़ी-बड़ी ताकें बनायी गयी है जहां प्रत्येक देश की भौगोलिक, सांस्कृतिक विशेषताओं से संबंधित चित्र, नक्शे एवं सुप्रसिद्ध व्यक्तियों के चित्र लगे हैं। विश्व के चुने हुए 30-40 देशों से संबंधित सामग्री जुटाई जा रही है। सभागार एवं उक्त दीवारों के बीच गलियारे हैं जहाँ बालक खड़े होकर विश्व-दर्शन करते हैं।

2.9.11 शांति एवं समस्या-समाधान केन्द्र

'अणुविभा' का मुख्य उद्देश्य विश्व में शांति एवं अहिंसा का प्रसार करना है। इसकी प्रत्येक प्रवृत्ति की संरचना इस तरह से की गई है कि उससे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में अहिंसा द्वारा विश्व-शांति के सिद्धान्तों को अधिक-से-अधिक लोग अपना सकें। 'बालोदय' की स्थापना का लक्ष्य है, छोटे-छोटे बालकों को शांति एवं अहिंसा के भावी सैनिक के रूप में प्रशिक्षित करना। 'अणुविभा' एक ऐसा विचार मंच है जहां स्थानीय, प्रान्तीय, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर अध्ययन एवं देश-विदेश के प्रतिनिधियों से खुलकर विचार-विमर्श होता है। सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक स्तर पर उठने वाली समस्याओं एवं उनके समाधान की खोज इस विभाग का मुख्य उद्देश्य है। समय-समय पर शांतिकर्मियों चिन्तकों एवं विद्वानों के भाषण भी यहां आयोजित किये जाते हैं। सामाजिक समस्याओं पर अनुसंधान अध्ययन की व्यवस्था भी है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2.9.12 अहिंसा नीड़

'बालोदय' बालकों के सर्वांगीण विकास की एक ऐसी परियोजना हैं जिसके अन्तर्गत बालकों को अनेक प्रकार के साप्ताहिक, पाक्षिक एवं मासिक शिविरों में तथा 'विश्व-शांति निलयम्' के शांति एवं अहिंसामय आदर्श वातावरण में रखा जाता है। यहां बालक मुक्त वातावरण में विचरण करते हैं तथा उनमें सहज संस्कार पैदा होते हैं।

2.9.13 अतिथि-गृह

'विश्व-शांति निलयम्' में एक अतिथि-गृह भी है। ''विश्व-शांति निलयम्'' अन्तर्गत के संचालन के लिए विभिन्न कक्षों के निर्माण की योजना भी कार्य रूप ले चुकी है। यह उपक्रम बालकों, युवकों एवं प्रौढ़ों सभी के लिए उपयोगी है। शांति एवं अहिंसा के चिन्तन एवं प्रयोग के लिए यह अनुकूल, अद्वितीय एवं अपूर्व योजना है।

विश्व शांति उद्देश्य की पूर्ति के लिए संस्था का जयपुर में अन्तर्राष्ट्रीय कार्यालय है। जिसका विश्व की प्राय: चार हजार संस्थाओं एवं संगठनों से चिंतन, कार्यक्रम एवं साहित्य का निरंतर आदान-प्रदान हैं। अहिंसा एवं विश्व शांति के उद्देश्य पूर्ति के लिए भारत में विभिन्न राष्ट्रों में पारस्परिक सहयोग से अनेक सम्मेलनों, कार्यशालाओं, चिंतन, गोष्ठियों के महत्त्वाकांक्षी आयोजन, प्रकाशन व प्रचार-प्रसार कार्य बड़ी सफलता के साथ संचालित है तथा विश्व शांति के लिये कार्यरत संस्थाओं के प्रतिनिधियों की यात्राओं का क्रम बना रहता है। अणुव्रत आन्दोलन के अन्तर्राष्ट्रीय कार्यक्रमों को व्यवस्थित रूप देने के लिए अणुव्रत विश्व भारती की कल्पना की गई, जो अणुव्रत प्रचार-प्रसार, अहिंसा व अन्य कार्यक्रमों को मूर्त्त रूप देने के लिए सक्रिय हुई। इसके अन्तर्गत प्रचार हेतु समय-समय पर विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनार, अहिंसा प्रशिक्षण शिविर, कार्यशालाएं आयोजित की गई और विद्वानों व समण-समणियों को विदेश भेजा गया।

अणुव्रत विश्व भारती द्वारा शांति एवं अहिंसा उपक्रम पर प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन दिसम्बर 1988 में अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य तुलसी के सान्निध्य में लाडनूं में आयोजित किया गया। अधिवेशन की निष्पत्ति, 'लाडनूं घोषणा पत्र' को हिंसा के उन्मूलन की दिशा में एक रचनात्मक शुरूआत के रूप में विश्व भर में सराया गया।

फरवरी 1992 में दूसरा अधिवेशन 'विश्व शांति निलयम्' राजसमन्द में आयोजित हुआ था जिसमें आचार्यश्री तुलसी के प्रभाव के कारण खाड़ी युद्ध के बावजूद 25 देशों से बड़ी संख्या में विश्व शांति के क्षेत्र में कार्यरत संस्थाओं के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इसके द्वारा निष्पादित 'राजसमन्द घोषणा पत्र' को संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मान्यता प्राप्त हुई तथा अनेकों संस्थाओं से व्यापक समर्थन मिला।

अणुव्रत विश्व भारती विश्व के तत्त्वावधान में दिसम्बर 1994 में लाडनूँ में प्रकृति के साथ समन्वय व अहिंसा पर तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन आयोजित किया गया जिसमें देश-विदेश के शांति संस्थाओं के कार्यकर्त्ताओं ने भाग लेकर विश्व शांति व अहिंसा के लिए संयुक्त रूप से कार्य करने का प्रयत्न किया। इन तीनों अधिवेशनों में संयुक्त राष्ट्र के प्रतिनिधियों द्वारा भाग लेना एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी।

नवम्बर 92 लाडनूँ में अहिंसा प्रशिक्षण पर एक अन्तर्राष्ट्रीय परिसंवाद का आयोजन एक अन्य महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी जिसके प्रारम्भिक सत्र को आचार्य तुलसी एवं शांति नोबल पुरस्कार विजेता दलाईलामा का सान्निध्य प्राप्त हुआ।

विश्व शांति के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान देने वाले व्यक्ति को सम्मानित करने के उद्देश्य से अणुविभा द्वारा 1987 में एक विश्व शांति अणुव्रत पुरस्कार की शुरूआत की गई। अब तक जिन्हें यह पुरस्कार प्रदान किया गया वे हैं- प्रो. ग्लेन डी. पेज, हवाई विश्वविद्यालय, होनोलूलू, डॉ. दैसाकू इकेडा, अध्यक्ष सोकागकाई इंटरनेशनल, जापान एवं श्री पेरेज डे क्वेयार, महासचिव, संयुक्त राष्ट्र संघ आदि। इसके अतिरिक्त अहिंसा शांति क्षेत्र की कुछ अन्य प्रमुख गतिविधियां निम्न हैं-

1. लाडनूँ- घोषणा एवं राजसमन्द घोषणा सन्दर्भ में संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव के निदेशक जॉन वाशबर्न को न्यूयार्क में उनके कार्यालय में भेंट तथा जॉन वाशबार्न की उसे यू. एन. डोक्यूमेन्टोशन सेंटर में सम्मिलित करने की घोषणा।
2. सैकड़ों व्यक्तियों व संस्थाओं द्वारा दोनों घोषणाओं का अनुमोदन।
3. नोबल पुरस्कार प्राप्त इंटरनेशनल पीस ब्यूरो द्वारा अणुविभा की सर्वसम्मति से सदस्यता स्वीकार करना तथा उसकी गतिविधियों का उनकी रिपोर्ट में प्रति वर्ष प्रकाशन।
4. यू. एन. ओ. यूनेस्को द्वारा अणुविभा को एन. जी. ओ. के रूप में मान्यता।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में इस कार्य में योगदान देने वाले कुछ प्रमुख अहिंसा शास्त्री निम्न हैं-

डॉ. ग्लेन डी. पेज, डॉ. टेड हरमन, डॉ. जेम्सइ सलिसबरी, डॉ. लोपेज, शर्ली आंके, बार्बरा वाइडनर, डॉ. लिसिंकी सब (यू.एस.ए.) डॉ. पार्नोव (रूस) डॉ. डेविड विल्सन, ग्राह्य डायर, पिटर फ्लुगल, पिअर, एवं मेक्समिलियन मिजी (इटली), शिकागो एवं डॉ. कवाजा (जापान), वाना जाकिज (क्रोशिया), डॉ. मेहनबानसिंह (सिंगापुर), प्रो. हकेमुल्डर (निदरलेंड्स), डॉ. जोहान गाल्टुंग (फ्रांस), हंस लुण्डर (नार्वे), योन फिर्लेडर (स्वीडन), एडम किलर (इजरायल), पेट पेटफुर्ट (बेल्जियम), मार्को हरेन (स्लोवेनिया), सम्पादक डेर पेजिफिस्र (जर्मनी), डॉ. एफेन्डी (इन्डोशिया), स्टावरो (ग्रीस) आदि महत्त्वपूर्ण शांति कर्मियों एवं विचारकों के नेटवर्क हमें प्राप्त है जो संत तुलसी के विश्व शांति के मिशन को प्रसारित करने में सहायक है।

2.10 सारांश

अणुविभा की अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों को और व्यापक बनाने के उद्देश्य से अनेक प्रवृत्तियां संचालित करने की योजना है, इसमें महत्त्वपूर्ण हैं- अणुव्रत इंटरनेशनल, अन्तर्राष्ट्रीय अणुव्रत ग्राम, अन्तर्राष्ट्रीय अणुव्रत परिवार, अणुव्रत विश्व मैत्री विद्यालय, भाषा एवं अनुवाद संस्थान, सर्वधर्म समन्वय परिषद् आदि। अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में अणुव्रत विचारधारा को प्रचारित, प्रसारित एवं विश्व शांति के लिए अहिंसा उपक्रम के माध्यम से अपना योगदान देने के लिए अणुविभा निरन्तर प्रयासरत है।

2.11 अभ्यास प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. नोबल शांति पुरुस्कार संस्था के उद्देश्य एवं चयन प्रक्रिया का वर्णन करे
2. सिपरी संस्था का विस्तृत परिचय दे
3. सर्व सेवा संघ की स्थापना एवं उद्देश्य का वर्णन करें
4. अणुव्रत विश्व भारती की गतिविधियों का वर्णन करें

लघु निबन्धात्मक प्रश्न

1. नोबल शांति पुरुस्कार संस्था का संक्षिप्त परिचय दे
2. सर्व सेवा संघ के प्रमुख कार्यों का वर्णन करे
3. अणुव्रत विश्व भारती का सामान्य परिचय दे।
4. अणुव्रत विश्व भारती के अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों का परिचय दें।

बहुवैकल्पिक प्रश्न

1. अल्प्रेड नोबल की मृत्यु कब हुई थी

   (अ) 1896 (ब) 1901 (स) 1914

2. नोबल कमेटी गोपनीय पपत्र कब भेजती है?

   (अ) फरवरी (ब) मार्च (स) अगस्त

3. सिपरी की स्थापना कब हुई थी?

   (अ) 1960 (ब) 1948 (स) 1996

4. चम्बल के कितने बागियों ने विनोबा एवं जयप्रकाश के सामने समर्पण किया था?

   (अ) 541 (ब) 363 (स) 241

5. मैत्री सभागार (प्रेक्षा-ग्रह) में कितने बालकों के बैठने की व्यवस्था है।

   (अ) 500 (ब) 700 (स) 655

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई -3

पगवाश आन्दोलन, बस आन्दोलन, ग्रीन पीस आन्दोलन

संरचना

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्देश्य

3.2 पगवाश आन्दोलन

3.2.1 पगवाश आन्दोलन की अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियां

3.3 बस आन्दोलन

3.3.1 बस आन्दोलन का प्रारम्भ

3.4 ग्रीन पीस आन्दोलन

3.5 सारांश

3.6 अभ्यास प्रश्नावली

3.0 प्रस्तावना

इस पत्र के अन्तर्गत अभी तक हमने अहिंसा एवं शांति को समर्पित संस्थाओं का परिचय प्राप्त किया है। इस पाठ में हम वैश्विक स्तर पर शांति स्थापना हेतु किये गये प्रयासों का परिचय प्राप्त करेगें।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत परमाणु निशस्त्रीकरण, रंगभेद विरोध तथा पर्यावरण संरक्षण जैसे मुद्दों पर हुए आन्दोलनों का अध्ययन करेंगे।

3.2 पगवाश आंदोलन

पगवाश आन्दोलन का उद्देश्य एवं स्वरूप वैज्ञानिकों को उनके सामाजिक एवं नैतिक कर्त्तव्यों का भान कराना है ताकि विज्ञान और तकनीकी के दुष्प्रयोगों के दुष्परिणामों से विश्व को बचाया जा सके एवं आधुनिक विज्ञान को मनुष्य जाति के कल्याण हेतु सृजनात्मक दिशा प्रदान की जाए। 1957 को नोवा स्कोटिया प्रान्त के पगवाश गांव में आयोजित हुई प्रथम गोष्ठी के कारण इस आन्दोलन को पगवाश आन्दोलन के नाम से जाना जाता है। मुख्यत: वैज्ञानिकों द्वारा सम्पादित इस आन्दोलन का औपचारिक नाम 'The Pugwash Conference on Science and World Affairs' है तथा इस मंच के माध्यम से अणु शस्त्र मुक्त विश्व की संकल्पना को मूर्त्त रूप देने का सफल प्रयास किया गया है, अत: इसे वैज्ञानिकों का शांति आंदोलन भी माना जाता है। यद्यपि पगवाश आंदोलन मुख्यत: वैज्ञानिकों द्वारा संचालित हुआ, तथापि इस हेतु प्रेरित करने एवं सक्रिय कराने हेतु विश्व प्रसिद्ध दार्शनिक रसल का महत्त्वपूर्ण योगदान है। 1955 में वैश्विक शांति और सुरक्षा संदिग्ध हो चुकी थी। रसायनिक अस्त्र-शस्त्रों का अविष्कार, अमरीका एवं रूस द्वारा हाइड्रोजन बम का निर्माण आदि से महाशक्तियों में संहारक अस्त्रों के उत्पादन एव संग्रह हेतु होड़ मची थी। महाशक्तियों की आपसी प्रतिस्पर्द्धा, अविश्वास, भय तथा एक-दूसरे के विरूद्ध आक्रमक प्रचार ने शीत युद्ध को तृतीय विश्व युद्ध में परिवर्तित करने की स्थिति निर्मित की थी तथा ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानव जाति का महाविनाश सन्निकट है।

इतिहास साक्षी है कि समाज की, राष्ट्र की तथा सभ्यता की चेतना समान नहीं रहती। विकृतियों के उन्मूलन हेतु सदा सर्वदा मानव जाति ने ही प्रकाश स्तंभों की भांति दिशा निर्देशन भी दिया है। उपर्युक्त भयावह वैश्विक परिस्थितियों में बर्टेन्ड रसल और अलबर्ट आइन्सटीन द्वारा निर्मित विश्व शांति हेतु एक घोषणा-पत्र सामने आया। रसल ने यह विचार प्रस्तुत किया कि वैज्ञानिकों को विज्ञान के दुष्परिणामों के प्रति जागरूक रहते हुए विज्ञान को मानव कल्याण हेतु विशुद्ध सृजनात्मक रूप देना चाहिए। विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्सटीन को प्रेषित अपने विचारों के साथ रसल ने अणुमुक्त विश्व निर्माण हेतु वैज्ञानिकों के एक सम्मेलन के आयोजन के आषय पर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सुझाव मांगे, जिसकी सम्मति आइन्सटीन ने देकर सम्मेलन का घोषणा-पत्र तैयार करने को कहा। ज्ञयात्व है कि रसल द्वारा पगवाश आंदोलन के सम्मेलन हेतु तैयार किये हुए घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर करना अलबर्ट आइन्सटीन के जीवन का अंतिम कृत्य था। अन्य छः राष्ट्रों के 9 वैज्ञानिकों के हस्ताक्षर युक्त यह घोषणा-पत्र लंदन में जुलाई 1955 को जारी किया गया। इसमें जहां एक ओर विशिष्ट रूप से वैज्ञानिकों से यह आह्वान किया कि विश्व शांति के सम्मुख उत्पन्न हुए खतरे को समाप्त करने का प्रयास किये जाएं वहीं दूसरी ओर विभिन्न राष्ट्रों की सरकारों से भी आह्वान किया गया कि मानव जाति संक्रमण काल से निकल कर दूसरे काल में पहुंची है अतः अपने मतभेदों एवं समस्याओं का हल शांतिपूर्ण साधनों से खोजने का प्रयास करें, क्योंकि यदि अणु युद्ध की स्थिति आई तो वास्तविक विजेता कोई नहीं रह पायेगा। इस घोषणा-पत्र में आम नागरिकों से भी मार्मिक अपील की गई ''हम इस अवसर पर किसी राष्ट्र, प्रान्त, जाति के सदस्य के रूप में आपसे संबोधित नहीं है अपितु हम उस मानव जाति के सदस्य के रूप में आपके सम्मुख है जिसके अस्तित्व पर वर्तमान विश्व-व्यवस्था ने प्रश्नवाचक चिन्ह लगाया है। हम किसी एक या दूसरे गुट से अपील न करते हुए समस्त ध्रुवों को यह कहते हैं कि सब संकट में हैं और यदि यह संकट समझ आ जाता है तो यह आशा बलवती हो जाती है कि इस संकट से उबरने के लिए सब सामुहिक योगदान देंगे।'' वैज्ञानिक समुदाय द्वारा अनुशंसित घोषणा-पत्र को आम जन समुदाय में व्यापक स्वीकृति प्राप्त हुई। लगभग दो वर्ष पश्चात् कनाड़ा के उद्योगपति क्रायस इटोन ने अपने जन्मस्थान (पगवाश) में एक सम्मेलन आयोजन करने हेतु आर्थिक व अन्य सहायता प्रस्तावित की।

पगवाश में आयोजित प्रथम सम्मेलन संख्या की दृष्टि से अत्यन्त छोटा रहा, जिसमें 10 देशों के 22 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। ऐसा प्रथम अवसर पर ही हुआ था जब दोनों शक्तियों के प्रतिनिधियों ने एक मंच पर वैज्ञानिक मतभेदों के उपरान्त भी समान लक्ष्य हेतु संवाद किया। इस संवाद की सफलता से उत्साहित भविष्य में भी इस तरह के सम्मेलन आयोजित करने पर आम सहमति बनी तथा इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु एक संयोजकीय समिति का गठन भी किया गया। इस समिति की दिसम्बर 1957 में लंदन में पगवाश आंदोलन के प्रकृति, स्वरूप एवं उद्देश्य निर्धारण हेतु गोष्ठी आयोजित की गई। अमेरिका एवं ब्रिटेन के अधिसंख्य वैज्ञानिकों ने भविष्य के सम्मेलनों का प्रतिरूप निम्नलिखित प्रस्तुत किया :

(अ) विशिष्टि रूप से सरकारों की नीति निर्धारण पर प्रभाव डालने वाली विभिन्न राजनीतिक समस्याओं पर चर्चा करना।

(ब) वैज्ञानिक उन्नति के सामाजिक प्रभाव का अध्ययन करना तथा स्वयं वैज्ञानिकों के चिंतन का परिशोधन करना।

कुछ वैज्ञानिकों ने विश्व की आम जन सामान्य की समस्याओं के समाधान के प्रयास किये जाने हेतु गोष्ठी आयोजित करने पर बल दिया। दो दिन के गहन विचार मंथन पश्चात् समिति ने निष्कर्ष निकाला कि उपर्युक्त (अ) कार्यों को प्राथमिकता के आधार पर अपने कार्यक्रमों में समाविष्ट किया जाना चाहिए तथा इस हेतु लघु सम्मेलनों एवं गोष्ठियों का आयोजन किया जाए। वैज्ञानिक समुदाय अपने विचार निर्भयता से प्रकट कर सके तथा उनके विचारों को मीडिया द्वारा विकृत रूप से प्रकाशित न किया जाए, इस हेतु समाचार प्रतिनिधियों को इस सम्मेलन में प्रवेश के निषेध पर भी सहमति हुई। वृहद् जन-समाज में आयोजित सम्मेलनों में सृजनात्मक, मौलिक एवं मार्मिक चिन्तन नहीं आ पाता, क्योंकि मनुष्यों के समूह के सम्मुख वक्ता उर्वर विचारों की अपेक्षा भाषण देने की ओर प्रवृत होता है तथा रचनात्मक निष्पति प्राप्त नहीं हो सकती अतः लघु सम्मेलनों को आयोजित किये जाने पर निर्णय लिया गया तथा समय-समय पर इनमें प्रस्तुत विचारों का सार जनता को सूचना हेतु प्रकाशित किया जाता रहा। इसका अर्थ यह नहीं कि बृहद् गोष्ठियों का कोई अर्थ नहीं, अपितु विचारों को व्यापकता से फैलाने हेतु जन-समूह का अपना योगदान होता है और इस तरह के समूह सरकार पर उपयुक्त कदम उठाने हेतु दबाब भी डाल सकते हैं। अतः पगवाश आंदोलन ने लघु एवं वृहत् दोनों प्रकार के सम्मेलनों एवं गोष्ठियों का आयोजन किया।

पगवाश आंदोलन का मुख्य उद्देश्य विश्व भर के प्रतिभाशाली एवं प्रभावशाली वैज्ञानिकों एवं व्यक्तियों को एक मंच पर लाकर आणविक शस्त्रों एवं युद्ध के भय तथा खतरे को कम करना रहा। इस प्रकार वे अपने-अपने देश में नीति-निर्धारण के समय पगवाश विचारों से प्रभावित होने के कारण शांति निर्माण की दिशा में सहायक तत्त्व की भूमिका निभाते थे। कालान्तर में पगवाश आंदोलन के कार्यक्रमों की गति में तीव्रता आई किन्तु मुख्य रूप से यह निम्नलिखित सिद्धान्तों पर ही आधारित रहा-

(अ) पगवाश एक वृहद् जन समूह का आंदोलन है, जिसका कोई औपचारिक संविधान, सदस्यता, कठोर प्रक्रिया आदि नहीं थी।

(ब) पगवाश कार्यक्रमों में सहभागी वैज्ञानिक किसी देश के प्रतिनिधि के रूप में नहीं अपितु व्यक्तिगत स्तर पर भाग लेते थे।

(स) सहभागिता के रूप में मुख्यतः वैज्ञानिक सम्मिलित होते थे किन्तु अन्य क्षेत्रों के विद्वतजन, दार्शनिक आदि भी इसमें भाग लेते थे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(द) वैज्ञानिक समुदाय विभिन्न विचार धाराओं, भौगोलिक स्थिति एवं धार्मिक परम्पराओं के होते थे।

(य) किसी एक पक्ष या दूसरे पक्ष के प्रचार की अपेक्षा इनमें समस्त विचार विमर्श वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित होते थे।

(र) प्राय: समस्त क्रियाक्लाप पगवाश द्वारा ही संचालित होते थे। इसमें अन्य किसी संस्था का सहयोग या सहभागिता नहीं होती थी।

3.2.1 पगवाश आंदोलन की अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियाँ :-

19 राष्ट्रों के 27 सदस्यों की गठित समिति पगवाश के अन्तर्राष्ट्रीय कार्यक्रम आदि आयोजित करती तथा राष्ट्रीय कार्यक्रम का दायित्व 36 राष्ट्रीय समूहों पर था जो अन्तर्राष्ट्रीय समिति के सहयोग से अपने कार्य सम्पादित करता था। यह समूह अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन, कार्यशालाओं, गोष्ठियों आदि का आयोजन एवं इसकी वित्तीय व्यवस्था का दायित्व वहन करता था तथा अन्य राष्ट्रों से आये सहभागी वैज्ञानिकों के यात्रा व्यय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समिति के लंदन स्थित केन्द्रीय कार्यालय हेतु वित्तीय सहयोग प्रदान करता था। पगवाश की मुख्य गतिविधि के रूप में विभिन्न राष्ट्रों में वार्षिक सम्मेलन का आयोजन होता था तथा 1985 तक ऐसे 35 सम्मेलन आयोजित किये गये थे। सहभागी प्रतिनिधियों की गुणात्मक एवं मात्रात्मक वृद्धि इस आंदोलन की विशेषता रही जो कि कालान्तर में बढ़कर 120 वैज्ञानिकों की हो गई। वार्षिक सम्मेलनों के आयोजन के अतिरिक्त कांफ्रेंस कार्यशालाएं आदि का आयोजन भी प्रतिवर्ष किया जाता रहा है। इनमें विशिष्ट विषयों पर गहनता से विचार विमर्श, पत्र-वाचन आदि सम्पादित होते रहे हैं। अब तक विशेष रूप से 10 कार्यशालाएं रासायनिक शस्त्रों/युद्धों पर तथा 12 कार्यशालाएं अणु शक्तियों पर आयोजित की गई हैं। पगवाश अपने कार्यक्रमों में प्रस्तुत पत्रों, विचारों, निर्णयों, भविष्य की योजनाओं आदि को निरन्तर प्रकाशित कर अपने कार्यक्रमों हेतु विश्व भर से नैतिक व बौद्धिक समर्थन प्राप्त करता रहा।

यद्यपि पगवाश की कार्य-सूची तथा कार्यक्रम अत्यन्त व्यापक प्रकृति के थे तथापि यह आंदोलन मुख्यत: अणु युद्धों के भय का निराकरण, शस्त्र नियन्त्रण तथा क्रमश: पूर्ण निशस्त्रीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु अपने कार्यक्रमों को प्राथमिकता प्रदान करता है। सहभागिता की निष्पक्षता तथा अनौपचारिक वार्ता के कारण कई संवेदनशील विषयों के संदर्भ में विभिन्न विचारधाराओं वाले राष्ट्रों में भी आम सहमति बनने के वातावरण ने विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय शांति संधियों को जन्म दिया था। PTBT (Partial Test Ban Treaty), NPT (Non-Proliferation Treaty), SALI-I BWC (The Biological Warfare Convention) आदि। यद्यपि अणु शस्त्रों की होड़ को समाप्त करने में पगवाश आंदोलन का मात्रात्मक योगदान को मूल्यांकन की दृष्टि से बहुत संतोषप्रद नहीं माना जा सकता तथापि यह एक सार्वजनिक तथ्य है कि पगवाश आंदोलन ने शीतयुद्ध में कमी लाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया तथा आणविक निशस्त्रीकरण हेतु अनुकूल वातावरण का निर्माण करने में सहायता प्रदान की। इसने विशिष्ट रूप से उस काल में पूर्व और पश्चिम के मध्य वार्ता हेतु सेतु की भूमिका निभाई जिस काल में विचारधाराओं के भेद या राजनीतिक संकट के कारण संवाद पूर्णत: समाप्त हो चुका था। पगवाश ने सामयिक समस्याओं तथा सामाजिक दायित्वों के प्रति वैज्ञानिक समुदाय में बोध कराने हेतु उद्दीप्पन का कार्य किया।

पगवाश कोई औपचारिक सत्ता केन्द्र नहीं है, इसे गैर सरकारी संस्था के रूप में अनेक अवसरों पर राष्ट्र संघ तथा इसके अन्य अभिक्रमों द्वारा आयोजित सम्मेलन में अपने विचार प्रस्तुत करने हेतु आमंत्रित किया जाता रहा है। अनेक पगवाश सहभागियों का इन अभिक्रमों के नीतियों के निर्धारण पर प्रभाव पड़ा है तथा Guidelines for International Scientific Collaboration for Development, Code of Conduct on the Transfer of Technology आदि। पगवाश ने कई अन्य संस्थाओं की स्थापना हेतु भी योगदान किया है जो पूर्णरूपेण शांति स्थापना, निशस्त्रीकरण आदि पर शोध कार्य करते हैं जैसे SIPRI (Stockholm International Peace Research Institute) इस संस्थान का पगवाश द्वारा निर्धारित कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक सम्पादन करना भी पगवाश की सफलता का एक उदाहरण है। इसने वैज्ञानिक समुदाय को मानव जीवन की जटिल समस्याओं पर अध्ययन तथा विचार विमर्श हेतु विश्वभर के वैज्ञानिक समुदाय को एक मंच प्रदान किया है तथा इसके द्वारा निशस्त्रीकरण हेतु किये गये सफल प्रयासों के लिए वैज्ञानिक समुदाय का आदर सम्मान भी प्राप्त हुआ है। अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को सुलझाने हेतु 'पगवाश' शब्द प्रतीक के रूप में स्वीकार हुआ है। पगवाश सम्मेलन की सफलता वैज्ञानिकों के उस सामुहिक प्रयास की देन है जो विभिन्न राजनीतिक व अन्य विचारधाराओं के प्रति निष्पक्ष रहे तथा वैश्विक समझ एवं सहयोग को विकसित करने के लिए समर्पित थे। उच्च विवादों के प्रति संकुचित एवं स्वार्थी दृष्टिकोण की अपेक्षा वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने से समस्याओं के मूल तक जाने, उनका समाधान पाना अधिक सहज व प्रभावशाली रहा। अपनी स्थापना काल के प्रारंभिक दिनों में पगवाश ही एक ऐसा मंच था, जहां दोनों महाशक्तियों के प्रभावशाली वैज्ञानिक संवादों का आदान-प्रदान करते थे। यद्यपि कालान्तर में इस प्रवृत्ति की कई संस्थाएं वैश्विक स्तर पर उभर कर आई थी तथापि राजनीतिक प्रभाव के कारणों से वे इस क्षेत्र में विशिष्ट

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सहयोग प्रदान करने में प्राय: असफल ही रहे, जैसे वियतनाम युद्ध एवं तात्कालीन सोवियत रूस द्वारा अफगानिस्तान में सैनिक हस्तक्षेप के समय दोनों गुटों में प्राय: संवाद को ही स्थगित किया गया। ऐसे संकट के काल में भी पगवाश ने अपने स्तर पर संवाद जारी रखने में सफलता प्राप्त की। संभावित नाभिकीय युद्ध न होने के लिए पगवाश के वैज्ञानिक स्तर पर किये गए प्रयासों का ही नतीजा है कि विश्व शक्तियां इस बात की गंभीरता समझ गई कि अणु युद्ध होने से कोई भी विजेता नहीं बन पायेगा। अत: निशस्त्रीकरण की दिशा में प्रयाण करना ही श्रेयस्कर है।

3.3 बस आन्दोलन

प्रिय विद्यार्थियों, पिछले वर्ष हमने डॉ. मार्टिन लूथर किंग (जू) के अहिंसा दर्शन के सन्दर्भ में परिचय प्राप्त किया था, इस वर्ष डॉ. किंग का अहिंसा प्रयोग बस आन्दोलन हमारे अध्ययन की विषय वस्तु होगी। डॉ. मार्टिन लूथर किंग (जू) जिन्हें अमेरिका का गांधी भी कहा जाता है ने साठ के दशक में अमेरिका में व्याप्त रंग-भेद नीति का अहिंसक विरोध कर गांधी की मृत्यु पश्चात् अहिंसा को प्रतिष्ठित किया तथा अहिंसक आन्दोलन (बस-आन्दोलन) का नेतृत्व किया था, जिस आन्दोलन को सविनय अवज्ञा आंदोलन की संज्ञा दी गई। सविनय अवज्ञा का साधारण अर्थ- कि हर नागरिक को राज्य के काले कानूनों के विरुद्ध अवज्ञा (आज्ञा पालन न करने) का नैतिक अधिकार है। वह हर अन्यायपूर्ण कानूनों की अवज्ञा कर सकता है, किन्तु इस अवज्ञा का स्वरूप भद्र एवं सविनय होगा, अभद्र या हिंसायुक्त नहीं।

अमेरिका समाज का तात्कालीन परिदृश्य शोषण एवं रंग-भेद की नीति पर आधारित क्रियाकलापों का था। विशेषत: मॉण्टगोमरी नगर के नीग्रो जाति और गोरे जाति के बीच कई क्षेत्रों में शरीर के रंग के आधार पर भेदभाव किया जाता था। नीग्रो लोगों को गोरे हमेशा हीन मानते थे तथा अपनी इस भावना का प्रदर्शन भी किया करते थे। गोरे और नीग्रो ये दोनों समुदाय मनुष्य-समाज के विभाजित अंग बने हुए थे। रंग के आधार पर भेदभाव स्कूलों में भी चलता था। यातायात के उपयोग, दुकानों व अन्य प्रतिष्ठानों में भी रंग के आधार पर भेदभाव व्याप्त था। विभिन्न तबकों एवं प्रकारों के संगठनों में ये भेदभाव देखने को मिलता था। चर्च में भी नीग्रो व गोरे पदारियों में आपसी सहयोग का अभाव था। अलबामा राज्य के कानूनों और प्रशासन के द्वारा ऐसी व्यवस्था की गई थी जिसमें बहुसंख्यक नीग्रो अधिकतर राजनैतिक अधिकारों से वंचित रह जाते थे। इन्हीं प्रकार के परिदृश्य में डॉ. किंग ने माण्टगोमरी में 'डेक्सटर एवेन्यू बैप्टिस्ट चर्च' के पादरी के रूप में कार्यभार संभाला। अब उन्हें कई सामाजिक धार्मिक एवं राजनैतिक कार्य करने थे जिसमें प्रमुख था- रंगभेद को समाप्त करना और यहीं से उनका रंगभेद के विरूद्ध अहिंसक प्रतिकार शुरू होता है। वस्तुत: डॉ. किंग ने चर्च के दायित्वों के क्षेत्र में भी एक क्रान्तिकारी परिवर्तन का विचार प्रस्तुत किया। उन्होंने चर्च की गतिविधियों को सामाजिक न्याय के साथ जोड़ा। डॉ. किंग के विचार में धर्म मनुष्य की केवल प्राथमिक आवश्यकताओं पर भी विचार नहीं करता, बल्कि वह जीवन के अन्तिम छोर तक पहुंचाता है। जब धर्म का बुनियादी पहलू भुला दिया जाता है, तब वह मात्र नैतिक आचरण का एक प्रकार बन जाता है फिर आत्मिकता बाहरी क्रिया- कांडो में उलझ जाती है और ईश्वर मनुष्य की अर्थहीन कल्पना का विषय बन जाता है। परन्तु सच्चा धर्म मनुष्य की सामाजिक परिस्थितियों की भी अवहेलना नहीं कर सकता। धर्म का संबंध इहलोक से भी है तथा परलोक से भी है वह सामाजिक प्रश्नों को भी हल करता है और आध्यात्मिक प्रश्नों को भी केवल मनुष्य और ईश्वर के बीच ही एकता पैदा करना नहीं चाहता, बल्कि मनुष्य-मनुष्य के बीच भी एकता पैदा करने की कोशिश करता है तथा मनुष्य और उसकी आन्तरिकता को भी एकरूप करना चाहता है। इस चिन्तन के परिणीति-स्वरूप उन्होंने चर्च की गतिविधियों को सामाजिक न्याय के साथ जोड़ा तथा इस उद्देश्य को पूर्ति के लिये प्रारम्भ में सबसे पहले उन्होंने जो एक कमेटी गठित की उसको यह जिम्मेदारी सौंपा गई कि वह सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक सवालों पर बुद्धिमानी के साथ डेक्सटर चर्च की धर्म परिषद को वाकिफ रखे। इस कमेटी का काम यह भी था कि वह अश्वेत लोगों के विकास की राष्ट्रीय समस्या के महत्त्व को स्पष्ट करे और अधिक से अधिक नीग्रो लोगों के नाम मतदाता सूची में दर्ज कराने की आवश्यकता को चर्च के सामने उपस्थित करें तथा प्रान्तीय और राष्ट्रीय चुनावों के समय महत्त्वपूर्ण समस्याओं पर विचार प्रकट करने के लिये सभाओं और गोष्ठियों का आयोजन करे।

डॉ. मार्टिन लूथर किंग तत्कालीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में स्वीकारते थे कि माण्टगोमरी में आम लोगों के बीच कभी भी वास्तविक शान्ति नहीं रही। जिस प्रकार की शान्ति की बात वहां की जाती थी उसका स्वरूप ही नकारात्मक रहा। इस शांति को नीग्रो लोगों ने भी प्राय: परतन्त्रता और विवशतावश स्वीकार कर लिया था लेकिन यह सच्ची शान्ति नहीं थी। सच्ची शान्ति तनाव का अभाव मात्र नहीं है। वह तो न्याय की उपलब्धि द्वारा ही संभव है। जो तनाव (गोरों की नीति के विरोध से उपजा) माण्टगोमरी में प्रचलित था, वह बहुत ही आवश्यक है और यह तनाव तब आता है, जब पददलित लोग खड़े होकर गति प्रारम्भ करते हैं, स्थायी और विधायक शांति की ओर प्रयाण करते हैं। डॉ. किंग कहते थे ''मैं शांति लेकर नहीं आया हूँ बल्कि एक तलवार लेकर आया हूँ'' निश्चय ही डॉ. किंग का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

मतलब यह नहीं था कि वे किसी बाहरी तलवार को लेकर आये हैं, बल्कि वे ऐसा कहते प्रतीत होते हैं– ''मैं यह पुराने ढंग से नकारात्मक शांति लेकर नहीं आया, जिसमें निष्प्राणता तथा शिथिलता व्याप्त हो। मैं तो निर्जीव शांति के विरूद्ध लोगों को हिलाने के लिए आया हूँ। तब नये और पुराने में संघर्ष छिड़ जाता है तथा न्याय, प्रेम और निश्चय ही ईश्वर का राज्य भी प्राप्त होगा।'' काले और गोरे के बीच माण्टगोमरी में जिस तरह की शांति चली आ रही थी, वह कोई क्रिश्चयन शांति नहीं थी, वह एक प्रस्तर–शांति थी, जो बहुत ऊँची कीमत देकर खरीदी गयी थी। डॉ. किंग का यह दृढ़ विश्वास था कि समाज की बुराईयों को देखकर उदासीन रहना तो अनुचित है ही साथ ही उन बुराईयों के उन्मूलन हेतु हिंसा का सहारा लेना भी अनुचित है। इसलिए एक ओर तो उन्होंने हर प्रकार के अन्याय, शोषण आदि के विरूद्ध संघर्ष करने की प्रेरणा दी, वहीं दूसरी ओर अहिंसक पद्धति से भी सभी प्रकार के संघर्षों के निराकरण का मार्ग प्रतिष्ठित किया, जिसमें उनके अहिंसा के प्रति दृढ़ विश्वास एवं परिपक्व चिन्तन ने उद्दीपन का कार्य किया।

3.3.1 बस आन्दोलन का प्रारम्भ

इसी बीच रंगभेद की एक घटना घटी। वह यह थी कि हाईस्कूल में पढ़ने वाली एक किशोरी सुश्री क्लाडेट कोलविन को बस से उतार दिया गया और गिरफ्तार करके हथकड़ी पहनाकर वह जेल भेज दी गयी। उसका दोष यही था कि उसने एक गोरे यात्री के लिए सीट छोड़कर खड़ा होना स्वीकार नहीं किया था। इस घटना ने नीग्रो समुदाय को झकझोर डाला और ऐसी भेदभावपूर्ण बसों का सर्वथा बहिष्कार करने की बात उठने लगी। नीग्रो नागरिकों की एक समिति बनायी गयी और उस पर यह भार सौंपा गया कि बस कम्पनी के मैनेजर तथा नगर के कमिनश्र से बातचीज करके उनसे बसों में बैठने सम्बन्धी नियमों का खुलासा करने वाला वक्तव्य प्रकाशित करवाया जाय, साथ ही बस चालकों की ओर से नम्र एवं सद्भावपूर्ण व्यवहार हो, ऐसी मांग की जाय। इस समिति का सदस्य डॉ. किंग को भी बनाया गया। इस समिति के सदस्यों ने सीटी बस कम्पनी के मैनेजर और नगर कमिश्नर से बातचीत भी की। दोनों ने सुश्री क्लाडेट कोलविन की गिरफ्तारी को दुर्भाग्यपूर्ण बतलाया और उसे छोड़ देने का आश्वासन दिया। लेकिन यह आश्वासन पूरा नहीं किया गया और सुश्री कोलविन को दंडित किया गया। यह घटना मार्च 1955 में घटित हुई। इस घटना ने नीग्रो समुदाय में लम्बे समय से दबी असन्तोष की भावनाओं को व्यक्त करने के लिए आग में घी डालने का काम किया। जिस भय और उदासीनता की छाया में नीग्रो–समाज के जीवन पर लम्बे समय से अपना प्रभाव जमा रखा था, वह एक स्फूर्ति पूर्ण साहस तथा स्वाभिमान के आलोक में मिटने लगी।

प्रथम दिसम्बर' 1955 का दिन रंगभेद के विरुद्ध जेहाद छेड़ने के लिए निर्णायक दिन साबित हुआ। अश्वेत तो अपनी जिल्लत की जिन्दगी से इज्जत की मौत मर जाना बेहतर समझने ही लगे थे। क्रान्ति की आग प्रत्येक सम्माननीय और जागरूक नीग्रो स्त्री–पुरुषों के दिलों में जलने लगा था। सुश्री कोलविन के प्रति किये गये अन्याय ने बहुत हद तक रंगभेद के विरुद्ध आन्दोलन को भड़का ही दिया था। आन्दोलन की शुरूआत में जो भी थोड़ा बहुत विलम्ब था, बाधाएं थीं, उसको श्रीमती रोजास पार्क्स की गिरफ्तारी ने दूर कर आन्दोलन का मार्ग बहुत ही जल्द प्रशस्त कर दिया। श्रीमती पार्क्स एक आकर्षक व्यक्तित्व की सुन्दर और प्रभावशाली महिला थी। मधुर भाषण तथा हर परिस्थिति में शान्त रहना उसके स्वभाव का अंग था। वह एक निर्दोष चरित्र और गहरी निष्ठा वाली महिला थी। इन सब गुणों के कारण वह पूरे नीग्रो समाज में अत्यन्त सम्मानित थी। वह माण्टगोमरी शहर में कपड़े सीने का काम करती थी। वह अपने दिनभर के नियमित काम के बाद वापस लौट रही थी। वह 'माण्टगोमरी फेअर' नाम की एक बहुत बड़ी दूकान में काम करती थी। वह बस में गोरे यात्रियों के लिए रखी गयी आगे की सीटों को छोड़कर पीछे की सीट पर बैठी थी। बस में बैठे उसे थोरी ही देर हुई ही थी, कि उसे तथा तीन और नीग्रो यात्रियों को नये चढ़ने वाले गोरे यात्रियों को सीट देने के लिए खड़े होने का आदेश मिला। बस की सभी सीटें भरी हुई थीं। श्रीमती रोजा पार्क्स दिनभर काम करने के कारण थकी हुई थी, अत: सीट छोड़ने का मतलब था खड़ा होकर ही यात्रा करना, जो उसके लिए कष्टदायक था। इसलिए उन्होंने सीट छोड़ने से इन्कार कर दिया। परिणाम सामने था, वह यह कि वह गिरफ्तार कर ली गयी। श्रीमती रोजा ने उठने के आदेश मिलते समय ही यह कह दिया था कि–''मैं अब और अधिक बर्दाश्त नहीं कर सकती। उसका यह कार्य इस बात को प्रकट करता था। कि मानवीय प्रतिष्ठा और उसकी स्वतन्त्रता अब अधिक दिन तक बेड़ियाँ डालकर बन्द नहीं रखी जा सकती। वैसे श्रीमती रोजा पार्क्स द्वारा बस चालक के आदेश को नहीं मानने के बारे में गोरे लोगों ने तरह–तरह की अटकलें लगानी शुरू कर दीं। बहुत से गोरे लोगों ने तर्क दिया कि अश्वेत लोगों की विकास की राष्ट्रीय संस्था ने ज्ञानबूझकर आन्दोलनात्मक परिस्थिति तैयार करने के लिए भूमिका के रूप में यह बीज बोया हैं। गोरे लोगों का यह तर्क ऊपर से देखने में असम्भव और बेबुनियाद भी नहीं लगता था, क्योंकि श्रीमती पार्क्स इन संस्था के स्थानीय शाखा में सचिव रह चुकी थीं। यह तर्क इतना वजनदार और अनुकूल मालूम होता था कि देशभर पत्रकारों को भी इसमें विश्वास हो गया। आन्दोलन के दिनों में पत्रकारों की गोष्ठियों में डॉ. किंग से पत्रकारों द्वारा यही सवाल किया जाता था कि– ''क्या यह बस–बहिष्कार अश्वेत लोगों के विकास की राष्ट्रीय संस्था ने प्रारम्भ किया?'' परन्तु गिरफ्तारी बिना किसी पूर्व कल्पना के हुई थी। श्रीमती रोजा मार्क्स का स्वाभिमान जाग्रत हो चुका था। युगों–युगों से लादी गयी इस अप्रतिष्ठित रंगभेद की परम्परा ने और आने वाली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पीढ़ियों को आजाद कराने की इच्छा ने उन्हें यह काम करने की प्रेरणा दी। वे परम्परागत रूढ़ियों की शिकार थीं और आने वाली भविष्य को उज्ज्वल बनाने की तड़प से भरी हुई थी। उसने समय के प्रचलित रिवाजों को मानकर चलने से इन्कार कर दिया। वह समय की पुकार थी। सौभाग्य से ऐतिहासिक परिस्थितियों ने श्रीमती पार्क्स को जो पार्ट अदा करने को दिया, उसके लिए वह सुयोग्य पात्र साबित हुई। थोड़ी ही देर में श्रीमती पार्क्स की गिरफ्तारी की घटना पूरे नीग्रो समाज में टेलीफोन द्वारा और सीधे सम्पर्क के द्वारा फैल गयी। इस घटना से दु:खी होकर 'राजनैतिक महिला समाज' ने बस बहिष्कार का विचार प्रकट किया। डॉ. मार्टिन लूथर किंग को इस घटना का समाचार समाज सेवक श्री ई. डी. निक्सन ने दिया। साथ ही श्री निक्सन ने यह विचार भी व्यक्त किया कि ''इस तरह की घटनाएं लम्बे समय से घटती चली आ रही हैं। अब वह समय आ गया है कि हमें इन बसों का बहिष्कार करना चाहिए। केवल इस तरह के बहिष्कार के माध्यम से ही हम यह बात स्पष्ट कर सकते हैं कि अब इस तरह के व्यवहार को हम कभी भी स्वीकार नहीं करेंगे।'' निक्सन के इस सुझाव से डॉ. किंग सहर्ष सहमत हो गए तथा उन्हें एक साथी और मिला, वे थे ''फर्स्ट बैप्टिस्ट चर्च'' के तरूण पादरी श्री ''रातफ एबरनाथी''। इन तीनों मित्रों के आपसी विचार विमर्श के बाद दूसरे दिन सुबह बस बहिष्कार के सम्बन्ध में नीग्रो समुदाय के लोगों की एक सभा डॉ. किंग के चर्च में आयोजित की गयी, जो पूर्णत: सफल हुई। प्राय: सभी तबके के लोग सभ में गये थ। सभा के सभापति श्री एल. राय बेनेट ने अपने भाषण के अन्त में कहा- ''अब हलचल पैदा करने का समय आ गया है, यह बातें करने का नहीं, काम करने का वक्त है।'' इस सभा में कई व्यावहारिक प्रश्न उठाये गये, जैसे- कितने दिनों तक बहिष्कार आन्दोलन चलेगा, बहिष्कार के दिनों में लोगों को घरों से कार्यलयों तक और कार्यालयों से घरों तक कैसे पहुँचाया जायेगा? इन सब सवालों को हल करने के लिए 5 दिसम्बर 1955 की शाम की नीग्रो लोगों की एक आमसभा बुलाने का निर्णय हुआ। तत्कालीन बैठक में जो निर्णय लिया गया वह निर्णय साइक्लोस्टाइल कर उसकी प्रति नीग्रो लोगों में बड़ी तत्परता के साथ बाँट दी गयी। वह निर्णय इस प्रकार था-

1. एक और नीग्रो महिला गिरपतार करके जेल में डाल दी गयी है, क्योंकि उसने बस में अपनी सीट को छोड़कर खड़े होने से इन्कार कर दिया था।
2. पाँचवी दिसम्बर सोमवार को शहर, स्कूल या अन्य किसी स्थान में जाने के लिए बस में मत चढ़िये।
3. काम पर जाने के लिए, शहर जाने के लिए, स्कूल जाने के लिए या और कहीं जाने के लिए सोमवार को बस में मत चढ़िये। अगर आपको काम पर पहुँचना है, तो टैक्सी से, किसी मित्र की कार से या पैदल जाइये।
4. आगे के निर्देशों को जानने के लिए सोमवार की शाम को सात बजे होल्ट स्ट्रीट-बैप्टिस्ट चर्च में होने वाली आमसभा में सम्मिलित होइये।

मीटिंग में तय किये गये विचारानुसार नीग्रो लोगों द्वारा चलायी जाने वाल अठारह टैक्सी कम्पनियों को यह सलाह दे दी गयी वे लोग लगभग बस जितना ही किराया लेकर नीग्रो लोगों को अपने-अपने काम पर पहुंचा दें। टैक्सी कम्पनियों ने यह सलाह सहर्ष स्वीकार कर ली और अपना कर्त्तव्य का पालन भी किया। पाँच दिसम्बर को बस बहिष्कार पूरी तरह से सफल हुआ। इससे डॉ. किंग को आन्दोलन को आगे बढ़ाने का और भी विश्वास बढ़ा।

पांचवी दिसम्बर के बस बहिष्कार की सफलता से आन्दोलन के सभी नेता बहुत प्रसन्न थे, साथ ही इस प्रसन्नता के अन्दर से यह सवाल भी उठ रहा था कि यहाँ से आगे किधर बढ़ना चाहिए। श्री निक्सन, श्री एबरनाथी और श्री फ्रेंच ने आन्दोलन को सुनियोजित और प्रभावी ढंग से आगे बढ़ाने के लिए एक 'संचालन समिति' के गठन का सुझाव दिया, जिस सुझाव का समर्थन वहां उपस्थित सभी नेताओं ने किया। संचालत समिति गठित की गयी, जिसका अध्यक्ष सर्वसम्मति से डॉ. मार्टिन लूथर किंग को बनाया गया। आन्दोलन को प्रभावी बनाने के लिए अन्य समितियों का गठन किया, जैसे अस्थायी समिति। विभिन्न समितियों के मेल से बने संगठन का नाम 'माण्टगोमरी विकास संगम' (माण्टगोमरी इंप्रूवमेंट एसोसिएशन) रखा गया। अब तक श्रीमती रोजा पार्क्स को छोड़ दिया गया था। पाँच दिसम्बर 1955 की शाम को आमसभा में बहुत भारी संख्या में नीग्रो लोग उपस्थित हुए। उस सभा में नेताओं के भाषण के बाद श्री राल्फ एबरनाथी द्वारा प्रस्ताव (माँगें) पढ़कर सुनाया गया। प्रस्ताव की प्रमुख बातें थीं-

1. बस चालकों द्वारा भद्र व्यवहार किये जाने की गारण्टी दी जाय।
2. बस में यात्रा वालों के लिए बैठने का प्रबन्ध ऐसा हो कि जो पहले आयें वे पहले बैठे। नीग्रो लोग पीछे की तरफ से बैठना शुरू करें और गोरे लोग आगे को तरफ से।
3. नीग्रो बस चालकों की नियुक्ति उन मार्गों पर खास तौर से की जाय, जिन पर नीग्रो यात्री ज्यादा होते हैं।

उक्त प्रस्ताव को सभा में सर्वसम्मति से स्वीकृति मिल गई।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

आठ दिसम्बर, 1955 को माण्टगोमरी विकास संगम की ओर से बारह व्यक्तियों की एक 'समझौता-वार्ता-समिति' गठित की गई, जिसका प्रवक्ता डॉ. किंग को बनाया गया। इस समिति को अपनी मांगों के सम्बन्ध में नगर के तीनों कमिश्नर मेयर श्री डब्ल्यू. एच. गेल, कमिश्नर श्री क्लाइड सेलर्स तथाा कमिश्नर श्री ए. पार्क्स से तथा बस अधिकारियों से समझौता वार्ता करनी थी। यह समझौता वार्ता निश्चित दिन को ग्यारह बजे आयोजित की गयी। इसमें समझौता समिति की ओर से उक्त तीन माँगें रखी गयी-

1. बस ड्राइवरों से भद्रतापूर्ण व्यवहार का आश्वासन।
2. जो यात्री पहले आवें वे पहले बैठें और नीग्रो बस में पीछे की ओर बैठे, इसका आश्वासन।
3. नीग्रो-बस्तियों में चलने वाली बसों में नीग्रो बस ड्राइवरों की नियुक्ति की जाय।

इन मांगों में से यात्रियों की बैठने की माँग बस कम्पनी का प्रतिनिधित्व करने वाले श्री जैक क्रेनशॉ को मान्य नहीं था। श्री क्रेनशॉ ने पहले तो मांग की अस्वीकृति के पक्ष में यह तर्क प्रस्तुत किया कि, यह माँग इस तरह की है कि जिससे कानून में परिवर्तन करना, जो कि सम्भव नहीं है। बहुत चर्चा के बाद श्री क्रेनशॉ ने भी अपने मन की असली बात कह दी, वह यह कि ''अगर हम नीग्रो की माँगे स्वीकार कर लेंगे, तो वे गोरे लोगों पर विजय प्राप्त करने के लिए अभियान में शेखी बधारेंगे। हम इसे सहन नहीं कर सकते।'' वैसे नगर के मेयर और कमिश्नर श्री पार्क्स माँगों को मनाने के लिए तैयार थे। अन्तत: चार घंटे की बातचीत बिना समझौते के ही समाप्त हुई।

इस समझौता वार्ता के असफल होने के बाद नीग्रो टैक्सी कम्पनियाँ अपनी सेवा देने में इसलिए असमर्थ हो गयी कि पुलिस कमिश्नर की ओर से यह हिदायत दी गयी की टैक्सियों के लिए जो भाड़ा कानूनी तौर पर तय किया गया है, उससे कम किराया लेकर कोई भी व्यक्ति टैक्सी नहीं चला सकता है। जाहिर है टैक्सी का किराया बस किराये से बहुत अधिक होता है, जिसे प्रतिदिन आम नागरिक वहन नहीं कर सकता। ''नीग्रो विकास संगम'' ने एक मीटिंग कर यह तय किया कि निजी टैक्सी वाले लोग नीग्रो लोगों को एक जगह से दूसरी जगह पहुंचाने में सेवा प्रदान कर सकते हैं। नीग्रो समाज के बीच यह प्रस्ताव पहुंचते ही लगभग तीन सौ टैक्सी मालिकों ने अपना पूरा पता और टेलीफोन नम्बर समिति के पास भेजा और सेवा प्रारम्भ कर दी गयी। इन टैक्सियों से सेवा प्राप्त करने के लिए कुछ वैतनिक ड्राइवर भी रखे गये, नियमबद्ध तरीके से उसके पहुँचने के, रुकने के स्टेण्डों की जानकारी सबों को दी गयी। चर्च के पादरियों ने भी सेवा में अपनी टैक्सी प्रदान की। इस प्रकार यातायात की समस्या का समाधान हुआ और आन्दोलन ने पूरी गति के साथ आगे बढ़ने का अपना क्रम जारी रखा। आन्दोलन समाप्ति हेतु पुन: दो बार वार्ताएँ हुई, लेकिन वे भी असफल सिद्ध हुईं। आन्दोलन के अहिंसात्मक होने के कारण पुलिस को आंदोलन के दमन का कोई बहाना नहीं मिल रहा था। उधर नीग्रो लोगों के यातायात ठप्प करने के भी नये-नये उपाय किये जा रहे थे। इन्हीं नये उपायों में से एक यह था कि निजी टैक्सी-ड्राइवर ट्रेफिक के सभी नियमों का पालन करते हैं या नहीं। टैक्सी चालकों को 'चालक-लाइसेंस' देखा जाने लगा। टैक्सी की गति देखी जाने लगी और कुछ न कुछ बहाना बनाकर लोगों को गिरफ्तार किया जाने लगा। अन्तत: वह काला दिन भी आया जब डॉ. मार्टिन लूथर किंग को भी गिरफ्तार कर 'माण्टगोमरी सीटी जेल' के एक गन्दे कमरे में बन्द कर दिया गया। कुछ दिन मुकदमा चलने के बाद 22 मार्च, 1956 को माण्टगोमरी न्यायालय के न्यायाधीश श्री यूजीन कार्टर ने डॉ. किंग के मुकदमें का फैसला हुए कहा-''मैं यह घोषणा करता हूँ कि अभियुक्त हमारे राज्य के बहिष्कार विरोधी कानून तोड़ने के अपराधी हैं। सजा के रूप में अभियुक्त या तो न्यायालय के खर्च के अलावा पाँच सौ डालर का जुर्माना भरे या तीन सौ छियासी (386) दिनों के सश्रम कारावास की सजा भुगते।

न्यायाधीश श्री कार्टर ने घोषणा की कि वे अभियुक्त से न्यूनतम जुर्माना वसूल करने का आदेश दे रहे हैं, क्योंकि अभियुक्त ने हिंसात्मक कार्रवाइयों को रोकने का प्रयत्न किया है। अन्य नीग्रो-अभियुक्तों के मुकदमें की सुनवाई भी जारी रही, जिनकी संख्या 86 रह गयी थी। डॉ. किंग ने लिखा है कि ''कुछ ही मिनट में अनेक मित्रों ने मेरी जमानत भरने के लिए इच्छा प्रकट की और वकीलों ने न्यायाधीश को बताया कि इस मुकदमें की अपील की जायेगी। न्यायालय के चारों और खड़े हुए लोगों की आँखें आँसूओं से भर गयी थीं। बहुत से लोग सिर झुकाए हुए जा रहे थे। मेरे मुकदमें के अन्त में मैं न्यायाधीश श्री कार्टर के धर्म संकट पर सहानुभूति अनुभव कर रहा था। मुझे दंडित करने के कारण उनकी पूरे राष्ट्र और विश्व के जनमत की ओर से धिक्कार का सामना करना होगा। अगर मुझे दण्डित न करते तो उन्हें स्थानीय समुदाय और जिन मतदाताओं ने उनको चुना है, उनकी तरफ से धिक्कार का सामना करना पड़ता। मुकदमें की काईवाई के दौरान उनका व्यवहार मेरे प्रति भद्रतार्पूण था। उन्होंने जो फैसला दिया, वह शायद उनके ख्याल से एकमात्र उत्तम रास्ता था। इस मुकदमे के बाद वे आराम लेने के लिए शहर से कहीं बाहर चले गये।''

Jan Kalyan Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

डॉ. किंग जब न्यायालय से निकले तब उनके साथ उनकी पत्नी और मित्र उन्हें घेरे हुए चल रहे थे। उनके मित्र देश के अन्य कोने से आये हुए थे। न्यायालय के सामने सैकड़ों नीग्रो और श्वेतांग नागरिक उनकी प्रतीक्षा में खड़े थे। प्रतीक्षा करने वालों में टेलीविजन और प्रेस-फोटो ग्राफर के साथ-साथ विदेशों से आये पत्रकार भी थे। ज्यों ही डॉ. किंग ने अभिवादन में हाथ उठाया, त्यों ही सब लोगों ने एक स्वर से पुकारते हुए कहा- ''ईश्वर आपकी रक्षा करें।'' उसके बाद सबों ने बस बहिष्कार आंदोलन सम्बन्धी गीत गाना शुरू कर दिया, जिसका आशय था-''हमारा बस-बहिष्कार चालू रहेगा तथा हम बसों में यात्रा नहीं करेंगे।'' डॉ. किंग ने अपनी पुस्तक आजादी की मंजिले (स्ट्राइड टूवार्ड्स फ्रीडम) में लिखा है- ''साधारण तौर पर सजा प्राप्त करने वाला कोई भी व्यक्ति न्यायालय से उदास चेहरा लेकर ही निकलता है, परन्तु मेरे चेहरे पर मुस्कान बिछी हुई थी। मैं जानता था कि मैं एक घोषित अपराधी हूँ, परन्तु मुझे अपने अपराध पर गर्व था। मैंने अपने लोगों के साथ मिलकर अन्याय के विरुद्ध एक अहिंसक आंदोलन में भाग लिया, यही मेरा अपराध था। अपने लोगों के साथ मिलकर मैंने प्रतिष्ठा तथा स्वाभिमान को प्राप्त करने के लिए संघर्ष किया, यही मेरा अपराध था। अपने लोगों के लिए जीवन के अनिवार्य अधिकारों की माँग करने के लिए मैं उद्यत हुआ, यही मेरा अपराध था। स्वतन्त्रता और परतन्त्रता के साथ रहने और जीने का अधिकार अनिवार्य रूप से और समान रूप से भी सभी को प्राप्त होना चाहिए। मैं अपने लोगों को यह समझाना चाहता था कि न्याय के साथ सहयोग करना जिस तरह हमारा नैतिक कर्त्तव्य है, उसी तरह न्याय के साथ असहयोग करना भी हमारा नैतिक कर्त्तव्य है और यही मेरा सबसे बड़ा अपराध था।'' डॉ. किंग की गिरफ्तारी और सजा से आंदोलन की समाप्ति होने के बजाय उसको और अधिक गति तथा प्रचार मिला। साथी ही नीग्रो समुदाय में और ज्यादा एकता पैदा हुई। न्यायाधीश डॉ. कार्टर के फैसले ने केवल डॉ. मार्टिन लूथर किंग को ही दण्डित नहीं किया था, बल्कि मानो माण्टगोमरी के प्रत्येक नीग्रो को दण्डित कर दिया था। डॉ. किंग द्वारा संचालित सविनय आंदोलन ने पूरी नीग्रो जाति को जगा दिया था। नीग्रो अब पूरी तरह निर्भीक बन गये थे। अब 'पुराने नीग्रो' की जगह 'नये नीग्रो' आ गये थे। डॉ. किंग नये नीग्रो के बारे में उल्लेख करते हुए कहते हैं- ''आंदोलन के दौरान हमारे विरोधी पक्ष के लोगों ने यह भी जाहिर कर दिया कि वे जिन नीग्रो लोगों के साथ आंदोलन को सफल बनाने के लिए विभिन्न तरह के व्यवहार कर रहे थे, उन्हें वे अच्छी तरह जानते भी नहीं हैं। उन्होंने केवल इतना ही सोचा कि वे लोगों के एक ऐसे झुंड के साथ व्यवहार कर रहे हैं, जिन्हें फुसलाया जा सकता है और जो कुछ भी श्वेतांग नागरिक चाहें, वैसा करवाने के लिए मजबूर किया जा सकता है। विरोधियों को यह मालूम नहीं था कि वे ऐसे नीग्रो लोगों के साथ व्यवहार कर रहे हैं, जो पूरी तरह निर्भीक हैं। इसलिए इन विरोधी पक्ष की प्रत्येक चाल आखिरकार का गलती साबित हुई। इसके अलावा और कुछ हो भी नहीं सकता था, क्योंकि पुराने नीग्रो के साथ जिस तरह व्यवहार किया जाता था, उन्होंने उन तरीकों को नये नीग्रो के साथ भी अपनाया।''

अंततः 13 नवम्बर 1956 (मंगलवार) का शुभ दिल भी आया जबकि रंगभेद के विरुद्ध अश्वेत लोगों के पक्ष में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का समाचार माण्टगोमरी पहुँचा। यह समाचार उसी समय माण्टगोमरी पहुंचा जब माण्टगोमरी के न्यायालय में बस बहिष्कार से सम्बन्धित मुकदमें की सुनवायी हो रही थी। 'नीग्रो विकास संगम' के प्रायः सभी सदस्यों को यह सुखद समाचार न्यायालय में ही मिला। डॉ. किंग लिखते हैं कि-''13 नवम्बर 1956 मंगलवार का दिन माण्टगोमरी बस-बहिष्कार आंदोलन के इतिहास में सदैव अविस्मरणीय रहेगा। उस दिन दो ऐतिहासिक फैसले एक साथ सामने आये। एक फैसले के अनुसार राज्य के न्यायालय के द्वारा हमारी यातायात-व्यवस्था को ठप किये जाने का आदेश दिया गया था। दूसरे फैसले के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा उस व्यवस्था के मूल कारण, बसों में चलने वाले रंगभेद को समास करने का आदेश दिया गया था।''

सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के बाद आंदोलन के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करने के लिए 14 नवम्बर 1956 को नीग्रो नागरिकों की एक आमसभा आयोजित की गयी। सभा में अधिक से अधिक नागरिक भाग ले सके, इसलिए एक ही समय में नगर के दो अलग-अलग हिस्सों में दो सभाएँ आयोजित की गयी, इन दोनों सभाओं में आंदोलन के प्रमुख नेता कार द्वारा एक के बाद दूसरे में अपना विचार प्रकट करने पहुँच गये। दोनों सभाओं ने कार्यकारिणी समिति द्वारा उपस्थित इस सुझाव को मान्यता दी कि औपचारिक तौर पर बस बहिष्कार समाप्त किया जाय, परन्तु सर्वोच्च न्यायालय का आदेश पहुँचने तक बसों में न चढ़ा जाय। उधर उसी रात श्वेत लोगों ने अश्वेतों के मुहल्ले में उपद्रव मचाने की ठान ली। डॉ. किंग के पास धमकी भरे पत्र आने लगे। एक पत्र में लिखा था- ''अगर आप 'निगर' लोगों को बसों मे जाकर आगे के सीटों पर बैठने देंगे तो हम एक ही रात में आपके घर सहित पचास घर जला डालेंगे।''

सर्वोच्च न्यायालय का फैसला माण्टगोमरी तक पहुँचने में महीना लग सकते हैं, ऐसी सम्भावना थी, इसलिए इस बीच 'नीग्रो विकास संगम' के सदस्यों ने नीग्रो लोगों को आंदोलन समाप्ति के बाद बसों में बैठने के नियम यानी तौर-तरीके बतलाने शुरू किये। इसके लिए कई जगह अस्थायी स्कूल खोला गया। लोगों को एक सभाओं के बाद एक सभाओं में इस बात पर जोर देकर समझाया गया कि हमारा तरीका अहिंसात्मक हो। लोगों को समझाया गया- सर्वोच्च न्यायालय निर्णय के कारण बसों में चलने वाले रंगभेद समाप्ती की जो

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सफलता हमें प्राप्त हुई है, उसे हम गोरे जाति पर अपनी विजय का प्रतीक न समझे, वरन् इसे न्याय और जनतंत्र की विजय मानें।'' हम सब बसों पर चढ़ने जायें तब अनावश्यक ही अपने अधिकारों की डींग न मारे। हम लोग केवल वहीं बैठे, जहाँ सीट खाली पड़ी हो।'' आंदोलन के संचालकों ने रंगभेद हीन बसों में यात्रा के लिए कुछ सुझाव तैयार किये और उनको साइक्लोस्टाइल कर सब जगह बाँट दिया गया। ये सुझाव मुख्य रूप से डॉ. किंग ने ही अपने अन्य दो साथियों की मदद से तैयार किया। बस-यात्रा सम्बन्धी सुझाव थे- ''यह एक ऐतिहासिक सप्ताह है, क्योंकि बसों में चलने वाला रंगभेद अब अवैधानिक घोषित किया जा चुका है। कुछ ही दिनों में सर्वोच्च न्यायालय का आदेश माण्टगोमरी पहुंच जायेगा और आप लोग रंग-समन्वय वाली बसों में फिर से यात्रा करेंगे। यह नवीन व्यवस्था हमें एक विशेष उत्तरदायित्व सौंपती है कि हम शांति और स्नेहपूर्ण वातावरण का निर्माण करें। यह वातावरण अच्छे नागरिकों, नीग्रो वंश के सदस्यों के ही योग्य हो। अगर किसी दुखद घटना का भी सामना करना पड़े तो हमें अपनी शांति तथा भद्रता का परित्याग नहीं करना है। अगर शब्दों में या कार्यों में कहीं हिंसा भी फूट पड़े तो भी उसे उस हिंसा के करने वालों में हमारे लोग नहीं होने चाहिए।''

(1) सभी श्वेतांग नागरिक बसों में किये जाने वाले रंग समन्वय के विरोधी नहीं हैं। इसलिए उन सहृदय श्वेतांग यात्रियों की सद्भावनाएं स्वीकार करें।

(2) अब पूरी बस सभी (यात्रियों) लोगों के लिए है। इसलिए किसी भी खाली पड़ी सीट पर आप बैठ जाएँ।

(3) जब आप बस पर चढ़ें, तब ईश्वर से प्रार्थना करें कि वे आपको संयम से रहने की शक्ति दें और अपने आप में यह प्रतिज्ञा करें कि शब्दों या कार्यों में पूरी तरह अहिंसक बने रहेंगे।

(4) अपने क्रिया-कलापों में अपनी शांत और भद्र-वृत्ति का परिचय दें।

(5) प्रत्येक अवसर पर नम्रता और सद्व्यवहार के साधारण नियमों का पालन करें।

(6) याद रखें कि यह केवल नीग्रो-समुदाय की विजय नहीं है, बल्कि माण्टगोमरी तथा पूरे दक्षिण की विजय है। घमंड मत कीजिये, डींग मत मारिये।

(7) चुप रहिये, पर वह मौन मित्रता पूर्ण हो। गर्वोन्नत रहिए, पर वह गर्व उदण्डतापूर्ण न हो। प्रसन्न रहिये, पर उस प्रसन्नता में दूसरों का मजाक मत उड़ाइये।

(8) इतने प्रेमल बनिये कि अन्याय स्वयं शरमा जाय और इतने समजदार बनिये कि शत्रु भी मित्र बन जाये।

3.3.2 कुछ विशिष्ट सुझाव :

(1) बस ड्राइवर बस का एक प्रमुख व्यक्ति है और उसे कानून का पालन करने की आज्ञा दी गयी है। इसलिए ऐसा मानकर चलिए कि वे आपको खाली सीट पर बैठने में सहायता करेगा।

(2) जानबूझ कर किसी श्वेतांग नागरिक की बगल में बैठने की कोशिश मत कीजिये वशर्ते कि दूसरी कोई सीट खाली न हो।

(3) किसी के बगल में बैठते हुए, चाहे वह व्यक्ति श्वेतांग हो या नीग्रो, क्षमा कीजियेगा अथवा क्या में बैठ सकता हूँ, आदि नम्रता पूर्ण शब्दों का व्यवहार कीजिये। यही साधारण शिष्टाचार है।

(4) अगर कोई आपको दुत्कारता है, तो आप उसे बदले में दुत्कारिये नहीं। कोई आपको धक्का देता है, तो आप बदले में उसे धक्का मत दीजिये। कोई आपको मारता है तो बदले में आप उसे मारिये नहीं, बल्कि हर अवसर पर प्रेम और सद्भावना का प्रदर्शन कीजिये।

(5) अगर कोई विशेष घटना घटे तो धीरे-धीरे और कम से कम बोलिए। अपनी सीट पर से उठिये नहीं और प्रत्येक गंभीर घटना की सूचना ड्राइवर को दीजिये।

(6) प्रारम्भ के कुछ दिनों तक किसी ऐसे मित्र के साथ बस-यात्रा कीजिए, जिसके अहिंसक होने का आपको भरोसा हो, किसी अनिश्चित घटना के समय दोनों मित्र एक दूसरे को सहारा दे सकते हैं या आपस में हाथ पकड़कर मन ही मन प्रार्थना कर कर सकते हैं।

(7) अगर अन्य नीग्रो यात्री किसी विवाद में उलझा हुआ हो, तो आप उस विवाद में पड़कर उसे और मत उलझाइये, बल्कि उस समय भी प्रार्थना करते हुए अपनी नैतिक और आध्यात्मिक शक्ति द्वारा न्याय प्राप्त करने का संघर्ष जारी रखें।

(8) अपनी योग्यता अथवा व्यक्तित्व के अनुसार ऐसे नये और सक्रिय तरीकों का प्रयोग करने में हिचकिचाइये नहीं, जिन तरीकों से आपसी मेल-मिलाप बढ़ता हो और समाज परिवर्तन संभव होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(9) अगर आप यह महसूस करते हों, कि किसी उत्तेजक परिस्थिति में शांत रह पाना आपके लिए कठिन है तो और एक या दो सप्ताह तक बसों में चढ़ने की कोशिश मत कीजिये। हमें अपने नीग्रो समुदाय पर पूर्ण भरोसा है। ईश्वर आप सबको शक्ति देगा और वह शक्ति आपकी रक्षा करेगी।

20 दिसम्बर, 1956 को सर्वोच्च न्यायालय का रंगभेद के विरुद्ध फैसला माण्टगोमरी पहुंच गया। आंदोलन के नेताओं ने तुरन्त ही एक आम सभा का आयोजन किया, जिसमें आंदोलन समाप्त करने के क्रियाकलापों पर विचार किया गया और आंदोलन समाप्त किया गया। सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के विरुद्ध माण्टगोमरी के बहुत से श्वेतांग नागरिकों के परिषदों ने तो विरोध प्रकट किया ही साथ ही वक्तव्य जारी कर कहा गया कि हम किसी भी ऐसे फैसले का पूरी ताकत के साथ विरोध करेंगे, जो रंगभेद को समाप्त करता हो। श्वेतांग नागरिक परिषद् के एक नेता ने धमकी देते हुए कहा कि अगर सर्वोच्च न्यायालय के फैसले को लागू करने का प्रत्यन किया गया तो माण्टगोमरी में दंगे शुरू हो जायेंगे और रक्तपात होगा। वैसा हुआ भी। कुछ दिनों के शांत वातावरण के बाद 25 दिसम्बर तक माण्टगोमरी पर आतंक का साम्राज्य छा गया। पूरे शहरों में और खासतौर से ऐसे क्षेत्रों में, जहाँ बिजली का पूरा प्रबन्ध नहीं था, सिटी बसों पर गोलियाँ चलाने की घटनाएँ हुई। दो-तीन यात्री गोलियों से घायल भी हुए, एक दो यात्रियों को बुरी तरह अंधेरी रात में पीटा भी गया।

नीग्रो-समाज में फूट डालने के विभिन्न तरीके अपनाये जाने लगे। रात को उपद्रव होने से बचने का बहाना ढूढ़ते हुए पाँच बजे के बाद सीटी बसों का चलना बन्द कर दिया गया, जिससे मजदूरों को घर वापस लौटने में कठिनाई होने लगी। श्वेतागों ने डॉ. किंग पर भी कीचड़ उछालने शुरू किये और इस सम्बन्ध में इहताहार बाँटे, जिसमें लिखा रहता था-"यह उबे हुए नीग्रो लोगों की ओर से बाँटे जा रहे हैं। जब हम गोलियों के शिकार होते हैं, तब लूथर अपनी कार में बैठकर आनन्द कर रहा होता है। लूथर ने हमलोगों को दिन-प्रतिदिन अधिक से अधिक कठिनाइयों में फँसाया। इसलिये नीग्रो समाज के लोगों जागो और उसे अपने शहर से बाहर भगा दो।" इस तरह के अनेक फूट डालने वाले वक्तव्य जारी किये गये। श्वेतांग लोगों ने श्री राल्फ एबरनाथी के घर और उनके चर्च फर्स्ट लैप्टिस्ट चर्च पर भी बम विस्फोट किया। इस समय श्री एबरनाथी शहर से बाहर गये हुए थे। यह घटना 6 फरवरी, 1957 के दो बजे रात्री को घटी। संयोग से किसी को कुछ हुआ नहीं। इसके अलावा कई अन्य चर्चों पर भी बम विस्फोट हुए और अश्वेतों के कई घरों में आग लगा दी गयी। इन घटनाओं में कई अश्वेत घायल भी हुए, लेकिन फिर भी वे लोग अहिंसक बने रहे। इन घटनाओं में अश्वेत लोगों को भी जबरन गिरफ्तार कर उन पर मुकदमा चलाया गया। एक बार फिर से न्याय की हत्या हुई। पर यह अंतिम हत्या थी। सारी गड़बड़ी अचानक ही समाप्त हो गयी। बसों में रंग-समन्वय की स्थिति अच्छी तरह चलने लगी। कुछ ही सप्ताह में यातायात की व्यवस्था सामान्य हो गयी। गोरे और नीग्रो लोग साथ मिलकर बसों में यात्रा करने लगे। डॉ. किंग के अहिंसा एवं सत्याग्रह में दृढ़ विश्वास से अश्वेत लोगों के मन में अभय एवं उत्साह का नव संचार हुआ। उन लोगों को अपनी कुंठा एवं आक्रोश के स्थान पर सृजनात्मक एवं रचनात्मक नव दिशा एवं पथ मिल चुका था जिसके उद्दात एवं अहिंसक स्वरूप ने क्रमशः गोरे लोगों के हृदय परिवर्तन को अवकाश दिया, अंततः पूरे मन्टिगोमरी में समन्वयात्मक स्थिति स्थापित हो गई।

3.4 ग्रीन पीस आन्दोलन

साठ के दशक से प्रारम्भ हुए वैश्विक स्तर के पर्यावरणीय संरक्षण आन्दोलन नवीन प्रकार के उभरे हुए सामाजिक आन्दोलनों का ही एक रुप है। धरती के पर्यावरणीय ह्रास के कारण विभिन्न स्थानों, विभिन्न परिवेशों में प्रकृति संरक्षण की भावना से उपजे हुए ये आन्दोलन पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। बीसवीं शताब्दी के छठे दशक में सर्वप्रथम रसायनिक कीटनाशकों के प्रयोग के विरोध में रेद्दल कार्सन (Rachel Carson) के साइलन्ट लिप्रिंग (Silent Spring) से प्रारम्भ हुए पर्यावरणीय संरक्षण के आन्दोलनों की श्रंखला वृहत से वृहत्तर होती जा रही है। इन आन्दोलनों में Earth First, Earth Actim, Sea Shepherd, in favour of the pre contionary principle, strong fundamental preventive Measures for Biosafety, Biorecrify and Biodiversity, Earth Rapist आदि प्रमुख है। ग्रीन पीस आन्दोलन इन्हीं पर्यावरणीय आन्दोलन की महत्वपूर्ण कड़ी है।

पिछले कुछ दशकों से मनुष्य द्वारा सृजित कई प्रकार की समस्यायें सामने आई हैं। औद्योगिक क्रान्ति के उपरान्त बहुत अधिक तीव्रता से जो समस्या उभरी है, वह प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन तथा उत्पादन प्रक्रिया से उत्पन्न अपशिष्ठ, प्रदूषण तथा पर्यावरणीय ह्रास है। वर्तमान में वैश्विक स्तर पर जिस प्रकार के पर्यावरणीय संकट का सामना करना पड़ रहा है, वह है अत्यधिक मात्रा में हानिकारक द्रव्यों का उत्सर्जन, पृथ्वी के तापमान बढ़ने का कारण भी प्रायः इसे ही माना जाता रहा है किन्तु पिछले कुछ दशकों से पर्यावरणीय जाग्रती के निष्पति स्वरुप यह समझा जाने लगा है कि पर्यावरण एवं प्रकृति का संकट वास्तव में मानव जाति के अस्तित्व का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

संकट है। पृथ्वी के परिवर्तित स्वरुप ने हमें समय-समय पर अनेक त्रासदियों द्वारा इसकी संकेतों को अनेक बुद्धिजीवियों, पर्यावरणविदों, प्रकृति प्रेमियों, समाज कार्य में संलग्न समाज सेवकों ने समझा और पर्यावरण संरक्षण हेतु अनेक प्रकार के प्रयास किये। इसी प्रकार ग्रीन पीस आन्दोलन ने प्रकृति के संसाधनों का अत्यधिक दोहन, जैन विविधता के संरक्षण, परमाणु अस्त्रों के परीक्षण के विरोध आदि जैसे कार्यक्रमों के द्वारा प्रकृति एवं अंतत: मानव जाति के संरक्षण हेतु पर्यावरणीय वेतना को जाग्रत करने हेतु वैश्विक स्तर पर जनमत का निर्माण किया, जिसका प्रसार आज विश्व के अन्य अनेक क्षेत्रों में हुआ है। ग्रीन पीस आन्दोलन पृथ्वी को पीड़ा के रुप में उभरी हुई याचना से द्रवित होकर उपजा हुआ वैश्विक स्तर पर सामूहिक रुप से हुआ लोगों का प्रयास है। यह आन्दोलन अपनी सक्रियता के कारण काफी लोकप्रिय हैं। इस आन्दोलन से जुड़े कार्यकर्त्ता प्रत्यक्षत: अपने प्रयासों की प्रस्तुति प्राय: उन्हीं स्थानों पर जा कर देते है, जहां पृथ्वी एवं इसके आश्रितों के अस्तित्व पर कोई खतरा हो चाहे यह 1971 में अलास्का में परमाणु भू-परीक्षण का विरोध हो, चाहे यह 1980 में वृहत्त स्तर पर हुए व्हेल मछली के शिकार के विरोध में 'Rainbow Warrior' के रुप में हो, चाहे यह महाशक्तियों के आणविक अस्त्रों की होड़ के विरोध में हो। वास्तव में ज्यों-ज्यों पृथ्वी की अस्मिता पर संकट के बादल छाते गये, त्यों-त्यों ग्रीन पीस आन्दोलन में तीव्रता, व्यापकता एवं गलिछान प्रारम्भ हुई। ग्रीन पीस आन्दोलनों के कार्यक्रमों एवं कार्यक्षेत्रों के निम्नत: स्पष्ट रुप से जाना जा सकता है -

1. किसी भी प्रकार का युद्ध या परमाणु, जैविक एवं रसायनिक अस्त्रों के आधार पर संभावित युद्ध का विरोध।
2. आतंकवादियों द्वारा परमाणु, जैविक या रसायनिक अस्त्रों के प्रयोग का विरोध।
3. मनुष्य द्वारा निर्मित त्रासदियों का विरोध।
4. मनुष्य द्वारा निर्मित किसी व्यापक शारीरिक व्याधि के प्रसार का विरोध जैसे एड्स।
5. मनुष्यों एवं पशुओं द्वारा फैलाने वाली बीमारियों का विरोध एवं जनमत जाग्रण।
6. रसायनिक कीटनाशकों के प्रयोग का विरोध।
7. मांसाहार विरोध एवं पशु अधिकार का समर्थन।
8. अनियंत्रित पूंजीवाद का विरोध।
9. आर्थिक विषमता।
10. निर्माण के शोषक के आधार पर निर्मित प्राण नीति का विरोध।
11. पशु एवं अनाज के जीनों के साथ प्रयोग का विरोध।
12. विषैली गैसों का अत्याधिक स्तर के उत्सर्जन का विरोध।

3.5 सारांश

संक्षेप में ग्रीन पीस आन्दोलन एक ऐसा आन्दोलन है, जिसने वैश्विक स्तर पर हुए पर्यावरणीय दुष्प्रभावों से मानव-जाति को मुक्त कराने हेतु उनमुक्त प्रयास किया है, तथा उल्लेखनीय सफलता भी अर्जित की है।

3.6 अभ्यास प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. पगवाश आन्दोलन पर एक निबन्ध लिखे।
2. मार्टिन लूथर किंग ने किस प्रकार बस आन्दोलन का नेतृत्व किया?
3. बस आन्दोलन ने किस प्रकार सामाजिक विषमता को समाप्त करने में योगदान दिया।
4. ग्रीन पीस आन्दोलन का परिचय दे।

लघु निबन्धात्मक प्रश्न

1. पगवाश आन्दोलन की अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों का परिचय दे
2. अमेरिका की तात्कालीन रंगभेद नीतियों का परिचय दे
3. बस आन्दोलन का प्रारम्भ कैसे हुआ?
4. ग्रीन पीस आन्दोलन का स्वरूप क्या है?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

बहुवैकल्पिक प्रश्न

1. पगवाश सम्मेलन की प्रथम गोष्ठी कब हुई थी?
   (अ) 1957 (ब) 1960 (स) 1961
2. पगवाश आन्दोलन हेतु वैज्ञानिकों को प्रेरित एवं सक्रिय कराने में किसका महत्त्वपूर्ण योगदान है?
   (अ) लार्ड एटली (ब) चर्चिल (स) बर्टेन्ड रसल
3. सुश्री कोलीवन को कब दंडित किया गया
   (अ) 1955 (ब) 1960 (स) 1965
4. 5 दिसम्बर 1955 को आमसभा में कितने निर्णय लिये गये?
   (अ) 4 (ब) 5 (स) 6
5. ग्रीन पीस आन्दोलन किससे संबंधित है?
   (अ) पर्यावरण संरक्षण (ब) आर्थिक विषमता (स) राजनैतिक समानता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई-4

भूदान-ग्रामदान आन्दोलन, सम्पूर्ण क्रान्ति सप्त क्रान्ति

संरचना

4.0 प्रस्तावना

4.1 उद्देश्य

4.2 भूदान आन्दोलन : परिचय

4.2.1 भूदान का उद्देश्य

4.3 ग्रामदान: अर्थ एवं उत्पति

4.3.1 ग्रामदान : दर्शन एवं उद्देश्य

4.4 सम्पूर्ण क्रान्ति

4.4.1 सम्पूर्ण क्रान्ति का क्षेत्र

4.4.2 सम्पूर्ण क्रान्ति की प्रक्रिया

4.5 सप्त क्रान्ति

4.6 सिविलनाफरमग्नी

4.7 सारांश

4.8 अभ्यास प्रश्नावली

4.0 प्रस्तावना

गाँधी जी की मृत्यु के बाद उनकी सर्वोदय भावना का कार्यरूप में परिणत करने तथा सर्वोदय समाज व्यवस्था पर विचार करने की दृष्टि से सेवाग्राम में 11 से 15 मार्च 1948 में देश के सभी रचनात्मक कार्यकताओं तथा गांधी विचार प्रेमियों का एक सम्मेलन गांधी सेवा संघ की ओर से हुआ। उसमें वे लोग भी सम्मिलित हुए, जो सरकार में थे। यानी पं. जवाहर लाल नेहरू, सरदार पटेल, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद आदि तथा गांधी के गैर सरकारी अनुयायी भी सम्मिलित हुए। आजादी मिले भी कुछ महीने ही हुए थे। गहरे विचार मन्थन के बाद उसमें ''सर्वोदय समाज'' और ''सर्व सेवा संघ'' नामक संस्था की स्थापना हुई। अब सर्वोदय आन्दोलन का नेतृत्व विनोबा के हाथों में आ गया। स्वतन्त्र रूप से ''सर्व सेवा संघ'' की स्थापना करके विनोबा जी ने सर्वोदय आन्दोलन का कार्य गांधी जी के उत्तराधिकारी के नाते ही अपने हाथ में लिया।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई में हमारे अध्ययन का विषय गांधी जी उपरान्त भारत में हुए कुछ प्रमुख शांति आन्दोलन होंगे।

4.2 भूदान आन्दोलन का श्रीगणेश

भारत के विभिन्न राज्यों में हर साल लोक सेवकों का वार्षिक ''सर्वोदय-समाज सम्मेलन'' सम्पन्न होने लगा। इसी प्रकार के एक सर्वोदय सम्मेलन को जाते समय विनोबा जी तेलंगाना पहुंचे। वहां आये दिन जमींदारों की हिंसाओं के समाचार मिलते थे। भूमिहीन किसानों के सशस्त्र समूह संगठित होकर हत्याएं करते थे। विनोबा जी ने इन हत्याओं के पीछे जो भूमि समस्या थी, उसका अध्ययन किया। भूमिहीनों की भूमि की जरूरत यदि पूरी न की जायेगी तो ऐसी हत्याएं सारे भारतवर्ष में फैलने की संभावनाएं थी। इस भूमि समस्या पर गांधी विचार से नया उपाय निकल सकता है, इस पर विनोबा चिन्तन करने लगे। विनोबा ने सोचा- ब्रिटिश साम्राज्यशाही का उन्मूलन अगर गांधी नीति द्वारा हुआ तो आर्थिक क्षेत्र के समस्याओं के लिए भी गांधी मार्ग का प्रयोग क्यों न किया जाय? भूदान यज्ञ की

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

शुरूआत यानी उत्पत्ति अनायास ही 18 अप्रैल 1951 के शुभ दिन को हुई। स्थान था भारत के दक्षिणी भाग में अवस्थित एक राज्य आन्धप्रदेश का पोचमपल्ली गांव, जो कि तेलंगाना क्षेत्र में अवस्थित है। प्रथम भूमिदानकर्त्ता थे श्री रामचन्द रेड्डी, जिन्होंने भूदान का प्रारम्भ 100 एकड़ भूमि दान में देकर किया। 18 अप्रैल की इस चमत्कारिक घटना से विनोबा के इस विचार को बहुत बल मिला कि व्यक्ति का हृदय परिवर्तन कर दान में भूमि मांगकर भूमिहीनों को भूमि उपलब्ध कराकर शान्तिपूर्ण तरीके से भूमि का समान वितरण किया जा सकता है जिससे सर्वोदय समाज की रचना का स्वप्न भी साकार हो सकता है। साम्यवादियों के गढ़ आन्ध्रप्रदेश के तेलंगाना क्षेत्र में भूदान आन्दोलन की शुरूआत के साथ ही विनोबा ने 51 दिनों में 12,202 एकड़ भूमि प्राप्त की और इस प्रकार उनके नेतृत्व में सारे देश में लाखों एकड़ (42 लाख एकड़) भूमि दान में ली गई और गरीबों के बीच बांटी गई।

उत्तर से दक्षिण तक और पूरब से पश्चिम तक पूरे भारत भर में विनोबा जी ने भूदान के लिए पदयात्रा की। जिस भारत में सूई के अग्र भाग पर रहने वाली भूमि भी देने से इन्कार करके ''महाभारत'' का महायुद्ध हुआ, जिस भारत में आज भी बाप-दादों की जमीन जायदाद के लिए भाई-भाई परस्पर लड़ते हैं, उस आधुनिक भारत में खून की एक बूंद भी बहाये बिना लाखों एकड़ भूमि का दान भूमिहीनों के लिए प्राप्त हुआ। एक अभूतभूर्व रक्तहीन क्रान्ति सारे भारत में होने लगी। सारी दुनिया गांधी के भारत में होने वाले इस प्रयोग की ओर आशा से देखने लगी। यह ''भूदान आन्दोलन'' भूदान आरोहण का रूप धारण करने लगा। भूदान की परिणति, ग्रामदान में हुई और गांव के गांव दान में मिलने लगे। ग्रामदान, तहसील दान, जिलादान तथा राज्यदान तक इस आन्दोलन के आरोहण की प्रक्रिया पहुंच गयी। बिहार में ''सम्पूर्ण बिहार राज्य'' की हवा फैल गई। ''या तो सम्पूर्ण बिहार के भूमिहीनों की भूमि समस्या का समाधान होगा या मेरी हड्डियाँ यहां की भूमि में गिर पडेंगी'', ऐसी घोर प्रतिज्ञा विनोबा के मुख से निकल पड़ी।

विनोबा के इस ''दान'' के आन्दोलन में से श्रमदान, सम्पत्ति दान, जीवनदान का विचार तो सामने आया ही, साथ ही शान्तिसेना, ग्रामाभिमुख खादी, सर्वोदय पात्र, आचार्य कुल आदि अनेक कार्यक्रम सामने आये। ग्राम स्वराज्य का एक सर्वांगीण कार्यक्रम बना। अहिंसक समाज रचना का एक रेखाचित्र उभरा। गांधीजी ने ''हिन्द स्वराज्य'' का जो बीज रूप सपना देखा था, उसी का विनियोग विभिन्न क्षेत्र में इस तरह विनोबा जी द्वारा हुआ। सर्वोदय समाज रचना की कल्पना जो गांधी जी ने की थी, उसका विस्तृत विवरण ''ग्राम स्वराज्य आन्दोलन'' में हुआ। हिन्द स्वराज्य की सार्थकता ग्राम स्वराज्य में है, यह स्पष्ट होता गया। इस सन्दर्भ में जयप्रकाश जी ने कहा, ''विनोबा के आन्दोलन के कारण गांधी जी का अहिंसक क्रान्ति और आमूल समाज परिवर्तन का विचार उन्नत रहा। शायद बिनोबा के ऐसे आन्दोलन के बिना सर्वोदय की आत्म-प्रतीति सम्भव ही नहीं होती।''

विनोबा तब बार-बार कहते थे- ''पूर्ण क्रान्ति यानी 'टोटल रेवोल्यूशन' से कम मुझे कुछ नहीं चाहिए। हमें जीवन के हरेक अंग को छूने वाली समग्र क्रान्ति करनी है। विनोबा के नेतृत्व में ग्राम स्वराज्य आन्दोलन दो दर्शक तक लगातार चला और इस दोरान सर्वोदयी समग्र क्रान्ति के बुनियादी उद्देश्य एवं दर्शन सामने आये। ये सपने हैं एक नई समाज रचना के जिसे औद्योगिक संस्कृति के विकल्प के रूप में गांधी जी प्रतिस्थापित करना चाहते थे। गांधी की शान्ति सेना की कल्पना को बिनोबा ने विकसित किया और उसे एक ठोस कार्यक्रम का स्वरूप दिया। सैनिक शक्ति के ऊपर नागरिक शक्ति का प्रभुत्व हो। देश की आन्तरिक शान्ति के लिए पुलिस और सेना की आवश्यकता न रहे, नागरिक खुद वह जिम्मेवारी उठा ले। एक बार अन्दरूनी शान्ति-व्यवस्था के लिए पुलिस और सेना की जरूरत खत्म हो जाय, तो फिर सेना के सम्पूर्ण विसर्जन की ओर आगे बढ़ा जा सकता है। विनोबा ने कहा कि सिर्फ अणु शस्त्रास्त्र पर ही अंकुश लगाने से काम नहीं बनेगा, हर प्रकार के छोटे-मोटे सभी शस्त्रास्त्र खत्म होने चाहिए।

4.2.1 भूदान यज्ञ का उद्देश्य

4.2.1.1 व्यक्तिगत स्वामित्व का निराकरण

विनोबा जी के अनुसार भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व के आधार पर कुछ लोगों को भूमिहीन रखना एक प्रकार का अन्याय है, जो हिंसक समाज व्यवस्था के आधार को मजबूती प्रदान करता है। विनोबा ने पृथ्वी और मनुष्य में मां और पुत्र के सम्बन्ध को याद दिलाते हुए विचार व्यक्त किया, ''जिस प्रकार मां पुत्र की दासी नहीं हो सकती, उसी प्रकार पृथ्वी अर्थात् भूमि भी मनुष्य की दासी नहीं हो सकती है। अगर मनुष्य सामर्थ्यवान रहने के कारण बलपूर्वक दूसरों को भूमि के उपयोग से वंचित कर भूमि पर अपना स्वामित्व स्थापित करता है, तो वह उतना ही दोषी है जितना कि कोई अपनी माता के सभी प्रकार के अधिकारों का हनन कर तथा उसकी अन्य सन्तानों को गोद से छीनकर सदा के लिए अलग कर देता है।'' इसी मान्यता के आधार पर विनोबा की यह मान्यता भी है कि सामर्थ्यवान लोगों ने अपने

Jain (Isha Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सामर्थ्य द्वारा न्याय-अन्याय का विचार किए बिना भूमि पर आधिपत्य कर मानव के एक बड़े समुदाय को भूमि से वंचित कर दिया है, जिसका बुरा परिणाम सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था पर पड़ा है। भूदान यज्ञ को विनोबा ऐसे व्यक्तियों के लिए प्रायश्चित के सुअवसर के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जो कि अनावश्यक भूमि को दान में देकर भूमि के स्वामित्व का त्याग कर दें।

4.2.1.2 प्रेम और अहिंसा की शक्ति का निर्माण

विनोबा कहते हैं ''भूदान यज्ञ से भूमिहीनों को भूमि मिलती है, एक समस्या का हल होता है। इस काम का जितना महत्त्व है, उससे बहुत ज्यादा महत्त्व इस बात का है कि एक तरीका हाथ में आया। अहिंसा की शक्ति निर्माण करने की एक युक्ति हमारे हाथ लगी।'' गांधी की तरह ही विनोबा जी आजीवन अहिंसा की प्रतिस्थापना हेतु संघर्षरत रहे। सचमुच भूदान में अहिंसक शक्ति का निर्माण हुआ, क्योंकि विश्व के अनेक देशों में आर्थिक सम-वितरण के लिए खूनी क्रान्ति हुई। स्वयं भारत में भूदान-यज्ञ के पूर्व तेलंगाना के सैकड़ों धनिकों की हत्या की गई थी। विनोबा जी कहते हैं, ''मैं बड़ों से भूमि लेकर भूमिहीनों, गरीबों को आजीविका के लिए देना चाहता हूँ ..... अन्य देशों में इस विषमता को दूर करने के लिए लोगों की हत्याा की गई है। रूस में हजारों धनिकों की हत्या की गई। तेलंगाना में सैकड़ों धनिकों की हत्या की गई, पर मैं भारत में बिना हत्या या खूब-खराबी के यह कार्य पूरा करना चाहता हूँ।''

भूदान यज्ञ की यह इच्छा है कि व्यक्ति के बीच दूरी समाप्त हो और आपस में प्रेम बढ़े। व्यक्ति के आपसी प्रेम से व्यक्ति, परिवार और समाज की शक्ति के साथ-साथ देश की भी शक्ति बढ़ती है। समाज की बुराइयों को दूर करने हेतु अहिंसा और प्रेम पर आधारित सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता है, इस कार्य को भूदान यज्ञ कुशलतापूर्वक सम्पन्न करता है। भूदान यज्ञ अमीर-गरीब के बीच प्रेम सम्बन्ध स्थापित करते हुए समाज में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन लाता है। भूदान यज्ञ में धनी लोग गरीबों के प्रति सहानुभूति रखते हुए ही जमीन दान में देते हैं। अमीरों के इस हृदय-परिवर्तन का एक परिणाम यह भी होगा कि वे गरीबों को अपने परिवार का सदस्य मानने लगेंगे। इस प्रकार सामाजिक विषमता दूर होगी और समाज में प्रेम और अहिंसा प्रतिष्ठापित होगी।

4.2.1.3 जोतने वालों की जमीन

विनोबा ने भूदान आन्दोलन को इसलिए भी आवश्यक समझा कि जमीन खेती करने वाले मेहनतकश किसानों के पास ही रहनी चाहिए। विनोबा विचार में तो स्वामित्व के नाम पर सैकड़ों एकड़ भूमि को परती रख देना, उसमें फसल नहीं उग सकना एक प्रकार की हिंसा है। फिर वेद में तो कहा ही गया है ''माता भूमि: पुत्रो हं पृथ्वीव्या:'' अर्थात् पृथ्वी माता है और हम उसके पुत्र हैं, पुत्र के नाते हमें पृथ्वी की सेवा का ही अधिकार है, उस पर आदेश चलाने का नहीं। नैतिकता भी यही कहती है। विनोबा इस समस्या का समाधान जमींदारों के हृदय-परिवर्तन द्वारा ही करना चाहते हैं। भूदान यज्ञ इस समस्या के समाधान का मुख्य अंग है।

4.2.1.4 हृदय परिवर्तन द्वारा शासन-मुक्त, शोषण-मुक्त अहिंसक समाज रचना

प्रख्यात गांधीवादी विचारक धीरेन्द्र मजूमदार ने भूदान यज्ञ के उद्देश्य के बारे में कहा है, ''भूदान यज्ञ का मूल उद्देश्य केवल भूमि वितरण नहीं है। भूमि वितरण तो आन्दोलन का पहला कदम है। आन्दोलन के नतीजे से शासन मुक्त समाज कायम करने का ध्येय है और शासन-मुक्त समाज तभी होगा, जब समाज में शासन की आवश्यकता ही न रहे।'' शासन की आवश्कता नहीं पड़े, इसके लिए शोषणमुक्त समाज चाहिए और शोषण-मुक्त समाज की रचना तभी हो सकती है, जब समाज-रचना का आधार प्रेम और अहिंसा जैसे नैतिक मूल्य हों। इन मूल्यों की पूर्ति भूदान यज्ञ में निहित हृदय-परिवर्तन के द्वारा होती है। इसलिए भूमि समस्या के समाधान के लिए बिनोबा के भूदान आन्दोलन में किसी प्रकार की जोर-जबर्दस्ती का कोई स्थान नहीं। स्वयं विनोबा के विचार में ''भूदान यज्ञ भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व का विसर्जन करना चाहता है, वह विसर्जन अगर जबर्दस्ती कराया गया, तो भू-स्वामी के हाथ से जमीन चली जायेगी, लेकिन उसके हृदय में स्वामित्व-विसर्जन की मान्यता निर्मित नहीं होगी। अत: यह क्रान्ति कानून से नहीं होकर शान्ति और अहिंसा से होगी।

4.2.1.5 समाज परिवर्तन हेतु

कृषि प्रधान देश में समाज परिवर्तन का आरम्भ जमीन-व्यवस्था के परिवर्तन से होता है। चूंकि भारत एक कृषि प्रधान देश है, इसलिए यहां सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन भूमि के परिवर्तन द्वारा ही सम्भव है। विनोबा को भी सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन कर सर्वोदय समाज, अहिंसक राज्य कायम करना था, इसलिए उन्होंने पहले भूमि में क्रान्ति लाने का प्रयास किया और वह भी अहिंसक साधनों के द्वारा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4.2.1.6 अर्थ रचना में क्रान्ति हेतु

अर्थ रचना में परिवर्तन करने के लिए प्रारम्भ भूमि से ही करना होगा यह हमें भी स्वीकार करना चाहिए कि विज्ञान ने हमें चन्द्रमा पर ही क्यों न पहुंचा दिया हो, लेकिन अनाज के बिना मानव के साथ-साथ विज्ञान का भी अस्तित्व मिट जायेगा। फिर सारी टेक्नॉलॉजी और औद्योगिक कार्याक्लाप अनाज के अभाव में सम्भव नहीं। मात्र भारत ही नहीं, अन्य औद्योगिक देशों की भी अर्थ-रचना का आधार कृषि से अलग नहीं है।

4.2.1.7 जीवन का आधार-भूमि

जमीन केवल उत्पादन का ही साधन नहीं है, जमीन वसुन्धरा भी है। सारी खदाने जमीन में हैं, कच्चा माल और ईंधन आदि चीजें जमीन से ही मिलती हैं। इस दृष्टि से जमीन के अलावा अन्य आर्थिक क्षेत्रों में समानता लाने का उद्देश्य भूदान यज्ञ में निहित है। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि भूदान आन्दोलन भूमि सम्बन्धी समस्याओं को अहिंसात्मक और शान्तिपूर्ण ढंग से सुलझाने की दिशा में एक प्रयोग है। भूदान यज्ञ में समाज के सभी तबके तथा सभी उम्र के लोग भाग लेते हैं। वे लोग समर्पित भावना से भूमि दान में देते हैं।

भूदान यज्ञ की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि यह अमीरी के साथ-साथ गरीबों में भी समर्पण की, त्याग की भावना पैदा करता है। दादा धर्माधिकारी कहते हैं कि ''आज तक क्रान्तियों का उद्देश्य यह रहा है कि जिनके पास है, उनसे ले लो और जिस तरीके से हो सके उस तरीके से ले लो। यानी आज तक गरीबों के दिल में सिर्फ लेने की भावना पैदा हुई थी। भूदान यज्ञ की यह कोशिश है कि मालकियत के विसर्जन की भावना यदि अमीर के हृदय में पैदा करनी है, तो आगे चलकर गरीबों को भी मालकियत की भावना के विसर्जन के लिए तैयार रहना होगा।'' भूदान इस मायने में गरीबों के दिल में मालकियत के विसर्जन की भावना का श्रीगणेश करता है कि दान में मिली हुई जमीन के वितरण के लिए, मतदान नहीं करना है कि यह जमीन किस-किस को दी जाय, बल्कि स्वेच्छा से गरीबों के सामने यह प्रस्ताव रखा जाता है कि पहले जिन लोगों को जमीन की ज्यादा आवश्यकता है, वे लोग सर्व-सम्मति से स्वयं तय कर लें और उन्हीं को पहले जमीन दें। फिर बाद में ऐसा भी हो सकता है कि भूमि दान में पाने वाले, गरीब से भी ज्यादा जरूरतमन्द व्यक्ति कुछ समय बाद जमीन लेने को इच्छुक हो जाय तो उन गरीबों को भी भूदान के लिए सहर्ष तैयार रहना होगा। इसलिए भूदान में भूमि का आत्म-विसर्जन की प्रक्रिया से वितरण होता है।

विनोबा का भूदान आन्दोलन गरीबी और अमीरी के निराकरण के लिए तथा पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की समाप्ति के लिए अहिंसा और सत्याग्रह की नीति पर अधिष्ठित एक वैज्ञानिक तरीका है। भूदान के कारण भारत और एशिया की मुख्य समस्याओं की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ। भूदान पदयात्राओं ने जो कुछ करके दिखलाया उसे स्वराज्य के बाद किसी और ने करके नहीं दिखाया है। विनोबा ने भूदान-यज्ञ द्वारा देश के भूमि की समस्या की ओर लोगों का ध्यान खींचा। उन्होंने देश के कोने-कोने में, गांव-गांव में इस बात की चेतना जगा दी कि हमारे प्रश्नों का हल हमारे हाथ में हैं। उन्होंने कहा ''स्वराज्य पाने के बाद सारे काम सरकार पर नहीं छोड़ देने हैं। जमीन की तमाम मर्यादाओं और फायदों के बल पर जितनी जमीन प्राप्त की जा सकती थी, भूदान-यज्ञ द्वारा उससे अधिक जमीन प्राप्त हुई। यह बात भूल जाने जैसी नहीं है।''

भारत जैसी विकासशील अर्थव्यवस्था में, जहां कि लगभग तीन चौथाई जनसंख्या आज भी गांवों में रहती है, कृषि का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह जीविकोपार्जन का साधन अथवा उद्योग-धन्धा ही नहीं, अपितु अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी है। देश के उद्योग धन्धे, विदेशी व्यापार, विदेशी मुद्रा अर्जन, विभिन्न योजनाओं की सफलता एवं राजनीतिक दायित्व भी कृषि पर निर्भर है। ऐसी स्थिति में कृषि के विकास के लिए ग्रामीण क्षेत्र में व्याप्त निर्धनता को दूर करने, बेरोजगारी और अर्द्ध-बेरोजगारी से मुक्ति दिलाने हेतु आज भी भूदान यज्ञ पूर्णरूप से प्रासंगिक है। इसी दृष्टिकोण को पूरा करने हेतु भारत में सरकार की तरफ से भूमि सुधार की दिशा में समय-समय पर कार्यक्रम बनते और बिगड़ते रहते हैं। सरकारी स्तर पर भी यह पाया गया कि जमींदारी प्रथा सिर्फ कुछ प्रतिशत लोगों के पास ही केन्द्रित है। जो काश्तकार हैं, उनका शोषण हो रहा है। साथ ही खाद्यान्न के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता हेतु पैदावार बढ़ाने, उद्योगों हेतु कच्चे माल, औद्योगिक उत्पादन हेतु विस्तृत बाजार, लोकतांत्रिक राजनीति हेतु व्यापक आधार तथा ग्रामीण क्षेत्र में सामाजिक असामानता की खाई कम करने आदि के लिए भूमि सुधार आवश्यक है।

उक्त सारी समस्याओं का निदान विनोबा के भूदान आन्दोलन में है। विनोबा का भूदान आन्दोलन समाज की समस्या का समाधान करके भविष्य में होने वाली किसी कल्पित खूनी क्रान्ति को रोकता है, तो उससे मानव-समाज का अधिक कल्याण होगा, अपितु इसके कि लोग बैठे-बैठे वर्तमान को छोड़कर भावी क्रान्ति का इन्तजार करते रहें। विनोबा के अनुसार क्रान्ति, क्रान्ति के लिए नहीं, समस्याओं

Jan Vishwa Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

के समाधान के लिए होनी चाहिए और भूदान यज्ञ समस्याओं के समाधान का एक सरल रास्ता है। वर्तमान समय में, खासकर समाजिक न्याय की आड़ में सत्ताधीश द्वारा भोली-भाली जनता के ऊपर तरह-तरह के अत्याचार करने की प्रवृत्ति का भूदान एक करारा जवाब है।

4.3 ग्रामदान

अर्थ एवं उत्पत्ति - ग्रामदान का साधारण और सरल अर्थ है, ''किसी गांव के सभी भू-स्वामी अपने पूरे ग्राम समाज को अर्पित कर दें तथा पूरा गांव सहकारिता के आधार पर भूमि पर उत्पादन करें और उपज आपस में बांट लें।'' ग्रामदान हो जाने पर भूमि पर किसी का ''व्यक्तिगत'' स्वामित्व नहीं होकर, पूरे ग्रामीण समुदाय का भूमि के उपयोग करने का आवश्यकतानुसार अधिकार रहता है। ग्रामदान का विशेष अर्थ बतलाते हुए स्वयं विनोबा इसे समग्र विचार मानते हैं। विनोबा के इस विचार से प्रभावित होकर विभिन्न विचारकों ने ग्रामदान से भिन्न-भिन्न तथ्य निकाले। इन विचारकों के विश्लेषित तथ्यों को एकत्र कर देने पर विनोबा के इस विचार की पुष्टि हो जाती है कि ग्रामदान एकांकी नहीं, बल्कि समग्र विचार है। गांधीवादी विचारक चारूचन्द्र भंडारी धार्मिक दृष्टि से ग्रामदान का अर्थ लगाते हुए ग्रामदान को करूणा, सेवा और सहयोग का विचार मानते हैं। वे कहते हैं, ''ग्रामदान में वे सारे तत्त्व मौजूद हैं, जिनसे व्यक्ति के टूटे हुए हृदय को जोड़ा जा सकता है।'' श्री मन्ननारायण आर्थिक दृष्टिकोण से ग्रामदान का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहते हैं, ''ग्रामदान स्वावलम्बी ग्रामीण कुटीर उद्योग तथा खादी का कार्यक्रम है।'' श्री मन्ननारायण ग्रामदान में राजनीतिक विचार भी पाते हैं, इसलिए पुनः वे कहते हैं ''ग्रामदान शासन मुक्त समाज, वास्तविक लोकशक्ति और लोकनीति का भी विचार है।'' श्री मन्नारायण ग्रामदान में शान्ति सेना और नई तालीम का दर्शन करते हुए इसे हृदय परिवर्तन तथा विचार परिवर्तन के आधार पर शांतिमय क्रान्ति का सूचक मानते हैं। डॉ. दशरथ सिंह ने विचारकों द्वारा ग्रामदान के उपर्युक्त अर्थ विश्लेषण को बहुत ही सुन्दर ढंग से सजाते हुए कहा है, ''ग्रामदान एक जटिल प्रत्यय है जिसमें कई प्रकार की प्रतिभाओं का एक साथ अनुपम संगठन हुआ है- ग्रामदान धर्म की दृष्टि से करूणा और सेवा का, विज्ञान की दृष्टि से सहयोग का, समाज की दृष्टि से टूटे हुए हृदय को जोड़ने का, आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी ग्रामीण कुटीर उद्योग तथा खादी का, राजनैतिक दृष्टि से शासन मुक्त समाज, वास्तविक लोकशक्ति और लोकनीति का, प्रतिरक्षा की दृष्टि से शांति सेना का और अहिंसक क्रान्ति के मार्ग के रूप में यह नयी तालीम, हृदय परिवर्तन तथा विचार परिवर्तन के आधार पर शान्तिमय क्रान्ति का सूचक है।'' डॉ. सिंह ग्रामदान का एक अन्य अर्थ करते हुए कहते हैं, ''ग्रामदान राज्यमुक्त अहिंसक समाज की स्थापना की प्रथम इकाई है तथा नये समाज के संगठन का नवीन विचार है, जिसमें शासन व्यवस्था की पूर्ण इकाई तथा नये समाज के संगठन का नवीन विचार है, जिसमें शासन व्यवस्था की पूर्ण इकाई ग्राम को माना गया है।''

ग्रामदान आन्दोलन का सूत्रपात भूदान आन्दोलन के दौरान ही सन् 1952 में उत्तरप्रदेश के मानग्रोथ (मंगरोठ) गांव में हुआ। इस आन्दोलन को उड़ीसा में गौरव मिला, जब महात्मा गांधी के बलिदान दिवस 30 जनवरी 1952 को कटक जिले में ''मानपुर'' गांव को पहले ग्रामदानी का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मानपुर गांव के दान होते ही ग्रामदान आन्दोलन भूदान आन्दोलन के रास्ते पर पूरे उत्साह के साथ बढ़ चला।

4.3.1 ग्रामदान दर्शन एवं उद्देश्य

1. सहयोगशील एवं सन्तुलित समाज निर्माण - विनोबा का विचार था कि आज विश्व के सामने एक मुख्य सवाल यह है कि समाज-रचना और राष्ट्र के संरक्षण का आधार क्या हो? इन दोनों सवालों का हल ग्रामदान में है। ग्रामदान का दर्शन ही सहयोग पर आधारित है, इसलिए यह समाज रचना का आधार सहयोग को बनाना चाहता है। ग्रामदान प्रतिस्पर्धा को नकारता है, उसे तिलांजलि देता है, क्योंकि अब तक की समाज-रचना प्रतिस्पर्धा के सिद्धान्त पर आधारित रही है। एक की दूसरे से स्पर्धा होती रही है और उसमें जो मनुष्य अधिक बुद्धिमान, चतुर और शक्तिशाली हुआ, उसकी जीत होती रही है। उसी ने प्रगति भी की है। यह प्रतिस्पर्धा व्यक्ति से प्रारम्भ होकर समाज, राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों तक जाती है, जो सामाजिक तनाव, हिंसा और अनेक राष्ट्र के बीच वैमनस्यपूर्ण युद्ध को निमन्त्रण देता है। यही स्पर्धा समाज में असन्तुलन बढ़ाती है, समाज के विभिन्न घटक आपस में संघर्षरत होकर समाज को अव्यवस्थित और असन्तुलित कर देते हैं। चूंकि ग्रामदान व्यक्ति और समाज के सहयोग भावना की पूर्णता है, इसलिए विनोबा ने सहयोगशील और सन्तुलित समाज निर्माण के उद्देश्य से ग्रामदान आन्दोलन चलाया।

आचार्य विनोबा के ग्रामदान का आधार साम्य-योग दर्शन को मानते हैं। इसलिए यहां यह भी लगता है कि विनोबा ने इस साम्ययोग दर्शन से (ग्रामदान के द्वारा) समाज में सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक तथा मानव व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

बीच संतुलन कायम करने का निर्णय लिया हो। क्योंकि इन क्षेत्रों में सन्तुलन और वैषम्य मिटाने पर ही व्यक्ति आदर्शोन्मुख होता है और समाज आदर्श समाज की ओर बढ़ता है। इसलिए ग्रामदान के द्वारा समाज के विभिन्न प्रकार की शक्तियों के बीच सन्तुलन स्थापित किया जाता है। व्यक्ति समाज के लिए (सम्पूर्ण गांव के लिए) अपने को अर्पित करता है और समाज (गांव का संगठन यानी ग्राम सभा) व्यक्ति को संरक्षण तथा विकास का सुअवसर प्रदान करता है। इस प्रकार व्यक्ति और समाज के बीच सन्तुलन कायम कर सन्तुलित समाज निर्माण में ग्रामदान सक्षम सिद्ध होता है।

2. सामाजिक मूल्यों और विचारों में परिवर्तन – ग्रामदान का मुख्य उद्देश्य समाज में मुख्य-परिवर्तन के द्वारा क्रान्ति लाना है। ग्रामदान समाज परिवर्तन के अपने उद्देश्य को पूरा करने में व्यक्ति के तत्कालिक सुखों की चिंता नहीं करता। इसका लक्ष्य है व्यक्ति को शाश्वत सुख की उपलब्धि कराना। व्यक्ति को शाश्वत सुख की उपलब्धि सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन से ही हो सकती है। व्यक्ति के हृदय परिवर्तन से यह परिवर्तन होता है और इस प्रकार के परिवर्तन की शक्ति ग्राम में निहित है। विनोबा कहते हैं, ''किसी भी प्रकार के परिवर्तन को क्रान्ति नहीं कही जा सकती। क्रान्ति में जो बुनियादी या मूलभूत फर्क होना चाहिए वह है उसमें मूल्य बदलने चाहिए। मूल्य का बदलाव होता है, वह शान्तिमय ही होता है, विचार से ही होता है। मार-पीटकर, आग लगाकर या धमका कर जो परिवर्तन किया जायेगा वह विचार परिवर्तन न होगा। चाहे वह बड़ा बदलाव हो तो भी वह क्रान्ति न होगा।'' ग्रामदान इसी अर्थ में सामाजिक परिवर्तन लाना चाहता है और ग्रामदान स्वयं व्यक्ति के भीतरी परिवर्तन का विचार है, इसलिए वह मूल्यपरक विचार भी है।

3. समाज में नैतिकता की प्रतिस्थापना – विनोबा ग्रामदान के द्वारा समाज में नैतिक मूल्यों की स्थापना करना चाहते हैं। ये नैतिक मूल्य व्यक्ति का प्रेम, त्याग तथा सेवा-भावना ही है। ग्रामदान व्यक्ति में त्याग की प्रेरणा जगाता है तथा उसे सारे समाज से हृदय परिवर्तन के द्वारा प्रेममय सम्बन्ध स्थापित करने को जागृत करता है, जिसके फलस्वरूप उसमें दान की प्रवृत्ति जगती है। ग्रामदान से व्यक्ति का हृदय सदा के लिए परिवर्तित कर दिया जाता है। विनोबा तो नैतिक विचारों की उपस्थिति के लिए परिग्रह के त्याग को ही प्रमुखता देते हैं।

4. सांसारिक और आध्यात्मिक मुक्ति का विचार – ग्रामदान का उद्देश्य व्यक्ति को मुक्ति दिलाना तो अवश्य है, लेकिन इसकी मुक्ति तथाकथित साधुओं-सन्यासियों की मुक्ति से अलग है। ग्रामदान की मुक्ति का विचार विनोबा के जीवन से सम्बन्धित है। विनोबा के अनुसार ''व्यक्ति द्वारा मुक्ति के लिए इतना ही आवश्यक है कि ''मैं'' का त्याग कर दे। व्यक्ति ''मेरा'' की भावना से मुक्त को जाए। विनोबा मुक्ति पाने के लिए पहाड़ की गुफाओं में योगासन करने के विचार को गलत मानते हैं, उसे पलायनवादी कहते हैं, ऐसी मुक्ति में तो हिंसा है।'' ग्रामदान के द्वारा विनोबा का उद्देश्य जहां एक व्यक्ति को आध्यात्मिक मुक्ति दिलाना था, वहीं दूसरी ओर सांसारिक मुक्ति भी दिलाना था। ग्रामदान के द्वारा जब ग्रामसभा गठित कर ग्राम से सम्बन्धित सारे राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, न्यायिक, शैक्षिक कार्यों का सम्पादन ग्रामवासी स्वत: करने लगते हैं, तो उन्हें सरकार के दमन तंत्र, पूंजी के शोषण और बंदूक के दमन तीनों से मुक्ति मिल जाती है। दमन की उक्त प्रक्रिया से क्रमश: पंचायत स्तर, प्रखण्ड-स्तर, जिला-स्तर, राज्य, राष्ट्र तथा विश्व-स्तर तक की संरचना को मुक्ति मिल जाती है, क्योंकि ग्राम-सभा बढ़ते-बढ़ते विश्व-सभा का रूप ले लेता है। ऐसी सभाओं में वास्तविक लोकशक्ति का निर्माण होता है, जिससे जनता गलत राजनीतिक और गलत अर्थनीति से छुटकारा पाती है। वास्तविक लोकनीति और लोकशक्ति के निर्माण से शासन मुक्त और शोषण मुक्त समाज की स्थापना होती है।

5. ग्राम स्वराज्य का द्योतक – ग्रामदान पर जब हम राजनीतिक दृष्टि से विचार करते हैं तो यह ग्राम स्वराज्य की स्थापना करता हुआ प्रतीत होता है। ग्राम स्वराज्य के बुनियादी सिद्धान्त है- मानव जीवन एवं मानवता की सर्वोच्च, सर्व-कल्याणकारी पद्धति, समानता, स्वावलम्बन एवं सहयोग, सत्याग्रह और न्याय निष्ठा और नई तालीम। ग्रामदान में ग्राम स्वराज्य के उक्त सारे तत्त्व मौजूद है, इसीलिए विनोबा ने भूदान-ग्रामदान जैसे कार्यक्रमों के द्वारा गांधी परिकल्पित ग्राम स्वराज्य के सपनों को साकार करना चाहा था। ग्रामदान के द्वारा जिस समाज व्यवस्था की रचना होती है, उसमें मानवता का स्थान सबसे ऊंचा रहता है, वह मानवतावादी समाज होता है, वहां सेवा और धन का स्थान मानव जीवन के बाद में आता है। ग्रामदानी ग्राम में ग्रामसभा गठित कर गांव के सभी काम स्वयं और सहयोग से कर लिया जाता है। ग्रामदान से प्रत्येक व्यक्ति आर्थिक उत्पादन में भाग लेता है और धन के उत्पादन में साझेदारी के साथ उसकी वास्तविक साझेदारी गांव की प्रशासनिक, सामाजिक और शैक्षणिक व्यवस्था में होती है। प्रजातंत्र का सार भी यही है। कितने अनोखे ढंग से ग्रामीण व्यवस्था के लिए सहयोग करते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी जमीन का बीसवां हिस्सा, अपनी नौकरी की आमदनी का तीसवां हिस्सा गांव के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

विकास के लिए ग्राम–कोष में डालते हैं। इन सारे प्रबन्धों की जिम्मेवारी ग्राम–सभा लेती है, जिससे गांव के सभी बालिग स्त्री–पुरूष सदस्य रहते हैं। ग्राम–सभा की विधि–व्यवस्था, प्रशासन व्यवस्था में भाग लेना गांव के प्रत्येक व्यक्ति और राष्ट्र के लिए बहुत ही महत्त्व की बात है। ऐसा होना भी लोकतांत्रिक शासन–व्यवस्था के लिए आवश्यक है। लोकतंत्र में इन शर्तो का पालन ग्रामदान के द्वारा होता है। ग्राम–स्वराज्य का बुनियादी सिद्धान्त सत्याग्रह और न्याय–निष्ठा तो ग्रामसभा का मेरुदण्ड ही है।

6. विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था एवं वर्ग निराकरण का द्योतक – विनोबा का विचार था कि अगर देश की बेकारी की समस्या तथा संघर्ष से मुक्ति पाना चाहते हैं, तो वस्तुओं के केन्द्रित उत्पादन का बहिष्कार और ग्रामोद्योग की स्थापना का आन्दोलन चलाना होगा। इसमें विनोबा अन्य गांधीवादी विचारक की तरह ही तर्क देते थे कि समाज के दो वर्ग ''अमीर'' और ''गरीब'' संपत्ति के असमान वितरण के कारण ही हुए हैं और संपत्ति का असमान वितरण संपत्ति के केन्द्रित उत्पादन से ही हुआ। संपत्ति का विकेन्द्रित उत्पादन ग्रामदान की व्यवस्था के द्वारा ग्रामोद्योग के माध्यम से आसानी से सम्पन्न होता है। विनोबा के विचार में भूदान, ग्रामदान यज्ञ और ग्रामोद्योग ''सीता–राम'' जैसे अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। विनोबा तो उद्योग के विकेन्द्रिकरण पर बल देते हुए इतना तक कह देते हैं कि ''आज जो केन्द्रीय उत्पादन के तरीके हैं, उनको बदलकर औद्योगिक विकेन्द्रीकरण नहीं करेंगे तो जो कुछ आजादी मिली है, उसे भी हम खो देगे। सच पूछिये तो यह हमारी आजादी को खतरा है।''

विनोबा के अनुसार संपत्ति और वर्ग निराकरण के हमें यह देखना होगा कि संपत्ति और वर्ग का अधिष्ठान क्या है, इसका आधार क्या है? और वे इसका आधार स्वामित्व की भावना को मानते हैं। ग्रामदान में हृदय परिवर्तन के द्वारा ''भूमि'', ''श्रम'' और ''संपत्ति'' तीनों के दान से सभी प्रकार के स्वामित्व का त्याग कर दिया जाता है, जिससे वर्ग निराकरण स्वत: ही हो जाता है। विनोबा कहते हैं ''मनुष्य के हिंसक संघर्ष का एक कारण यह भी है कि आज भूमि, श्रम और संपत्ति बाजार की चीजें बन गयी है। ग्रामदान के द्वारा इन तीनों को हम बाजार से उठा लेना चाहते हैं और समाजवाद की स्थापना करना चाहते हैं व सर्वोदय आंदोलन इस हेतु निर्देशक के तत्त्व का कार्य कर सकती है।''

सर्वोदय आन्दोलन के दौरान अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय, अक्षोभ चिंतन, पंच–शक्ति सहयोग, गण–सेवकत्व, गुण–दर्शन, विश्वास शक्ति, आदि कई मूल्यवान विचार विनोबा ने समाज के सामने रखे। मानव जाति के विकास के लिए और सर्वोदयी समाज रचना के लिए, ये सब बातें अत्यन्त महत्त्व की है। मानों मानव के भावी विकास की एक स्पष्ट रेखा ही विनोबा ने खींच दी। विनोबा ने कहा कि, ''सर्वोदयी क्रान्ति की प्रक्रिया लोकशिक्षण की है। जनता को शिक्षित करते–करते शक्ति संगठित करनी पड़ेगी। हिंसक क्रान्ति सिर उड़ा देने से होती है और अहिंसक क्रान्ति सिर बदलने में होती है। यह काम लोक–शिक्षण से ही किया जा सकता है। मनुष्य को शिक्षित करके उसके मानवीय गुणों को जगाना है, और उसके द्वारा क्रान्ति करनी है।''

विनोबा ने बीस साल तक लगातार एक दक्ष सेनापति की तरह बड़ी कुशलता से इस देशव्यापी आन्दोलन का संचालन किया। ग्रामदान का तूफानी अभियान ''मास–सायकोलॉजी'' की सूक्ष्म सूझ–बूझ के साथ किया गया। विनोबा को सर्वोदय के लिए लोकसम्मति प्राप्त करनी थी और ग्रामदान के कार्यक्रम की क्रान्तिकारी संभावना प्रकट करनी थी। व्यूह–रचना यह अपनायी गई थी कि एक बार बहुत बड़े पैमाने पर ग्रामदान के संकल्प करवा लिये जायें और फिर एक साथ बड़े पैमाने पर उसे असली रूप दिया जाय। ग्राम स्वराज्य आन्दोलन का यह पहला चरण 1969 में पूरा हुआ तब राजगिरि सर्वोदय सम्मेलन में विनोबा ने आन्दोलन के दूसरे चरण की व्यूह–रचना पेश की, ''तूफान तो हो चुका अब अति–तूफान की आवश्यकता है। काम को तीव्र गति से ही करना होगा। एक साल के अन्दर ग्रामदानों की शर्तों का व्यावहारिक पालन करवा लेना है। ... अब तक हम लगभग मूल एकाग्रता के साथ एक कार्यक्रम के पीछे लगे रहे। इतनी अधिक एकाग्रता कि कोई उसे दोष भी मान लें। लेकिन अब हमें इस आंदोलन में दो–चार चीजें और जोड़ लेनी चाहिए। वे हैं शहर की नगरपालिका को पक्ष मुक्त बनाना। वहां पक्षों की राजनीति का प्रवेश न हो। शहर के हर एक मुहल्ले में शान्ति सेना का स्थापना करना। मजदूरों के बीच जाकर उन्हें समझाना कि वे अपने मजदूर संघ को किसी भी राजनीति पक्ष के साथ न जोड़े। नहीं तो यूनियन का हित तो एक ओर रह जायेगा और राजनीति हित ही अपना पक्ष साधेगा। शहरों की मिलों, कारखानों, व्यापारियों और उद्योगपत्तियों द्वारा थोड़ा दान देना ही काफी नहीं है। हमें कोशिश यह करनी चाहिए कि वे सब समाज की भागीदारी के विचार को मान लें। हम अपनी तरफ से उनके सामने ऐसी मांग रखें और ऐसी शक्ति खड़ी करें कि मांग पेश होने के बाद वे उसे नामूंजर न कर सकें।... गांव–गांव में अपना सम्पर्क बढ़ाकर गांवों की शक्ति खड़ी करनी होगा। काम तभी बनेगा, जब गांव के लोग आपस में मिलकर गांव का काम सर्वानुमति से करने लगेंगे। फिर चुनाव में लोगों के उम्मीदवार खड़े किये जा सकेंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इस तरह हम सरकार और सरकार के प्लानिंग का रंग बदल सकेंगे।'' विनोबा के मन में ग्राम स्वराज्य के अपने प्रयोग को ऐसी पूर्णता तक पहुंचाने की कल्पना थी। बड़ी दूरगामी दृष्टि के साथ वह प्रयोग उन्होंने चलाया था लेकिन दुर्भाग्य से सर्वोदय आन्दोलन (ग्राम स्वराज्य आन्दोलन) का दूसरा चरण क्रियान्वित नहीं हो सका और विनोबा का प्रयोग अधूरा ही छूट गया। बादशाह खान अब्दुल ताफ्फार खान (सीमांत गांधी) से मिलने विनोबा सेवाग्राम आये तो बिहार का मोर्चा छूट गया और बाद में कई कारणों से वापस बिहार नहीं आ सके। जयप्रकाश मुसहरी (मुज्जफ्फरपुर) में डटे थे, इतने में बंगला देश की घटनाओं के कारण वे भी मुसहरी का मोर्चा छोड़कर अन्य कामों में उलझ गये। बिनोबा कहते रहे बिहार में इतना सारा जो काम हुआ अगर वह मात्र कागजी काम साबित हुआ तो फिर भगवान ही आपको बचाये। लेकिन हुआ वही, प्रयोग अधूरा ही छूट गया और उसका बहुत बुरा असर कार्यकर्त्ता और जनता के मानस पर पड़ा। ऐसा लगा कि अब तक जो किया करवाया था सब व्यर्थ गया। इससे श्रद्धा और शक्ति क्षीण हुई। तात्कालीन समस्याओं का दबाव कार्यकत्ताओं के चित्त पर पड़ता गया। ऐसे वातावरण में विनोबा और ''सर्व सेवा संघ'' के अगुओं के बीच सामूहिक विचार विमर्श होकर सारी स्थिति का तलस्पर्शी मूल्यांकन करके सर्वोदय आन्दोलन की व्यूह-रचना नये सिरे से तैयार करनी चाहिए थी, लेकिन ऐसा नहीं हो सका। इस दृष्टि से आन्दोलन का नेतृत्व और संगठन विफल सिद्ध हुआ।

4.4 सम्पूर्ण क्रान्ति

व्यक्ति स्वातंत्र्य की भावना मानव-मन की एक मूल वृत्ति है। भारत के सन्दर्भ में पुनरूत्थान के आन्दोलन से लेकर लोकमान्य तिलक तक स्वतंत्रता की भावना जन-मानस में बैठ चुकी थी, यह महात्मा गांधी की मौलिक देन नहीं थी। उनका मूल उद्देश्य सत्य और अहिंसा पर आधारित सर्वोदय समाज की क्रान्तिकारी कल्पना को जन आकांक्षा बनाना और सत्याग्रह के प्रयोगों की सिद्धि थी, किन्तु जनता को तो उनसे आजादी की अपेक्षा थी। प्रतिनिधित्व करने वाले जन-संगठन कांग्रेस के अधिकांश कार्यकर्त्ता भी बापू की इस क्रान्तिकारी कल्पना से अछूते रहे। बापू को इसी जनता और इन्हीं कार्यकर्त्ताओं तथा इसी संगठन से काम लेना था। उन्हें आशा थी कि स्वतंत्रता के बाद उसके ये तथाकथित अनुयायी उनकी समूची परिकल्पना को अपना लेंगे, किन्तु सत्ता पर आने के बाद सत्ताधारियों ने उनकी और उनके सपनों की नितांत उपेक्षा की और समाज लगभग उन्हीं ढाचों, मूल्यों एवं पद्धति में फंसा रह गया, जो कि आजादी के पूर्व थी। यहां तक कि बापू के भागीरथ प्रयत्न में सामाजिक जीवन के अनेक क्षेत्रों में परिवर्तन की जो धाराएं फूट पड़ी थी, वे भी कुण्ठित हो गयी। कांग्रेज कार्यकर्ताओं और जन-सामान्य प्राप्ति में सफल हो गये, लेकिन बापू ने स्वतन्त्रता प्राप्ति को भी अपने आन्दोलन की पूर्णहुति नहीं माना, बल्कि उन्होंने तो कहा, ''हमारा काम पूर्ण नहीं हुआ है, हमारा असली काम तो स्वतन्त्रता के बाद शुरू हुआ है।'' अपने काम की पूर्णता के लिए ही उन्होंने कांग्रेस को ''लोक सेवक संघ'' के रूप में भारत के लाखों गांवों में बिखर जाने को कहा। परन्तु गांधी जी के इस विचार की अवहेलना की गयी, जिसका परिणाम सामने है। जनशक्ति दिनो-दिन कुंठित होती गयी। लोकतंत्र तो चलता रहा, परन्तु ''लोक'' लुप्त हो गया और ''तंत्र'' अपना दानवाकार रूप धारण कर जनता के सारे अधिकारों, इच्छा और आकांक्षाओं को लीलता चला गया। लोकनायक जयप्रकाश को ''तंत्र'' के इस दानवी कुकृत्य ने कुछ सोचने के लिए विवश कर दिया। फलतः सम्पूर्ण क्रान्ति का विचार सामने आया।

जयप्रकाशजी ने देखा हमें आजादी तो मिल गयी, लेकिन सामाजिक एवं राजनीतिक ढांचा तो पूर्ववत् बना रह गया, जनता अब भी विदेशी शोषकों के बजाय देशी शोषकों के द्वारा शोषित हो रही है। कानूनन जमीन्दारी प्रथा उठा दी गई है, भूमि सुधार के कानून भी पारित किये जा चुके हैं, अस्पृश्यता पर कानूनी रोक लग गयी है, साथ ही कुछ कानून व्यवहार में भी लाये गये हैं, परन्तु देश के अधिकांश भागों में गांव पर अब भी ऊँची जातियों का, बड़े और मंझोले भूमिपतियों का कब्जा है। भूमिपति भूमिहीनों का शोषण करते हैं। भारत के विकास के नाम पर मात्र 20 प्रतिशत लोग सुखी-सम्पन्न हुए हैं और वे ही 20 प्रतिशत लोग सारे विकास योजनाओं को अपनी झोली में समेटते जा रहे हैं। जे. पी. कहते हैं, ''देश में अगर कोई व्यवस्था है, तो वह इन्हीं 20 प्रतिशत सम्पन्न लोगों मंत्री, उद्योगपतियों, प्राध्यापकों, डॉक्टरों, इन्जिनियरों तथा उच्च पदाधिकारियों से बनी हुई है और संचालित भी होती है।'' स्वाभाविक है कि ऐसे तत्त्वों द्वारा बनायी गयी व्यवस्था ऐसे ही तत्त्वों के पक्ष में होगी। ऐसे सम्पन्न लोगों द्वारा निमित्त की गयी व्यवस्था का दर्शन यह है कि सम्पन्न लोगों के पास जितनी अधिक सुविधाएं प्राप्त है, उससे और अधिक सुविधाएं उन्हें प्राप्त हो और वे और भी ऊँचा उठ सकें। सारी राजनीतिक अधिकार, सारी शिक्षा, सारे विशेषाधिकार इसी छोटे शीर्षस्थ तबके (20 प्रतिशत समृद्धशाली लोगों) तक सीमित है। जयप्रकाश जी ने यह भी देखा कि पँचवर्षीय योजनाओं में अरबों रूपये खर्च करने के बाद भी भारत की गरीबी और बेरोजगारी बढ़ती जा रही है, इसलिए अब प्रचलित अर्थनीति को छोड़कर गांधी जी की अर्थनीति का अवलम्बन करना होगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इसके साथ ही विभिन्न प्रकार की सामाजिक बुराइयों ने भी भारतीय समाज को अस्त-व्यस्त कर रखा था। जे.पी. तिलक दहेज-प्रथा तथा जात-पांत को समाज का कोढ़ मानते थे। गरीब लड़कियों के मां-बाप की स्थिति, हरिजन तथा आदिवासियों की दयनीय स्थिति देखकर उनका हृदय रो पड़ता। ऐसी भयानक परिस्थिति में जे.पी. का विचार था कि साधन सम्पन्न तथा विलासिता प्रिय लोगों को अपनी आवश्यकताएं घटानी चाहिए, जिन्दगी को विलासमय बनने-बनाने से रोकना चाहिए। जे. पी. के इस विचार के विपरित वे समृद्धशाली तथा सत्ताधारी वर्ग अपनी विलासमय जिन्दगी को और ही विलासितापूर्ण बनाता रहा। ''विकास और प्रगति'' वाली पश्चिम की पुरानी कल्पनाओं पर मोहित होता चला गया। यही कारण है कि हमारी योजना तथा विकास के सारे कार्यक्रम समस्याओं को सुलझाने के बजाय उसे उलझाते जा रहे हैं, पेचीदा बनाते जा रहे हैं। सादगी तथा भौतिक आवश्कताओं पर स्वैच्छिक नियंत्रण गांधी जी के जीवन-दर्शन का मुख्य सन्देश रहा है, परन्तु इस देश के राजनीतिक व बौद्धिक वर्ग ने इस आदर्श को अभी तक स्वीकार नहीं किया है। इसका मूल्य अभी भी उसके मन में स्थापित नहीं हुआ है। गांधीजी का एक मार्मिक कथन है कि ''मनुष्य की जरूरतों को पूरा कर सकने की भरपूर साधन साम्रगी इस दुनिया में है, परन्तु उसकी लोभ-लालसा को सन्तुष्ट करने की नहीं।'' कथन के मर्म को समझना और देश की योजना तथा विकास में उसे केन्द्रिय स्थान देना अभी बाकी है।

लोकनायक जयप्रकाश के विचार में आजादी के बाद जिस लोकतांत्रिक पद्धति को अपनाया गया, सचमुच वह पूर्णता को प्राप्त नहीं हो सका। देश की राजनीति तो दूषित हो ही गयी, आर्थिक स्थिति भी शोचनीय हुई है। इस बुराई को कानून से दूर करने की कोशिशें भी की गयी, परन्तु कानून निष्प्राण ही सिद्ध हुआ है। शिक्षा-व्यवस्था भी बुनियादी रूप से वहीं रह गयी है, जो अंग्रेजी शासन में थी। ऐसी बात नहीं कि शिक्षा-व्यवस्था में सुधार के लिए किसी तरह का विचार-विमर्श नहीं हुआ, आयोगों और गोष्ठियां का आयोजन नहीं हुआ। यह सब कुछ हुआ, सैकड़ों गोष्ठियों आयोजित की गई, कई आयोग नियुक्त किये गये, फिर भी शिक्षा न तो भारतवासियों के चरित्र के निर्माण में सफल हो सकी, और न ही इसके पेट भरने में सहायक हो सकी।

जयप्रकाश जी ने सन् 1954 से 1974 तक लगभग बीस सालों तक सर्वोदय आन्दोलन में अपना निष्ठापूर्वक योगदान दिया।[5] अनेकों युवा कार्यकताओं ने जे. पी. के साथ सर्वोदय कार्य में हिस्सा लिया। सोखेदेवरा में जे. पी. आश्रमीय जीवन व्यतीत करने लगे। समय-समय पर वे मुसहरी जैसे प्रखण्डों में हिंसाचार करने वाले नक्सलवादियों के आमने-सामने खड़े हुए। परन्तु धीरे-धीरे विनोबा के विचारों से जयप्रकाश जी के मतभेद होने शुरू हो गये। शुरू-शुरू में जब जमींदारों के अत्याचारों के खिलाफ सत्याग्रह करने की युवा कार्यकर्ताओं ने विनोबा जी से अनुमति मांगी, तब वैसी अनुमति नहीं मिली। कई जगहों पर जमींदारों के द्वारा किसानों की अपनी जमीन पर से बेदखली हुई तो सर्वोदय में काम करने वाले युवा कार्यकर्ताओं का खून गर्म हुआ। अन्याय को देखकर संतप्त होने वाले इन युवकों को क्या मार्गदर्शन किया जाय, इस पर जयप्रकाश जी गंभीरतापूर्वक विचार करने लगे।

गुजरात और बिहार में विद्यार्थियों ने भ्रष्टाचार के विरूद्ध आन्दोलन शुरू किया। शासन कर्ताओं द्वारा छात्र-आन्दोलन के विरूद्ध दमन चक्र चलने लगा। संविधान में दिये नागरिकों के मौलिक स्वतन्त्रता के अधिकारों पर अतिक्रमण होने लगा। छात्रों की प्रार्थना पर जयप्रकाश जी ने उनके आन्दोलन का नेतृत्व सशर्त स्वीकार किया। शर्त यही थी कि आन्दोलन शान्तिमय और अहिंसात्मक तरीके से चलना चाहिए। ''हमला चाहे जैसा होगा, हाथ हमारा नहीं उठेगा।'' ऐसी घोषणा छात्रों ने की। सन् 1974 में इसी छात्र आन्दोलन के क्रम में जे. पी. ने पटना के गांधी मैदान में ''सम्पूर्ण क्रान्ति'' की घोषणा की। देश भर में इमरजेन्सी लागू की गई। हजारों लाखों कार्यकर्ता अपने लोकतांत्रिक अधिकारों की रक्षा के लिए ''सत्याग्रह'' करके जेल गये। यह सम्पूर्ण क्रान्ति लोकशक्ति जगाने का प्रयोग था, युवाशक्ति को राष्ट्र के नवनिर्माण में लगाने का प्रयोग था, सर्वोदय आन्दोलन के तन्तु को आगे बढ़ाने का प्रयोग था, लोकतंत्र की नींव को मजबूत बनाने का प्रयोग था। भ्रष्टाचार के खिलाफ भी आवाज उठी। जयप्रकाश जी ने देखा विदेश में भारी अशान्ति है, लोग बेहद परेशान हैं, इस अर्थ में देश में एक क्रान्तिकारी परिस्थिति का निर्माण हो रहा है। बिहार के आन्दोलन ने उन्हें अपने चिंतन का प्रायोगिक रूप देने का मौका दिया। स्वयं जे. पी. ने कहा, ''छात्र आन्दोलन ने मुझे यह अवसर दिया कि मैं जिसे क्रान्ति के लिए शन्तिपूर्ण जन आन्दोलन में परिवर्तित कर सकूं।'' इस तरह जे. पी. ने उस आन्दोलन के साथ सम्पूर्ण क्रान्ति का एक बहुत दूर का सपना जोड़ दिया। वे छात्रों एवं जनता को लगातार समझाते रहे कि यह संघर्ष केवल सीमित उद्देश्यों के लिए नहीं रहा है। इसके उद्देश्य तो बहुत दूरगामी हैं। इसमें पूरे जीवन को बदलने की बात है, एक नये समाज की रचना करने की बात है, व्यक्ति और समाज के हर एक पहलू को बदलने की बात है। इस आन्दोलन ने हमें सुनहरा अवसर दिया है कि हम जन-जीवन में इस आन्दोलन को फैलाकर देश का नैतिक वातावरण ऊँचा ला सकें और एक नैतिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक क्रान्ति हो।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

लोकनायक जयप्रकाश यह भी कहते रहे कि भारतीय लोकतंत्र को ''रियल'' याने वास्तविक तथा सुदृढ़ बनाना, जनता का सच्चा राज कायम करना यह भी इस आन्दोलन का उद्देश्य है। हमें ''कैप्चर ऑफ पॉवर'' सत्ता हाथ में लेने या कब्जा करने में कोई रस नहीं है, ''कन्ट्रोल ऑफ पॉवर'' सत्ता पर अंकुश रखने में रस है, ''एण्ड दैट टू बाइ पीपुल'' और वह भी लोगों के द्वारा। राज्य शक्ति पर जन-शक्ति का अंकुश होना चाहिए। जे. पी. बार-बार यह शब्द स्पष्ट करते रहे कि सत्ता की गद्दी पर कौन बैठा है, यह बात मेरे मन में महत्त्वपूर्ण नहीं है, परन्तु सत्ता का उपयोग कैसे हो रहा है, यह बात अवश्य मेरे मन में महत्त्व की है। सत्ता का उपयोग जनता के सहयोग से हो रहा है, जनता के हित में हो रहा है, या जनता की अवहेलना करके जनता के विरूद्ध हो रहा है, यह देखना अवश्य महत्त्वपूर्ण है। एक सरकार जायेगी और दूसरी सरकार आयेगी, इतने से कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं होगा। इसलिए हमारे सामने चुनौती तो यह है कि जनता को जागृत करें, किन्तु दुर्भाग्यवश सत्ताधारियों ने इस आन्दोलन को अपने खिलाफ चुनौती मान लिया और इसे दबाने के लिए उन्होंने सब तरह के प्रयत्न किये। देश में आपालकाल की घोषणा कर दी गई। लोकतंत्र पर प्रहार हुआ। जे.पी. के आन्दोलन के लिए बड़ा विघ्न खड़ा हो गया। लोकशक्ति जगाने का उनका प्रयोग मंझधार में ही अटक गया। जे.पी. भी आखिर बार-बार कहते रहे, ''मेरे मूल उद्देश्य में कोई अन्तर नहीं आया है। ... पिछले दस पन्द्रह सालों में नयी समाज व्यवस्था के स्वरूप के बारे में मैंने जो विचार व्यक्त किये हैं, वे आज भी उतने ही सच हैं। मोटे तौर पर गांधी द्वारा निर्देशित ढांचा ही है। सम्पूर्ण क्रान्ति सर्वोदय से अलग भी नहीं हैं। शायद पद्धति में थोड़ा अन्तरहो। संक्षेप में ''हिन्द-स्वराज्य'', ग्राम स्वराज्य'', ''सम्पूर्ण क्रान्ति'' तीनों का भावार्थ एक ही है, केवल शब्द अलग-अलग है। सर्वोदय शब्द द्वारा यही सूचित होता है। ''लोकतंत्र समाजवाद'' जयप्रकाशजी की जीवन निष्ठा थी। विनोबा जी ने नेतृत्व में चले भूदान आन्दोलन के सर्वोदयी मार्ग से समाजवाद इस देश में आयेगा, उन्हें ऐसी आशा थी, परन्तु पूरे भारत की बात तो दूर रही, विनोबा जी की घोर प्रतिज्ञा के अनुसार कम से कम बिहार के भूमिहीनों की समस्या का समाधान भी नहीं निकला और लोकतंत्र का भी जब आपालकाल में गला घोंटा गया तो विनोबा जी ने नेतृत्व में जयप्रकाश जी को पूरी निराशा हुई और उन्होंने कहा, ''सर्वोदय आन्दोलन के नेतृत्व के लिए हमें फिर गांधी जी के पास जाना होगा।'' आपालकाल के लिए विनोबा जी ने ''अनुशासन पर्व'' ऐसे शब्दों का प्रयोग किया। उसका कुछ स्पष्टीकरण भी उन्होंने नहीं दिया। वे मौन रहे। इसका फायदा शासनकर्त्ताओं ने उठाया। विनोबा जी के ऐसे रवैये से सर्वोदय में शामिल हुए युवा कार्यकर्ताओं का मोह तेजी से भंग हो गया। विनोबा जी के नेतृत्व के बारे में आशा भंग हो गयी। विनोबा जी को ''सरकारी संत'' के नाम से पुकारा गया। साल भर के मौन की समाप्ति के अवसर पर विनोबा जी ने ''अनुशासन पर्व'' का स्पष्टीकरण दिया, परन्तु तब तक सर्वोदय आन्दोलन की जो हानि हो चुकी थी, उसकी क्षतिपूर्ति नहीं हो सकती थी।

''सम्पूर्ण क्रान्ति'' जैसा कि सम्पूर्ण शब्द से विदित होता है, यह समाज के सभी अंगों में पूर्णत: परिवर्तन चाहता है, इसलिए अगर हम सम्पूर्ण क्रान्ति का अर्थ सत्ता हथियाने की लड़ाई या गद्दी छीनने की एक साजिश से लगाते हैं तो वह हमारा भ्रम ही कहा जायेगा। सम्पूर्ण क्रान्ति तो व्यवस्था परिवर्तन चाहता है। साथ ही समाज संचालन की सारी गली-सड़ी तथा अक्षम प्रक्रियाओं को बदल कर समाज का नव-निर्माण चाहता है। जे.पी. ने स्वयं कहा था, ''सम्पूर्ण क्रान्ति का मोर्चा केवल राजधानियों में नहीं है, बल्कि हर गांव और हर शहर में है, हर कार्यालय, विद्यालय और कारखानें में है, यहां तक की हर परिवार में है। हर मोर्चे पर सम्पूर्ण क्रान्ति की लड़ाई लड़नी है।'' सचमुच जिस संघर्ष में मात्र सत्ता हथियाने की, गद्दी छीनने की बात रहती है, वह सघर्ष मात्र राजधानी तक ही सीमित रह जाता है। सम्पूर्ण क्रान्ति की पहुंच भारत की गली-गली में व्यक्ति-व्यक्ति तक में है। जे.पी. कहते हैं, ''सम्पूर्ण क्रान्ति का मोर्चा प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर भी है, क्योंकि अपने पुराने और गलत संस्कारों से भी हमें लड़ना है।'' फिर व्यक्ति के अच्छे संस्कारों से ही तो अच्छे-बुरे की रचना होती है। लोकनायक ने कहा, ''केवल शासन बदले इतना ही नहीं, व्यक्ति और समाज भी बदले। इसलिए मैंने इसे सम्पूर्ण क्रान्ति कहा है।''

सम्पूर्ण क्रान्ति के उद्देश्य बहुत दूरगामी है। इसमें पूरे जीवन को बदलने की बात है, व्यक्ति और समाज के जीवन के हर एक पहलू को बदलने की बात है, एक नये समाज की रचना करने की बात है। जयप्रकाश जी ने कहा है, ''5 जून 1974 की घटना के गांधी मैदान की विशाल सभा में बोलते हुए सहज ही मेरे मुंह से पहली बार ''संपूर्ण क्रान्ति'' शब्द निकल पड़े थे। उस दिन मैंने कहा था कि यह आन्दोलन छात्र-संघर्ष समिति की मात्र 10-12 मांगों की पूर्ति के लिए नहीं है, यह तो सम्पूर्ण क्रान्ति की शुरूआत है। उसके उद्देश्य बहुत दूरगामी है, भारतीय लोकतंत्र को वास्तविक तथा सुदृढ़ बनाना, जनता का सच्चा राज्य कायम करना, समाज से अन्याय, शोषण आदि का अंत करना, एक नैतिक सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक क्रान्ति करना, नया बिहार बनाना और अन्ततोगत्वा नया भारत बनाना है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4.4.1 सम्पूर्ण क्रान्ति का क्षेत्र

4.4.1.1 सामाजिक क्रान्ति

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि सम्पूर्ण क्रान्ति समाज के हर-एक क्षेत्र में बदलाव लाकर एक नये समाज का निर्माण चाहता है। वर्तमान समाज में कई ऐसी सामाजिक बुराइयाँ शामिल हैं, जिसके कारण स्वस्थ समाज का निर्माण अभी तक नहीं हो सका है, इन सामाजिक बुराइयों में मुख्यत: जाति-प्रथा, छूआ-छूत, ऊँच-नीच का भेदभाव, तिलक -दहेज जैसी कुरीतियों शामिल है। इन सामाजिक बुराइयों को दूर करके जे.पी. सामाजिक परिवर्तन करना चाहते थे।

4.4.1.2 जातिवाद का उन्मूलन

भारतीय समाज व्यवस्था को सन्तुलित ढंग से संचालित करने हेतु ऋषि-मुनियों ने वर्ण-व्यवस्था स्थापित की थी। वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति के विभिन्न पचड़ों में पड़े बिना हमें विद्वानों के इस मान्यता को स्वीकार करने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति का कारण व्यवसाय मूलक विभाजन ही है। इसे सब मानते हैं कि देर-सबेर वर्ण व्यवस्था का आधार-व्यवस्था धारित हो गया। गांधी जी भी यह मानते कि सही वैदिक अर्थ में ''वर्ण-धर्म'' का तात्पर्य है- व्यवसाय मूलक विभाजन पर आधारित सामाजिक संगठन। बापू का कहना है, ''वर्ण-धर्म का अर्थ है कि हर एक को धर्म का, कर्त्तव्य के रूप में अपने पुरखों के आनुवांशिक व्यवसाय का वहां तक निर्वाह करना चाहिए जहां तक वह आधारभूत नैतिकता के विरूद्ध न जाता हो। वह उसी व्यवसाय का पालन पर जीविकोपार्जन करे। वह अत्यधिक धन संग्रह कर अतिरिक्त धन को लोक-कल्याण के लिए अर्पित करेगा।'' दुर्भाग्य से प्रभुता सम्पन्न ब्राह्मण एवं क्षत्रिय उच्च वर्णों ने अपने स्वार्थ के कारण वर्ण-धर्म को बदनाम कर रखा है। हिन्दू समाज संपूर्ण वर्गों (वर्णों) के सोपानात्मक संगठन के कारण अद्य:पतित हो गया है। जाति-भेद इस स्थिति तक पहुंच गया है कि आज प्रत्येक हिन्दू इससे लज्जित हो गया है। जाति भेद के कारण ही अस्पृश्यता जैसी घृणित प्रथा की उत्पत्ति हुई।

गांधीजी की तरह ही जयप्रकाश जी जातीयता को घोर अभिशाप मानते थे। लोकनायक के विचार में जातीयता से उभरनेवाले कुविचारों से समाज का हर क्षेत्र प्रभावित होता है। जाति-व्यवस्था को जीवित रखने और इसे उग्र रूप प्रधान करने हेतु जे.पी. राजनीतिक दलों को यानी राज-नेताओं को जिम्मेदार बतलाते हैं। जे. पी. जातिवाद के विष से इतना आतंकित थे कि वे वर्ग-भेद को मिटाने से जाति-भेद को मिटाना कभी-कभी अधिक महत्त्वपूर्ण मानते थे। इसलिए जातिप्रथा को तोड़कर समाज की इस खतरनाक मानसिकता में बदलाव आवश्यक है।

जातिप्रथा को समाप्त करने के लिए छूआ-छूत को समाप्त करने व जाति-प्रथा को तोड़ने के लिए जे.पी. ने अन्तर्जातीय विवाह करने की भी सलाह दी। उनके विचार में ऐसा हो सकता है कि अन्तर्जातीय विवाह करने वाले युवक-युवतियों के माता-पिता या अभिभावक तथा समाज के अन्य सदस्य विरोध करें, उनके विरोध करने पर युवक-युवतियाँ व्यक्तिगत तौर पर तथा सामूहिक रूप में अन्तर्जातीय विवाह के गुण, इसकी आवश्यकताओं तथा उपादेयताओं को बतलाकर उन्हें समझाये।

सामाजिक कुरीतियों में से तिलक दहेज भी एक मुख्य कुरीति है, जिसे दूर करने के लिए भी जे. पी. ने युवक-युवतियों को प्रेरित किया। जे. पी. ने जहां युवकों को दहेज मांगने वाले मां-पिता के दहेज के मांग का बहिष्कार करने को कहा, वहीं दूसरी और लड़कियों को दहेज मांगने वाले लड़कों से शादी नहीं करने की सलाह दी।

लोकनायक ने समाज की उन खर्चीली और उपद्रय मचाने वाले रस्म-रिवाजों का भी बहिष्कार करने की सलाह दी, जिसमें रूपये तो खर्च होते ही हैं, साथ ही वे किसी-न-किसी रूप में हमारे व्यक्तित्व निर्माण तथा स्वस्थ समाज निर्माण के बाधक तत्त्व का कार्य करती हैं। धनवानों तथा मंत्रियों द्वारा विवाह तथा अन्य उत्सवों के अवसर पर अपने वैभव के दिखावे के लिए लाखों करोड़ों रूपये खर्च कर देना तथा उस खर्च के लिए धन इकट्ठा करने हेतु गलत तरीके के अपनाने की भी जे. पी. घोर निन्दा करते हैं। सम्पूर्ण क्रान्ति को ऐसे सभी अन्ध-विश्वासों, रूढ़ियों, कुरीतियों तक पहुंचना होगा, जिसके चलते कि हमारा समाज बर्बादी के कगार पर खड़ा हो गया है। सम्पूर्ण क्रान्ति का अर्थ ही है- समाज के एक-एक अंग, एक-एक तन्तु को स्पर्श करने वाले क्रान्ति।

4.4.1.3 शैक्षिक क्रान्ति

शिक्षा से मनुष्य का जीवन विशुद्ध, प्रज्ञा-सम्पन्न, परिष्कृत और समुन्नत ही नहीं होता, बल्कि समाज भी सात्विक और नैतिक निर्देशों का पालन करता हुआ सन्मार्ग पर चलकर विकसित होता है। मनुष्य का जीवन शिक्षा और ज्ञान से धर्म-प्रवण, नैतिक मूल्यों से

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

युक्त, उच्च आदर्शों से सम्बन्धित बहुमुखी व्यक्तित्व से युक्त होता है। विद्यार्जन से व्यक्ति आत्म-निर्भरता तो प्राप्त करता ही है, साथ ही परिवार और समाज के निर्माण में भी योग प्रदान करता है। मनुष्य की धार्मिक वृत्तियों का उत्थान, उसके सामाजिक उत्तरदायित्वों का निष्पादन और उसके सांस्कृतिक जीवन का उन्नयन शिक्षा के प्रधान उद्देश्य हैं। शिक्षा के माध्यम से मनुष्य अपने इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति में लगा रहता है। अथर्ववेद में विद्या अथवा शिक्षा के उद्देश्य और उनके परिणाम का उल्लेख किया गया है जिसमें शिक्षा में श्रद्धा, मेधा, प्रज्ञा, धन, आयु और अमृतत्व को सन्निहित किया गया है।

लोकनायक जयप्रकाश ने अपनी सम्पूर्ण क्रान्ति के विचार में शिक्षा की उक्त महत्ता से लोगों को आभास कराया और वर्तमान प्राणहीन शिक्षा पद्धति में परिवर्तन की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने कहा ''मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण तथा समाज का पुनर्निर्माण वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में बिना आमूल-चूल परिवर्तन किये संभव नहीं है।'' हमें वर्तमान परिस्थिति की मांग के अनुसार शिक्षा के स्वरूप का निर्धारण करना होगा। वर्तमान सड़ी हुई व्यर्थ की शिक्षा-पद्धति पहले तो भारत के सभी बच्चों को उपलब्ध नहीं है और जो भी इस पद्धति से विद्या अध्ययन करते हैं, वे न तो मनुष्य ही बन पाते हैं और न पशु ही रहते हैं। प्रचलित शिक्षा पद्धति निश्चय ही मानव-समाज के लिए घातक सिद्ध हो रही है। लोकनायक के अनुसार शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व निर्माण में सहायक सिद्ध हो सके। विशेषकर भारत की शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो व्यक्ति को छोटे-बड़े कारखानों, कार्यालयों के अलावा खेतों में भी भेजे। अर्थात् शिक्षा पद्धति ऐसी हो, जिसके अन्तर्गत विद्यार्थी शिक्षित होकर स्वावलम्बी बने, उसका आत्म विश्वास बढ़े, उसके नैतिक चरित्र में निखार आये।

4.4.1.4 आर्थिक क्रान्ति

समाज के पुनर्निर्माण के लिए जितना महत्त्व सामाजिक क्रान्ति का है, उससे किसी भी मायने में आर्थिक क्रान्ति का महत्त्व कम नहीं है। मानव व्यक्तित्व के निर्माण में आर्थिक परिस्थितियां महत्त्वपूर्ण योगदान देती है।

मानव जीवन के लिए आर्थिक क्रियाओं की अनिवार्यता को लक्ष्य करते हुए गांधी जी ने भी कहा है, ''आज मानवीय क्रिया-कलाप का पूरा सप्तक मिलकर एक अविच्छेद समग्र की रचना करता है, एवं सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं विशुद्ध धार्मिक कार्य को एक-दूसरे से बिल्कुल पृथक नहीं रख सकता।'' जयप्रकाश जी की भी जीवन के प्रति ऐसी ही समन्वित दृष्टि थी, जिसके कारण उन्हें आर्थिक व्यवस्था के बारे में सोचना और कहना पड़ा। उन्होंने गांधी जी की तरह ही कुछ सिद्धान्त बनाये, जिन पर आर्थिक संगठन को आधारित होनी चाहिए।

भारत एक कृषि प्रधान देश है, इसलिए यहां की आर्थिक-व्यवस्था कृषि व्यवस्था के अनुसार ही संचालित होनी चाहिए। कृषि के लिए सबसे आवश्यक तत्त्व भूमि है, इसलिए भारत में आर्थिक क्रान्ति के लिए सर्वप्रथम भूमि से सम्बन्धित क्रान्ति करनी होगी। भूमि-क्रान्ति का अर्थ है- ''भूमि का समान वितरण'' ऐसा नहीं कि किसी के पास सैंकडों के एकड़ भूमि हो, जिसमें से फसल नहीं ऊपजा पाने के कारण बहुत भूमि बंजर पड़ी हुई है और कुछ लोग भूमि नहीं रहने के कारण भूखों मरते हों। जे. पी. ने सम्पूर्ण क्रान्ति के तहत आर्थिक क्रान्ति लाने के लिए सर्वप्रथम भूमि के सम-वितरण पर बल दिया। उन्होंने विनोबा के विचार का अनुसरण किया कि जमीन जोतने वालों की होनी चाहिए, एक व्यक्ति या परिवार के पास उसकी आवश्यकतानुसार ही भूमि रहे, ऐसी व्यवस्था करनी होगी। जयप्रकाश के विचार में भूमि के सम-वितरण के लिए सरकार की ओर से ''सीलिंग कानून'' बना, लेकिन उसका ईमानदारी से पालन नहीं किया गया और न ही करवाया गया, इसलिए उन्होंने भूमि व्यवस्था में सुधार हेतु सीलिंग कानून की ईमानदारी से लागू करने की आवश्कता पर बल दिया। वे भूदान आन्दोलन के द्वारा ही भूमि क्रान्ति करना चाहते थे।

एक प्रबुद्ध गांधीवादी चिन्तक होने के नाते जयप्रकाश ने विनोबा की तरह गांधी जी द्वारा प्रतिपादित ट्रस्टीशिप-सिद्धान्त में आस्था दिखलायी और इसे सम्पूर्ण क्रान्ति में स्थान दिया है। आर्थिक समानता लाने हेतु उन्होंने ट्रस्टीशिप-सिद्धान्त का अनुसरण करने का विचार व्यक्त किया। ट्रस्टी का अर्थ होता है- संरक्षक। इसलिए ट्रस्टीशिप अपने व्यापक अर्थ में मात्र सम्पति को ही त्याग करके उपभोग करने की प्रेरणा नहीं देता है, बल्कि यह सिद्धान्त कहता है कि जो जिसके पास है, वह उसे समाज को समर्पित कर ही उसका उपभोग करे।

4.4.1.5 राजनीतिक क्रान्ति

आजाद भारत के पुनर्निर्माण के लिए गांधी जी के राजनीतिक विचारों की अनदेखी कर मैक्यावेली के राजनीतिक विचारों का अवलम्बन करते हुए भारत में इंगलैण्ड के संसदीय प्रजातंत्र को लागू किया गया। भारतीय संविधान निर्माताओं ने चाहे किसी भी शासन-

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पद्धति को अपनाया हो, उद्देश्य था, जनता का कल्याण करना, एक नये सुदृढ़ भारत का निर्माण करना, लेकिन बाद के वर्षों में वे अपने स्वार्थों और महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति में डूबे रहे। दिनाबुदिन शक्ति और सत्ता कुछ इने-गिने व्यक्तियों तक, पदों तक सिमटती चली गयी। सत्ता और शक्ति का केन्द्रीकरण सामान्य जन के लिए अभिशाप साबित हुआ। इसलिए जे. पी. ने सम्पूर्ण क्रान्ति के विचार में राजनीतिक शक्ति और सत्ता के विकेन्द्रीकरण का विचार व्यक्त किया।

सम्पूर्ण क्रान्ति की राजनीतिक व्यवस्था प्रजातांत्रिक ही होगी, लेकिन प्रचलित पाश्चात्य राजनीतिक लोकतन्त्र से बिल्कुल भिन्न होगी। राजनीतिक संगठन की शुरूआत ग्राम स्तर से होगी। इस व्यवस्था में गांव की राजनीतिक प्रशासनिक व्यवस्था गांव के लोगों के ही पास होगी, जिसका वे स्वयं संचालन करेंगे। जयप्रकाश द्वारा परिकल्पित लोकतंत्र में ग्राम, प्रखण्ड और जिला स्तर की ये स्थानीय स्वायत्तशासी संस्थाएं ही राज्य-व्यवस्था की बुनियाद होगी। ऐसी विकेन्द्रित राजनीतिक व्यवस्था में सत्ता हथियाने, तानाशाही लादने की दूर-दूर तक कोई संभावना भी नहीं दिखलाई पड़ेगी। ऐसी प्रजातांत्रिक व्यवस्था में दलवाद का स्थान नहीं रहेगा। सचमुच सम्पूर्ण क्रान्ति की उक्त विकेन्द्रित राजनीतिक प्रशासनिक व्यवस्था में प्रजातंत्र वास्तविक रूप में जनता के समक्ष आयेगा।

सम्पूर्ण क्रान्ति में चूंकि व्यक्ति और समाज दोनों में सर्वागीण परिवर्तन लाने की शक्ति समाहित होती है, इसलिए इसमें अन्य सात प्रकार की क्रान्तियां-सामाजिक क्रान्ति, आर्थिक क्रान्ति, राजनीतिक क्रान्ति, सांस्कृतिक क्रान्ति, वैचारिक अथवा बौद्धिक क्रान्ति, शैक्षणिक क्रान्ति एवं आध्यात्मिक क्रान्ति का समन्वय होना आवश्यक है। ऐसी सम्पूर्ण क्रान्ति से एक नया समाज बनेगा, जो मौजूद समाज से भिन्न होगा, वह समाज होगा- ''सर्वोदय समाज'' वह राज्य होगा- ''अहिंसक राज्य'' तथा वह स्वराज्य होगा- ''ग्राम स्वराज्य''।

4.4.2 सम्पूर्ण क्रान्ति की प्रक्रिया

लोकनायक जयप्रकाश ने विचार व्यक्त किया है कि समाज आमूल परिवर्तन चाहता है और यह आमूल परिवर्तन सरकार द्वारा कभी नहीं हो सकता और सत्ता के स्थानों पर बैठे हुए नेताओं के भाषणों या आह्वनों से भी नहीं हो सकता। ऐसा परिवर्तन मात्र उन्हीं लोक नेताओं और लोक सेवकों द्वारा ही सम्भव हो सकता है, जिन्होंने स्वेच्छा तथा खुशी से अपने को सत्ता-स्थानों से दूर रखा हो और जनता तक जिनकी पहुंच है यानी जनता के बीच में रहकर जिन्होंने काम किया है। जे. पी. कहा करते थे। ''केवल सरकार से सब काम हो जायेगा और सरकारी योजनाएं, बजट आदि के द्वारा परिवर्तन आ जायेगा, ऐसा मानकर अभी भी हम चलेंगे तो फिर हम भटकते ही रहेंगे। सम्पूर्ण क्रान्ति तो पूरी जनता की शक्ति को देश के नव-निर्माण में लगाने से ही होगा।

देश के नव-निर्माण में स्त्री-पुरूष, बच्चे-बूढ़े, छात्र और शिक्षक, सैनिक और स्वयं-सेवक सभी को इसमें शामिल होना चाहिए। सम्पूर्ण क्रान्ति की प्रक्रिया में जनता की सतत् जागरूकता को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। स्वावलम्बन और आपसी सहयोग की भावना जनता में अपार शक्ति पैदा करेगी, जो सम्पूर्ण क्रान्ति के लिए वरदान साबित होगा- इसके बिना सम्पूर्ण क्रान्ति की कल्पना भी नहीं करनी चाहिए।

चूंकि सम्पूर्ण क्रान्ति का लक्ष्य सर्वोदय समाज तथा ग्राम स्वराज्य की स्थापना करना है, इसलिए इनमें राजनीतिक क्रान्ति के तहत सत्ता ऊपर से नीचे गांव में लानी होगी, सत्ता जनता के हाथों में स्वयं जनता द्वारा लानी होगी। ऐसी गावं की सत्ता के लिए जनता को अपने कर्त्तव्यों और अधिकारों के प्रति सचेत होने के साथ-साथ संगठित होना होगा, क्योंकि लोकतंत्र में नागरिक अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों से जितना उदासीन रहेगा, लोकतंत्र उतना ही कमजोर और कुण्ठित होगा।

समालोचना - सम्पूर्ण क्रान्ति की दिशा में जयप्रकाश द्वारा गुजरात और बिहार में किये गये आन्दोलनों पर लिखी पुस्तक में उल्लेख आया है कि ''जे. पी. के आन्दोलन में जिन लोगों ने भाग लिया, वे शहरी, मध्यम और ऊपर के तबके के लोग थे। जमींदार और बड़े किसान, जिन्हें आज की व्यवस्था से लाभ मिला था और जो उसमें कुछ परिवर्तनों के द्वारा अपने लाभ को बढ़ाना चाहते थे। यद्यपि माना गया था कि यह एक क्रान्तिकारी आन्दोलन है, किन्तु उसमें आवश्यक सुधारवादी मांगों पर भी जोर नहीं दिया गया। उद्देश्य की स्पष्टता नहीं थी। मांगे सूक्ष्म थी यानि एकाएक पकड़ में नहीं आती थी और ध्येय बहुत दूर के थे। इन ध्येयों को भी विस्तार या बारीकी से सामने नहीं रखा गया, फल यह हुआ कि आन्दोलन दलीय राजनीतिक आन्दोलन होकर रह गया, और उसका सम्बन्ध ''सर्वोदय'' या ''सम्पूर्ण क्रान्ति'' से नहीं जुड़ा। जो दल इकट्ठा हुए उन सब में एक ही तत्त्व समान था, कांग्रेस का विरोध अर्थात् शासन दल तथा उसके द्वारा की गई गलतियों का विरोध। क्रान्ति से इसका सीधा सम्बन्ध मानना कठिन है।'' सन् 1977 में ही टाइम्स ऑफ इण्डिया ने लिखा, ''जे. पी. के आन्दोलन ने आर्थिक समस्याओं को एक तरफ छोड़ कर ऐसे अस्पष्ट राजनीतिक और नैतिक ध्येयों को सामने रखा, जो किसी आधारभूत कार्यक्रम से सम्बन्धित नहीं लगते।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सन् 1974 में सम्पूर्ण क्रान्ति के लिये किये गये बिहार-गुजरात के आन्दोलन की असफलता को स्वयं जयप्रकाश जी ने भी स्वीकार करते हुए कहा, ''हमारी मुख्य चिन्ता राष्ट्र-निर्माण के काम पर केन्द्रित होनी चाहिए थी, लेकिन राजनीतिक गतिविधियों ने वैसा होने नहीं दिया।... राज्य शक्ति के साथ ही टक्कर में शक्ति का ह्रास हुआ। नहीं तो आन्दोलन को हम कहां तक आगे ले गये होते।'' फिर हमें लोकनायक द्वारा संचालित सन् 1974 के बिहार-गुजरात आन्दोलन को सम्पूर्ण क्रान्ति नहीं मान लेना चाहिए। वह तो मात्र, कुछ सीमित मांगों को लेकर छात्र आन्दोलन था जिसकी बागडोर अनायास ही जयप्रकाश जी के हाथों में आ गयी और उन्होंने इस आन्दोलन को अपनी सम्पूर्ण क्रान्ति से जोड़ने का प्रयास किया। जे. पी. को आन्दोलन में साथ दे रहे राजनीतिक दल के नेताओं तथा अन्य जुड़े हुए लोगों ने उस आन्दोलन से सम्पूर्ण क्रान्ति का सपना देखा। जे. पी. का यह मोह आन्दोलन में सम्मिलित दलों का ''जनता पार्टी'' के नाम से सत्ता पर आसीन हो जाने के बाद भंग हुआ, तब उन लोगों ने सत्ता हाथ में आ जाने पर जे. पी. के विचारों की अवहेलना कर दी। विनय भाई ने सम्पूर्ण क्रान्ति का सिंहावलोकन करते हुए लिखा है, ''जिस प्रकार विदेशी शासन से मुक्ति पाने के लिए तत्कालिक उद्देश्य की पूर्ति में बापू ने स्वयं कांग्रेस की सदस्यता छोड़ देने पर भी उस संगठन को अपना नेतृत्व दिया, किन्तु कांग्रेस के सत्तारूढ़ हो जाने पर उसे अपेक्षित दिशा में मोड़ने में असफल रहे। उसी प्रकार तानाशाही से मुक्ति के संघर्ष में स्वयं किसी राजनैतिक पक्ष में शामिल हुए बिना उनका मार्गदर्शन करने के बाद लोकनायक भी सत्तारूढ़ दल पर अंकुश नहीं रख पाये और न ही उसे सम्पूर्ण क्रान्ति की दिशा में ही ले जा पाये। दूसरे शब्दों में यह स्वीकार करने योग्य तथ्य है कि गैर-राजनीतिक या नैतिक नेतृत्व द्वारा जन साधारण को प्रभावित करके जो परिवर्तन लाया गया, उसका लाभ राजनीतिक सत्तारूढ़ दल को मिला और नैतिक नेतृत्व की क्रान्तिकारी कल्पनाओं तथा जनता की आशा आकांक्षाओं को साकार करने के लिए सर्वथा एक नये अभिनव आन्दोलन की अपेक्षा बनी रह गयी।''

4.5 सप्त क्रान्ति

डॉ. राम मनोहर लोहिया के सर्जक व्यक्तित्व के कई पहलू हैं। उनके जीवन का अधिकांश समय देश की स्वतन्त्रता के संघर्ष में और स्वतन्त्रता के बाद भारतीय समाज के पुनर्निर्माण के लिये जूझने में व्यतीत हुआ। सिंहासन की ओर उन्मुख बुद्धिजीवियों की घोर उपेक्षा के बावजूद उनका राजनैतिक चिंतन भारतीय जनता में लोकप्रिय होता गया और उस चिंतन ने समय-समय पर भारतीय सत्ता का परिवर्तन भी किया।

डॉ. लोहिया सिर्फ राजनैतिक चिंतक नहीं थे, बल्कि वे बीसवीं शताब्दी के एक नितांत मौलिक सर्जक और बहुमुखी प्रतिभा थे। सप्तक्रान्ति लोहिया के मौलिक सर्जक और बहुमुखी प्रतिभा की ही देन है। सप्तक्रान्ति सम्पूर्ण आजादी, समता, सम्पन्नता के लिये तथा सभी प्रकार के भेद-भाव एवं अन्याय के विरूद्ध जेहाद है। सप्त-क्रान्ति के द्वारा लोहिया एक नयी सभ्यता और संस्कृति का निर्माण करना चाहते थे। सप्त क्रान्ति के द्वारा लोहिया सात क्षेत्रों में क्रान्ति का विचार रखते थे।

4.5.1 आर्थिक क्रान्ति

आर्थिक क्षेत्र में क्रान्ति उनकी सप्त क्रान्ति का महत्त्वपूर्ण अंग है। आर्थिक क्रान्ति से उन्होंने आर्थिक समता और नियोजित उत्पादन के बारे में बहुत ही महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किये हैं। डॉ. लोहिया भारत में आर्थिक समानता लाने के लिये वर्तमान अर्थ नीति, सम्पदा बढ़ाने वाली नीति का समर्थन करते हैं। उनका विचार है कि अगर सम्पदा बढ़ रही है और वह कुछ ही लोगों के हाथों में इकट्ठा हो रही है जो उचित नहीं है। लोहिया का विचार है कि धन का वितरण अगर समान नहीं हो तो, जितना हो सके उतना समानता से अवश्य होना चाहिए।

डॉ. लोहिया की अर्थनीति में मूल तत्त्व हैं- सम्पदा प्रचुर मात्रा में उत्पादित हो और उसका आवश्यकतानुसार समवितरण हो। पहला सवाल है सम्पदा की प्रचुरता कैसे हो? लोहिया धन के उत्पादन के लिये गांधी जी की तरह ''कायिक श्रम'' को अनिवार्य मानते हैं। शारीरिक श्रम के लिये चूंकि शक्ति की आवश्यकता होती है, इसलिये शारीरिक श्रम करने वाले व्यक्ति को पूर्ण स्वस्थ रहना अनिवार्य है। भारत की स्थिति यह है कि यहाँ की कुछ जनसंख्या का आधा हिस्सा इतना अभावग्रस्त जीवन व्यतीत कर रहा है कि वह ठीक तरह से शारीरिक श्रम नहीं कर सकता है, उसका शरीर अत्यन्त कमजोर हो जाता है। डॉ. लोहिया मानते हैं कि ऐसा आर्थिक असमानता के कारण होता है। इसलिये लोहिया की दृष्टि से पैदा करने के लिये, आमदनी की असमानता को समाप्त करना होगा।

आर्थिक असमानता को समाप्त करने के लिये सप्त क्रान्ति कुछ सुझाव देती है। प्रथमत: तो उनका सुझाव यह है कि ऐसी गलती हमें नहीं करनी चाहिये कि बड़ों से रूपये लेकर छोटों के बीच बांट दें। उनका विचार है कि न्याय के सिद्धान्त के मुताबिक जिन लोगों को

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

आज ज्यादा मिल जाता है, उनको कम करके कम मिलने वालों को दे दो तो न्याय का सिद्धान्त हल हो जाता है। समानता के लिये सुझाव देते हैं कि आधुनिकरण में जो धन का अपव्यय हो जाता है, उस पूंजी को यदि हम पैदावार के आधुनिककरण में लगावें, नये-नये कारखानों को कायम करने में लगावें, आधुनिक कृषि को प्रोत्साहन दें तो सम्पदा में प्रचुरता आयेगी। कम आय वालों के बीच इस धन का बंटवारा किया जा सकता है।

आर्थिक असमानता को कम करने के लिये डॉ. लोहिया सभी देशवासियों के लिये कायिक श्रम को आवश्यक बतलाते हैं। उनका मानना था कि शारीरिक श्रम नहीं करने वालों के ही हाथ में देश की बागडोर रहती है, इसलिये ऐसे लोग अपने ही बिरादरी के हिमायती होते हैं। उनके अनुसार हमारे आर्थिक संकट का एक कारण विदेशों का अंधानुकरण भी है। हम अनुकरण करने में अपनी सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक तथा अन्य परिस्थितियों को गौण कर देते हैं, जो कि दूसरे देशों की परिस्थितियों से बहुत भिन्न है। ऐसे आंख मूंदकर विदेशी नीतियों के अनुकरण के प्रचलन के कारण, अविवेकपूर्ण निर्णय के कारण आर्थिक संकट अपना भयावह रूप दिखाता है।

4.5.2 स्त्रियों की स्थिति में क्रान्ति

सन् 1960 में डॉ. लोहिया ने कहा था, ''भारतीय नारी द्रौपदी जैसी हो, जिसने कि कभी किसी पुरूष से दिमागी हार नहीं खायी। नारी को गठरी के समान नहीं बनना है, अपितु नारी को इतनी शक्तिशाली होनी चाहिये कि वक्त पर पुरूष को गठरी बनाकर अपने साथ ले चले।'' लोहिया स्त्रियों पर हो रहे अत्याचार से पीड़ित थे। उन्होंने स्त्री की तुलना शूद्र से की थी। उनका विचार था कि जिस प्रकार शूद्र विभिन्न प्रकार के अत्याचार के शिकार है, उसी प्रकार नारी भी अत्याचारों का शिकार है। स्त्री और पुरूष के बीच असमानता को उन्होंने दुनिया की सारी बुराइयों का जड़ कहा। आश्चर्य तो यह है कि नारी के प्रति किये जा रहे इस घृणित अपराध का तो पुरूषों को और न ही स्त्रियों को पता है। नारी पर किये जा रहे बहुत से अत्याचारों को अभिजात शिष्टाचार, सम्मान तथा परलौकिक धार्मिक का कार्य बतला कर औचित्य सिद्ध किया जाता है। औरत की हीन स्थिति को पुरूष प्रधान समाज द्वारा बहुत ही चतुराई से छिपाई जाती रही है। लोहिया का विचार था कि स्त्री के पूर्ण व्यक्तित्व के खिलने के लिये उनकी स्वतंत्रता अनिवार्य है। उसे पुरूषों के समान अधिकार मिलना ही चाहिये।

डॉ. लोहिया नर-नारी की असमानता की तुलना धनी-निर्धन की असमानता से करते हुये कहते हैं, ''जिस तरह से निर्धन असमानता को समझने की इच्छा प्रबल नहीं रखता, उसको धन चाहिये, समानता नहीं चाहिये। उसी तरह स्त्री को भी आभूषण चाहिये समानता नहीं चाहिये।'' हां। कुछ स्त्रियों इस मान्यता की अपवाद हो सकती हैं। इस अर्थ में लोहिया स्त्रियों के अनावश्यक साज श्रृंगार के विरोधी हैं, क्योंकि मूल रूप से वे साज-श्रृंगार के कारण स्त्रियां विलासिता की वस्तु मात्र बन कर रह गयी है। स्त्रियों की समानता के संबंध में चर्चा करते हुये दहेज को वे घातक बतलाते हैं। वे दहेज निराकरण के लिये विवाह की मान्यताओं को बदलने की सलाह देते हैं।

4.5.3 जातिगत क्रान्ति

डॉ. राम मनोहर लोहिया के विचार में जाति-प्रथा व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के लिये घातक है। व्यक्ति का जीवन नदी के जल के समान प्रवाहमान है, परिवर्तन समाज और राष्ट्र का नियम है। बिना परिवर्तन के कोई भी समाज उन्नति नहीं कर सकता। जाति-प्रथा सामाजिक परिवर्तन को रोककर तथा यथास्थिति बनाये रखना चाहती है, जिससे व्यक्ति का व्यक्तित्व कुंठित हो जाता है और समाज अवनति की ओर जाता है। लोहिया के विचार में जाति प्रथा के कारण आज भी बहुसंख्यक भारतीय जनता अपने ही देशवासियों के हाथों गुलाम है। जातिप्रथा के कारण ही स्वयं भारतवासियों के बीच भारी दुराव है।

डॉ. लोहिया जाति प्रथा से होने वाली हानियों की ओर इशारा करते हैं। उनके विचार में जाति प्रथा व्यक्तित्व को कुण्ठित कर देती है। समाज में अयोग्य व्यक्ति की संख्या, दिनानुदिन बढ़ती जाती है, जिसका नतीजा यह होता है कि वह समाज और राष्ट्र अयोग्य रह जाता है। जाति प्रथा का प्रभाव राजनीतिक अंग पर भी अपना बुरा असर डालती है। डॉ. लोहिया के विचार में जातिवाद क्षेत्रिय पार्टियों को जन्म देता है जिसे कोई देशभक्त और प्रगतिशील व्यक्ति अच्छी नजर से नहीं देखेगा। ऐसी जाति पर आधारित क्षेत्रीय दलें देश को तोड़ती हैं।

जाति प्रथा को मिटाने के तरीकों के बारे में डॉ. लोहिया का विचार है कि जिस प्रकार पिछड़े समूहों के लिये विशेष अवसर पूंजी और सेवाओं की विशेष व्यवस्था की बात सभी ने स्वीकार कर ली है, उसी प्रकार पिछड़े समूहों के लिये विशेष अवसर का सिद्धान्त निर्विवाद और सभी लोगों द्वारा स्वीकार करने पर ही जाति प्रथा समाप्त हो सकती है। कई हजार वर्षों से जाति के श्रम विभाजन के कारण योग्यता गुण और संस्कार के जैसे अटूट दीवार बन गये हैं, समान अवसर से नहीं, बल्कि विशेष अवसर ही इन दीवारों को तोड़ सकते हैं। जाति प्रथा को समाप्त करने के लिये हमें कमजोर जातियों को भी राजनैतिक नेतृत्व का भरपूर अवसर प्रदान करना होगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

डॉ. लोहिया जाति प्रथा को समाप्त करने हेतु उच्च जातियों के युवकों का आह्वान करते हैं। उनका विचार है कि इस कार्य में ऊँची जाति के युवकों को अपने स्वार्थों पर हमला देखने के बजाय, उसमें सत्ता को नवजीवन देने की क्षमता देखनी चाहिये। ऊँची जाति के युवकों को छोटी जातियों के लिये खाद बन जाने का निश्चय करना चाहिये, ताकि एक बार तो जनता अपनी पूरी तेजस्विता में पल्लवित-पुष्पित हो। अगर मानव स्वभाव अपरिमित त्याग के लिए तत्पर रहता है, जो ऊँची जातियां सलाहकार बनेंगी और कार्यकारिणी होगी। मानव जाति को प्राणवान बनाने के लिये, उनके पौरूष को जाग्रत करने के लिये ऊँची जातियों को तैयार हो जाना चाहिये, उन्हें मानवता के रक्षण और पोषण का यश लेना चाहिये।

4.5.4 रंगभेद की क्रान्ति

चमड़ी के रंग के आधार पर गोरा-काला कहकर जो व्यक्ति-व्यक्ति के बीच भेद-भाव किया जाता है, इसके विरूद्ध भी डॉ. राम मनोहर लोहिया ने आवाज उठाई थी। उनका विचार था कि चमड़ी का रंग गोरा हो या काला इसे आदमी सुन्दरता की कसौटी नहीं बनानी चाहिये। कोई भी आदमी सुन्दर या कुरूप अपने अच्छे बुरे विचारों या व्यवहारों द्वारा होता है। सुन्दरता तो असल में दिल से देखी जाता है, आंखें और दिमाग से देखने वाली सुन्दरता की सही माप नहीं हो सकती। डॉ. लोहिया इस रंगभेद को समाप्त करना चाहते थे। रंगभेद के कारण हमारे समाज में बहुत अन्याय होता है, एक व्यकित द्वारा दूसरे व्यक्ति को पीड़ा पहुंचायी जाती है। चमड़ी के रंग के बारे में गलत धारणाओं के कारण न जानें किस हद तक आत्माओं में विकृति आती है। करोड़ों स्त्री-पुरूषों के अचेतन में अन्याय या पक्षपात भरे व्यवहार के बीज पड़ते हैं।

4.5.5 अहिंसक क्रान्ति

डॉ. लोहिया वर्तमान समय में विश्व के विभिन्न देशों में हो रहे शस्त्रों के निर्माण से बहुत चिन्तित थे। उन्होंने मनुष्य के इस कृत्य में मनुष्य का विनाश देखा। इसलिये निर्मित शस्त्रों को खत्म करने पर तथा नये शस्त्रों के निर्माण पर प्रतिबंध लगाने की सलाह दी थी। घातक अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण से मानव समाज को मुख्य रूप से दो हानियां हैं-एक तो यह कि देश का धन अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण में व्यय होता है, उस धन से देश के विकास कार्य करने से देश यानि देश की जनता समृद्ध होती। दूसरे, अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण से, छोटे-बड़े युद्धों के कारण मनुष्यों का संहार हो रहा है। लोहिया का विचार था कि यह तो खुशी की बात है कि विश्व के अन्य शक्तिशाली राष्ट्रों के साथ-साथ अमरीका और रूस भी शस्त्रों की निरर्थकता को स्वीकार करने लगे हैं और उसे नष्ट करने के लिये दोनों आपस में समझौतावार्ता भी चला रहे हैं। अस्त्र-शस्त्रों को खत्म करने के पक्ष में बोलते हुये लोहिया जी ने कहा है ''अच्छे आदमियों को शायद हमेशा हथियारों से नफरत है। इतिहास के सबसे महान् पुरूषों के विचार और कर्म में निश्चय ही हथियारों के लिये कोई जगह नहीं रही। अहिंसक क्रान्ति ''प्रेम'' पर आधारित है और प्रेम हमेशा हथियारों का विरोधी रहा है। यह सत्य है कि पूरी मानव जाति के लिये तो हथियार बुरे और राक्षसी रहे हैं, लेकिन जिस खास समूह के पास ज्यादा हथियार थे या ज्यादा अच्छे हथियार थे, उनके लिये उपयोगी थे। ऐसा इसलिये हुआ कि राष्ट्र प्रेम और मनुष्य प्रेम के बीच टकराव रहा है। राष्ट्रों के राष्ट्राध्यक्ष अपने राष्ट्र को विश्व में सबसे शक्तिशाली बनाने के लिये हथयारों से सुसज्जित करता रहा है, राष्ट्राध्यक्षों के इस महत्त्वाकांक्षा में दूसरे राष्ट्रों के निवासियों की मौत कोई महत्त्व नहीं रखता।'' अत: शस्त्रों की समाप्ति (निर्माण को रोकने और नाश) के लिये अन्याय और असमानता को मिटाना होगा। अन्याय के स्थान पर न्याय को और असमानता के स्थान पर समानता को प्रतिष्ठित करना होगा। डॉ. लोहिया का विचार है कि यह कार्य सिविलनाफरमानी द्वारा ही संभव है। वे कहते हैं, ''व्यक्तिगत सिविलनाफरमानी भले ही दुलर्भ है, लेकिन सामुहिक सिविलनाफरमानी तो आजादी के दौरान सफल हो चुका है। फिर भी उनका विश्वास है कि अगर देश के लोगों का दसवां हिस्सा भी देश के अन्याय के विरूद्ध आन्दोलन और व्यक्तिगत सिविलनाफरमानी करने वाला बन जाये तो यह आशा की जा सकती है कि सिविलनाफरमानी द्वारा किसी भी विदेशी आक्रमण को रोकने में भी हमें सफलता हासिल होगी। इसलिये न्याय और समानता स्थापित कर शस्त्रों की समाप्ति के लिये महत्त्वपूर्ण मुद्दा है, ''व्यक्तिगत और आदतन सिविलनाफरमानी (सविनय अवज्ञा)।'' यह अन्याय के विरूद्ध लड़ने का अहिंसक और न्यायपूर्ण तरीका है जो सत्य पर आधारित है।

4.5.6 विदेशी सरकार से मुक्ति और विश्व सरकार की स्थापना

डॉ. लोहिया के समय में अन्य महत्त्वपूर्ण समस्याओं में से एक समस्या राष्ट्रों की प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष गुलामी थी। वे चाहते थे कि सभी राष्ट्र स्वतन्त्र हों। इस सम्बन्ध में उनका विचार था कि व्यक्ति स्वतन्त्र जन्म लेता है, तो फिर उसके ऊपर नाजायज नियंत्रण का शिकंजा डालकर हम अन्याय ही करते हैं। वे व्यक्ति की स्वतन्त्रता से लेकर विभिन्न राष्ट्रों की स्वतन्त्रता की बात करते थे और अंतत:

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

विश्व सरकार की कल्पना भी करते थे। जिस प्रकार व्यक्तिगत स्वतन्त्रता व्यक्ति की प्रथम महत्त्वपूर्ण मांग है, उसी प्रकार राष्ट्रीय स्वतन्त्रता भी व्यक्ति के महत्त्वपूर्ण मांगों में से एक है क्योंकि राष्ट्रीय स्वतन्त्रता पर ही व्यक्तिगत स्वतन्त्रता निर्भर करती है। छोटे-छोटे राष्ट्रों को स्वतंत्र होते देख लोहिया जी को यह विश्वास था कि एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र पर प्रत्यक्ष शासन अब तो अतीत की चीज हो गयी है, भले ही राष्ट्रों का राष्ट्रों के ऊपर अप्रत्यक्ष नियंत्रण अभी भी जारी है और यह अप्रत्यक्ष नियंत्रण तो अन्याय और शोषण के विरूद्ध मनुष्य द्वारा आवाज उठाने जाने की स्थिति पर निर्भर करेगा।

डॉ. लोहिया के शब्दों में ''मनुष्य जाति ऐसे युग में आ गयी है, जिसमें साम्राज्यवाद अप्रत्यक्ष कब्जा करना स्वीकार नहीं करता और अपने शिकार को थोड़ी सी शक्ति प्रदान करना बेहतर समझता है, जिससे कोई दूसरा न खा खाएं।'' उनके विचार में फिर भी प्रत्यक्ष साम्राज्यवादी नीति तो जारी है, जिसे प्रच्छन साम्राज्यवाद भी कहा जा सकता है। बड़ा देश यानि सम्पन्न देश छोटे और निर्बल (गरीब) देशों को आर्थिक प्रशासनिक मदद द्वारा उन्हें अपने इशारे पर नचाने रहना चाहते हैं। लोहिया के विचार में ऐसा विभिन्न देशों के बीच आर्थिक असमानता के कारण होता है। उनकी मान्यता है कि कुछ शक्तिशाली जातियों ने अच्छी भूमि पर कब्जा करके निर्बल जातियों को साधन रहित कर दिया है, जिससे वे विपन्न स्थिति में जी रहे हैं। इसलिये वे कहते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय असमानता को समाप्त कर, प्रच्छन्न समाजवादी नीति को समाप्त करना होगा, जिसका आदर्श रूप होगा। ''विश्व सरकार'' की स्थापना।''

4.5.7 व्यक्ति के निजी जीवन में स्वतन्त्रता

डॉ. लोहिया इस बात से आशंकित थे कि लोक कल्याणकारी राज्य व्यक्ति के निजी जीवन में उसके कल्याण करने के नाम पर अधिकाधिक हस्तक्षेप करते हैं, इससे व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर खतरा पहुंच सकता है। उनका विचार है कि आज सरकारी, गैर-सरकारी संगठन भी अपने नियोजनों द्वारा व्यक्ति की स्वतन्त्रता का अपहरण करता जा रहा है। यह दूसरी बात है कि संगठनों के इन कृत्यों से व्यक्ति की महत्ता बढ़ती ही है, उसके जीवन जीने के ढंग में सुधार हुआ है, उसकी हालत सुधरी है। व्यक्ति की निजी स्वतन्त्रता के बारे में प्रमुख विचारणीय प्रश्न यह है कि व्यक्ति का कल्याण और सुख, शिक्षा और स्वास्थ्य, उसका आराम एवं उसके जीवन और विचार को बड़ा हिस्सा विभिन्न प्रकार की योजनाओं का विषय बन गया है, जो व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर प्रभाव डालता है। इसलिये लोहिया का विचार है कि व्यक्ति यानि जनता को अपने विकास या कल्याण के आयोजनों का निर्धारण करने का भार खुद उन्हीं के ऊपर छोड़ दी जाये। योजना निर्माण की जिम्मेदारी जनता पर ही हो। इससे जनता के निजी जीवन में भी कम हस्तक्षेप होगा और साथ ही उसमें रुचि, ज्ञान और समझ का विकास अधिक होगा।

डॉ. राम मनोहर लोहिया की सप्त क्रान्ति सम्बन्धी विचार निश्चय ही समाज की असमानताओं को दूर कर एक अहिंसक समाज की रचना में उपयोग सिद्ध हो सकता है। साथ ही रंग-भेद को दूर कर स्त्रियों को प्रतिष्ठा देकर पीड़ित मानवता के रक्षण में एक सराहनीय कदम भी होगा। फिर नि:शस्त्रीकरण के द्वारा और प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष परतन्त्रता को हटा लेने से विश्वशान्ति की स्थापना तो होगी ही। इसलिये वर्तमान पीढ़ी के लिये लोहिया के उक्त विचार अनुकरणीय एवं कल्याणकारी है।

4.6 सिविलनाफरमानी (सविनय अवज्ञा)

डॉ. राम मनोहर लोहिया द्वारा सिविलनाफरमानी का व्यक्त किया गया विचार वर्तमान परिप्रेक्ष्य में, व्यवहारिकता के अनुरूप गांधी जी के सत्याग्रह का संशोधित रूप है। डॉ. लोहिया ने वर्तमान विश्व तथा भारत में सत्ताधीशों द्वारा किये जा रहे अन्यायों, अत्याचारों को समाप्त करने के लिये सिविलनाफरमानी के विचार का प्रतिपादन किया है। वे भारत तथा विश्व के अन्य देशों में सामाजिक परिवर्तन हेतु किये गये या किये जा रहे प्रयोग से सन्तुष्ट नहीं थे, क्योंकि उन प्रयोगों से परिवर्तन संदिग्ध था। इसलिये डॉ. लोहिया ने सामाजिक परिवर्तन हेतु जो उत्तम विचार प्रस्तुत किया वह सिविलनाफरमानी है। यूरोप के कुछ देशों में लोगों ने प्रचार द्वारा जनमत तैयार करके सरकारों को समाज परिवर्तन के कार्यक्रमों को लागू करने के लिये बाध्य किया है, लेकिन बाध्य होकर मजबूरी में कोई भी सरकार किस हद तक समाज को उन्नत बना सकता है, यह बतलाने की आवश्कता नहीं, इसलिये परिवर्तन का यह तरीका धीमा रहा है। यह तरीका एक तरह से सुधारवादी है। कुछ देशों में समाज परिवर्तन के लिये संसद और वोट का भी सहारा लिया जाता है। वोट द्वारा क्रान्तिकारी सरकार बनाकर प्रभावशाली परिवर्तन लाने के भी बहुत से प्रयोग किये गये हैं। डॉ. लोहिया के विचार में यह पद्धति भी उपयुक्त नहीं है। उनका विचार था कि ''संसद परिवर्तन का हमेशा सन्तोषजनक माध्यम हो, यह जरूरी नहीं है।'' क्योंकि ऐसा भी देखा गया है कि जब परिवर्तन के लिये संसदीय तरीके अपर्याप्त ठहरते हैं, तब लोग उतावले होकर अस्त्र-शस्त्र का सहारा लेने लगते हैं, और क्रान्ति हिंसक बन जाती है। फिर लोहिया का ही कथन कि ''जिन्दा कौमें पांच साल तक इन्तजार नहीं करती।'' उन्होंने समाज परिवर्तन के लिये

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

मार्क्सवाद को भी स्वीकार नहीं किया। मार्क्सवाद हिंसक शक्ति पर आधारित है और हिंसक शक्ति द्वारा क्रान्ति लाने से शक्ति प्रयोग की श्रृंखला प्रारम्भ हो जाती है, साथ ही मार्क्सवाद में वर्ग संघर्ष, धोखा, झूठ, देशद्रोह, अत्याचार व संस्कृति को नष्ट करने के तत्त्व निहित रहते हैं। मार्क्सवादी परिवर्तन में केवल उत्पादन का सम्बन्ध बदला जाता है, उत्पादक-शक्तियों को यथावत स्वीकार कर लिया जाता है। समाज परिवर्तन के उक्त तीनों पद्धतियों-यूरोपीय पद्धति, संसदीय पद्धति तथा मार्क्सवादी पद्धति के मध्य का मार्ग सिविलनाफरमानी है, जिसमें तीनों पद्धतियों की अच्छाइयाँ निहित हैं। सिविलनाफरमानी इस अर्थ में गांधी जी के समाज परिवर्तन की पद्धति के अधिक करीब है।

दूसरे अर्थों में सिविलनाफरमानी अन्याय तथा अत्याचार के विरोध का ही दूसरा नाम है। सिविलनाफरमानी हमें कायर दब्बूपन तथा हिंसक होने से बचाकर असली इन्सान बनाती है। सिविलनाफरमानी का अर्थ है- ''जो जालिम के समक्ष घुटने नहीं टेकता है, लेकिन साथ ही उसकी गर्दन भी नहीं काटता है।'' इसलिये लोहिया ने नारा दिया था ''मारेंगे भी नहीं लेकिन छोड़ेंगे भी नहीं।'' यह नारा उनके ''घेराव'' कार्यक्रम का था, जो गांधी जी के अनशन का संशोधित तरीका था। लोहिया विचार में जालिम वही होते हैं, जहाँ दब्बू होते हैं। ''जालिम का कहा मत मानो'', यही सिविलनाफरमानी है।

सिविलनाफरमानी में सत्याग्रह यानि जुल्म के खिलाफ लड़ने वाले लोगों का (जनता का) हृदय-परिवर्तन के साथ ही साथ अन्यायी का, जुल्मी का यानि विरोधियों का भी हृदय-परिवर्तन हो जाता है। इस आन्दोलन का व्यूह रचना द्वारा जनता को ऊपर हो रहे अत्याचारों की पहचान करायी जाती है, उनके अधिकारें और कर्त्तव्यों को उसे भान कराया जाता है, जिससे कि वे दब्बूपन और कायरपन को त्याग कर अन्यायी के विरूद्ध सिविलनाफरमानी करने के लिये तैयार होता है। विरोधी का तो इस आन्दोलन द्वारा दिमाग एवं दिल परिवर्तित हो ही जाता है और वह जुल्म करना छोड़कर जनकल्याणकारी कदम उठाता है। लोहिया कहते हैं, ''गांधी जी का हृदय केवल बड़े लोगों के लिये नहीं था, बल्कि ज्यादातर कमजोर लोगों के लिये, आम जनता के लिये था। जिससे उनकी दिल और दिमाग की कमजोरी दूर हो सके और वे जुल्म करने वाले के खिलाफ तन कर खड़े हो सकें।'' उनमें इतनी ताकत आ जाये कि वे कह सकें, ''मारो अगर मार सकते हो, लेकिन हम तो अपने हक पर अड़े रहेंगे'', सिविलनाफरमानी भी यही चाहता है। सिविलनाफरमानी की कामयाबी इसी में है कि इससे आजाद हिन्दुस्तान के करोड़ों लोगों के दिल और दिमाग से अपने वर्तमान सरकार से कमजोर और डरपोकपन दूर हो जाये। इस अर्थ में सिविलनाफरमानी की सफलता के लिये तत्काल विरोधियों का परास्त होना आवश्यक नहीं। जिस देश की करोड़ों जनता कायरता छोड़कर अपने कर्त्तव्य पथ पर चलते हुए तनकर जीना सीख लेगी उस देश में जुल्मी या अत्याचारी या निकम्मी सरकार के लिये कोई जगह नहीं रहेगी।

डॉ. लोहिया द्वारा प्रणीत सिविलनाफरमानी दो प्रकार के हैं- व्यक्तिगत और सामूहिक। व्यक्तिगत सिविलनाफरमानी के तहत व्यक्ति व्यक्तिगत रूप से अन्यायपूर्ण कानूनों या सरकारी आदेशों को मानने से इन्कार करता है तथा व्यक्तिगत मांग को लेकर संघर्ष करता है। व्यक्ति का यह संघर्ष प्रह्लाद, ईसामसीह, सुकरात और गांधी की तरह होता है, जिसमें बलिदान होने तक के लिये तैयार रहना पड़ता है। सामुहिक सिविलनाफरमानी एक समूह विशेष द्वारा की जाती है, इसे हम जन-आन्दोलन भी कह सकते हैं। उदाहरण के तौर पर भारत की आजादी की लड़ाई के समय गांधी जी द्वारा संचालित ''सविनय अवज्ञा आन्दोलन'', ''असहयोग आन्दोलन'', तथा सन् 1942 का ''भारत छोड़ो आन्दोलन'' सामुहिक सिविलनाफरमानी ही था। डॉ. लोहिया सामुहिक सिविलनाफरमानी के हिमायती थी। इसके द्वारा व्यापक स्तर पर आन्दोलन करके सम्पूर्ण सत्ता परिवर्तन किया जाता है। सिविलनाफरमानी के तकनीक हैं -प्रदर्शन, धरना, घेराव, सामुहिक प्रतिकार (अवज्ञा), हड़ताल, बन्द आदि। डॉ. लोहिया ने गांधी जी के अनशन को वर्तमान युग में अप्रासंगिक ठहरा कर उसे अस्वीकार किया। वे मानते थे कि,

''हिन्दूस्तान में सिविलनाफरमानी नहीं करें, बल्कि उनके साथ हजारों लोग दस-बीस पचास हजार लोग चले। समय आने पर सबके सब सत्याग्रही बन जमीन पर बैठ जायें। सबके-सब पुलिस से कहना शुरू कर दें कि या तो हमारी मांगे सरकार स्वीकार करे या हम सबको गिरफ्तार करे या मारे। ऐसी हालत जिस दिन हो जायेगी उस दिन आखिरी फतह ही है।'' उनके विचार में व्यवस्था परिवर्तन के लिये, अन्याय के जगह न्याय को प्रतिष्ठापित करने के लिये महीनों संघर्ष की तैयारी करनी तथा कई कष्ट झेलने पड़ सकते हैं।

सिविलनाफरमानी की विशेषता यह है कि क्रान्ति अहिंसा के अधीन कर देती है, जिससे हानि किसी को नहीं होती तथा जन-व्यवहार में उदारता आ जाती है। सिविलनाफरमानी अन्य क्रान्ति की तरह अराजकता नहीं लाती। यह क्रान्ति के लिये तर्क को बल प्रदान कर दुनिया को रक्तपात से बचाने का एक अनूठा रास्ता है। सिविलनाफरमानी अपने आप में एक साध्य है। इसके अन्तर्गत सच्चाई, कर्म और चरित्र विकास साथ-साथ चलता है। दूसरे, राजनीति की नैतिकता पर आधारित हो जाती है। मनुष्य में स्थायी संघर्षशील स्वभाव का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

विकास होता है। जिससे वह हर कौम पर अन्याय का विरोध करने की शक्ति अर्जित करता है। इसलिये लोगों को सिविलनाफरमानी को जनता के संकल्प को शिक्षित और परिवर्तित करने का मार्ग बतलाता है।

स्वयं डॉ. लोहिया ने सिविलनाफरमानी का प्रयोग भी किया था। सामुहिक प्रतिकार, कृषक मोर्चा, प्रदर्शन, घेराव, धरना, फौजी कर न देने, रेवेन्यू टिकटों का प्रयोग न करने व लाटरी का विरोध करने के लिये सन् 1946 में गोवा की जनता के लिये उन्होंने खुला पत्र भी लिखा। आर्थिक परिवर्तन के लिये सरकारी कार्यालयों में धरना देकर मांगे मनवाना, सरकारी बंजर भूमि पर कब्जा करना, बढ़ा हुआ लगान व सिंचाई कर न देना, अनाज के गोदामों पर कब्जा करना व उनका अनाज जरूरतमंद लोगों में बंटवाना आदि उनके सिविलनाफरमानी के कार्य क्षेत्र थे। अंग्रेजी भाषा के प्रयोग को समाप्त करने के लिये उन्होंने अंग्रेजी नामपट पोतने, कार्यालयों व कॉलेजों में अंग्रेजी तार भेजने का, विधान सभाओं में चलने वाले अंग्रेजी भाषणों को दर्शक दीर्घा में बैठ कर रोकने के लिये प्रेरित किया। चौथे आम चुनाव के समय उन्होंने सिविलनाफरमानी का बहुत ही कठोर कदम ''बन्द'' का आह्वान किया। उनके आह्वान पर बाजार, जिला, प्रदेश तथा भारत तक बंद हुआ जिसमें सम्पूर्ण सरकारी मशीनरी रूक जाती थी।

डॉ. लोहिया का विचार था कि गलत यानि शोषण, अत्याचारी सरकार (शासक) के लिये सिविलनाफरमानी की सार्वकालिक उपादेयता है। अत्याचारी सरकार या शासक देशी हो या विदेशी, राजतंत्रीय हो या प्रजातंत्रीय हो, उसके अत्याचारी तथा गलत कानूनों, नीतियों, बुरे कारनामों का विरोध होना ही चाहिये। सन् 1956 में तत्कालिक शासन के विरोध में पटना में छात्रों की एक सभा में डॉ. लोहिया ने कहा था कि ''सिविलनाफरमानी नया इन्सान पैदा करती है, जो जालिम के सामने घुटने नहीं टेकता, साथ ही उसकी गरदन भी नहीं काटता।'' भारत के सन्दर्भ में सिविलनाफरमानी की उपयोगिता के सम्बन्ध में डॉ. लोहिया का विचार था कि यहाँ तो कुपोषण, भुखमरी, अकाल, अपमान, भूस्वामित्व, ऊँची कीमतें, छंटनी व बेकारी, खर्चीली शिक्षा, दवाओं की कमी व ऊँचे किराये भाड़े तथा गृह विहिनता और सबसे ऊपर मंत्रियों, नेताओं और अन्य पदाधिकारियों के अत्याचार के साथ ही पुलिस के अत्याचार ने ऐसा जटिल वातावरण बना दिया है, जिससे सारा सिविलनाफरमानी का एक बड़ा मंच ही बन गया है। भारत के साथ ही सिविलनाफरमानी का विश्व व्यापी महत्त्व है। डॉ. लोहिया इसे विश्व भाग्य का फैसला करने का मंत्र बताते थे। उनका कहना था कि हमारी सदी बड़ी क्रूर है, बड़ी बेरहम है, लेकिन हमारी शताब्दी की एक खूबी है कि पहली बार सभी अन्यायों के खिलाफ एक साथ लड़ रही है। यही लड़ाई सिविलनाफरमानी का मार्ग प्रशस्त करेगी। सिविलनाफरमानी के दर्शन और कर्म पर डॉ. लोहिया को अटूट विश्वास था। वह इसे सारे राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं के समाधान का प्रमुख उपाय मानते थे। उनका कहना था कि मनुष्य सैदव अन्याय के विरूद्ध संघर्ष करेगा। वह इस संघर्ष को तभी समाप्त करेगा जबकि अन्याय समाप्त हो जायेगा या मनुष्य की प्रजाति मर जायेगी। सिविलनाफरमानी ने ही सर्वप्रथम साधारण आदमी के अस्तित्व रक्षा का मार्ग प्रशस्त किया है। वह अत्याचारी के सामने नहीं झुकेगा और न उसका सिर काटेगा।

4.6 सारांश

अस्तु उपर्युक्त संस्थाओं के योगदानों को कभी भुलाया नहीं जा सकता।

4.7 अभ्यास प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. भूदान आन्दोलन का परिचय दें एवं इसके उद्देश्यों का वर्णन करें
2. ग्रामदान का दर्शन एवं उत्पति पर एक विस्तृत आलेख लिखे
3. सम्पूर्ण क्रान्ति के क्षेत्र का वर्णन करे
4. सप्त क्रान्ति पर एक विस्तृत निबंध लिखे

लघु निबन्धात्मक प्रश्न

1. जीवन का आधार भूमि है। स्पष्ट करे
2. ग्रामदान का उद्देश्य क्या है?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. सम्पूर्ण क्रान्ति का सामान्य परिचय दे
4. सिविलनाफरमानी पर एक नोट लिखें

बहु वैकल्पिक प्रश्न

1. भूदान आन्दोलन में कितनी भूमि प्राप्त हुई थी?
   (अ) 42 लाख एकड़ (ब) 45 लाख एकड़ (स) 48 लाख एकड़
2. विनोबा के अनुसार मुक्ति पाने के लिए क्या आवश्यक है?
   (अ) मैं का त्याग करना (ब) जीवन का त्याग करना (स) सम्पत्ति का त्याग करना
3. संपूर्ण क्रान्ति शब्द सर्वप्रथम कहां प्रयोग हुआ था?
   (अ) गांधी मैदान (ब) रामलीला मैदान (स) राजीव मैदान
4. सप्त क्रान्ति में कितने घटक है?
   (अ) 7 (ब) 10 (स) 12

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई-5

विश्नोई आन्दोलन, चिपको, अपिको एवं नर्मदा बचाओ आन्दोलन

संरचना

5.0 प्रस्तावना

5.1 उद्देश्य

5.2 विश्नोई आन्दोलन

5.3 चिपको आन्दोलन : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

5.3.1 आन्दोलन के सूत्रधार

5.3.1 चिपको का प्रयोग

5.4 अप्पिको आन्दोलन

5.4.1 अप्पिको के प्रयोग

5.5 नर्मदा बचाओ आन्दोलन

5.5.1 नर्मदा नदी : परिचय

5.5.2 विकास की योजनाए

5.5.3 समस्यायें

5.5.4 अहिंसक प्रतिरोध

5.5.5 वैकल्पिक योजनाएँ

5.6 सारांश

5.7 अभ्यास प्रश्नावली

5.0 प्रस्तावना

वर्तमान विश्व की ज्वंलत समस्या पर्यावरणीय ह्रास है। मनुष्य के क्रिया-कलापों ने पर्यावरण की स्थिति को भयावह बना दी है। किन्तु पिछले कुछ दशकों से पर्यावरण के प्रति आम जन की जागरूकता बड़ी है, तथा इसके संरक्षण हेतु प्रयास भी किये जा रहे हैं। विदेश की भांति भारत में भी कई महत्त्वपूर्ण पर्यावरणीय आंदोलन हुए हैं, जिन्होंने पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान दिया है।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत हमारे अध्ययन का विषय विविध पर्यावरणीय आन्दोलनों से सन्दर्भित बिन्दु होंगे—

5.2 विश्नोई समाज द्वारा पर्यावरण-संरक्षण

राजस्थान ने महान् संतों, योगियों, भक्तों एवं वीरों को जन्म दिया है। मीरा, राणा प्रताप, वीर दुर्गादास, द्रोणाचार्य, कपिल मुनि जैसी महान् आत्माओं का लालन-पालन इसी मरुधरा पर हुआ है। गुरुदेव जाम्भोजी की जन्मस्थली पीपासर भी राजस्थान का ही ग्रामाँचल है। आज से पांच सौ वर्ष पूर्व जाम्भोजी द्वारा सुसंगठित बिश्नोई समाज जिस धर्म का पालन करता है, वह पर्यावरण जीव-रक्षा के शाश्वत

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

मूल्यों पर आधारित है। विश्नोई संप्रदाय में पेड़ को काटना, जानवरों एवं पक्षियों को मारना धर्म-विरूद्ध माना जाता है। यही कारण है कि पर्यावरण को बनाए रखना तथा जीव-जंतुओं की रक्षा करना बिश्नोई अपना धर्म समझते हैं।

गुरु जाम्भोजी को अवतारी पुरूष माना जाता है। उनका जन्म विक्रम संवत् 1508, भाद्रपद कृष्ण अष्टमी को हुआ था। जब वे 21 वर्ष के थे तो उनके गाँव में भयानक सूखा पड़ा। तीन वर्षों के भीषण सूखे की चपेट में आकर धरती से घास-फूस तक नष्ट हो गया। ऐसी स्थिति में जानवरों को चराने की मजबूरी में लोगों ने पेड़ काटने प्रारम्भ कर दिए। सूखे से त्रस्त होकर बच्चे भूख-प्यास से तड़पने लगे और पशुधन पानी-चारे के अभाव में मरने लगा। निराशा गांववासी पानी की तलाश में अपने पुरखों के मकान छोड़कर अन्यत्र चल पड़े। ऐसी स्थिति में उनके पास धरती ही बिछौना था और आकाश ही ओढ़ना।

इस भयावह दुर्भिक्ष के कारणों पर जाम्भोजी ने आत्मचिंतन किया और अनुभव किया कि जिस समय भूमि पर पेड़-पौधों की प्रचुरता थी, तब भूमि में दुर्भिक्ष को सहन करने की क्षमता अपेक्षाकृत अधिक थी, परन्तु वृक्षों को काटने के फलस्वरूप ही आज नि:सहाय अवस्था में इधर-उधर भटकने पर विवश हो गए हैं। अत: यदि गांवों को पनपाना है तो लोगों को पर्यावरण का महत्त्व समझाना होगा और मनुष्य के अस्तित्व हेतु अपनी जीवन-शैली को प्रकृति के अनुरूप ढालना होगा। जाम्भोजी ने अपने विचारों को 29 सूत्रों में सँजोया, इसी कारण इस बीस और नौ सूत्रों को मानने वाले उनके अनुयायी विश्नोई कहलाए। उनकी आचार-संहिता का पालन करने वाले प्रह्लाद-पंथी भी कहलाते हैं। इन सिद्धान्तों में प्रमुख हैं- किसी भी हरे वृक्ष को न काटा जाए और किसी भी जानवर व पक्षी को न मारा जाए। उनके विचार से, दूसरों की हत्या करके जो लोग अपना पोषण करते हैं, वे कर्म से चांडाल हैं। वे कहते थे- जो गाय, भेड़, बकरी दिन-भर जंगल में घास चरकर लौटती हैं और शाम को आकर हमें दूध पिलाती हैं, उन्हें हम मारकर खाते हैं- इससे बड़ा अपराध और क्या हो सकता है? उनकी ऐसी भावनाओं से उत्प्रेरित होकर राजस्थान के लोगों में वन तथा जीवों के संरक्षण की अभिरुचि में वृद्धि हुई है। पशुधन राजस्थान प्रांत का आर्थिक आधार है, वृक्ष वर्षा को निमंत्रण देते हैं- वर्षा से किसानों में खुशहाली आती है। अत: जीवों तथा वृक्षों को सम्मान देने का मूलभूत सिद्धान्त व्यापक रूप से ग्रामीण लोगों को प्रभावित कर सका है।

5.2.1 आत्मोत्सर्ग का अनुपम उदाहरण

श्री जाम्भोजी के समय के 300 वर्षों के बाद उनके विचारों के प्रति लोगों की आस्था की परीक्षा का अवसर आया। जोधपुर के भूतपूर्व महाराजा ने अपने नए महल के निर्माण के लिए 'खेजड़ली' नामक बिश्नोइयों के गांव में खड़े पेड़ों को काटने के आदेश दिए। इस मरुक्षेत्र की वन-सम्पदा में वैसे भी खेजड़ी वृक्ष के महत्त्व को प्राचीन काल से स्वीकारा गया है। यह पेड़ सब्जी के रूप में प्रयुक्त करने हेतु 'खोखा' नामक फलियाँ देता है और जानवरों के लिए इसकी लूँग नामक पत्तियाँ महत्त्वपूर्ण हैं। इन पेड़ की इन्हीं विशेषताओं के कारण यहां के लोकगीत में यह रच-बस गया है। ''सांगरयां की तरकारी स्वाद लागे ए छोटी नणदूली'' तथा ''हाँ ओ ढोला, खोखा री रुत आई, खोखा म्हारो मन ललचायो जी'' जैसे लोकगीत सिद्ध करते हैं कि खेजड़ी मारवाड़ का मेवादायक वृक्ष है। अत: महाराज के आदेश का विश्नोई लोगों ने विरोध किया और विरोध की ओर ध्यान न देने की स्थिति में अमृतादेवी से उत्प्रेरित होकर विश्नोई पेड़ों से चिपक गए, ताकि वृक्षों को काटने से बचाया जा सके। महाराजा के सैनिकों ने विरोध करने वालों पर हमला किया और अमृतादेवी को बलिदेवी पर चढ़ना पड़ा। उनका बलिदान रंग लाया और विश्नोई संप्रदाय के तमाम लोग बड़ी संख्या में वृक्षों से चिपकने लगे। इस प्रकार मरने वालों की संख्या 363 हो गई। विश्व के इतिहास में ऐसा दूसरा उदाहरण नहीं मिलता, जहाँ वृक्षों की रक्षा हेतु मनुष्य ने हँसते-हँसते अपने प्राण न्यौछावर कर दिए हों। जब महाराजा को इस भयंकर दुर्घटना का ज्ञान हुआ तो वे विश्नोइयों के इस दृढ़ संकल्प से सन्न रह गए और राज्य में वृक्षों के संरक्षण को धर्म का दर्जा दे दिया।

सतर के दशक में हिमालय घाटी में वृक्षों को बचाने के लिए चल रहे 'चिपको आन्दोलन' की शुरूआत संभवत: उसी घटना से प्रेरित है। इस आंदोलन में 'खेजड़ली' की ही भाँति महिलाएं भी क्रियाशील थीं। गुरु जाम्भोजी महाराज ने पाँच सौ वर्ष पूर्व ही हरे वृक्षों के महत्त्व को समझते हुए उनकी रक्षा का भार अपने अनुयायियों को वहन करने हेतु उत्प्रेरित कर दिया था। अतएव खेजड़ली को चिपको आन्दोलन का उद्भव माना जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी- जहाँ हरे-भरे पेड़ों की रक्षा हेतु मनुष्य स्वयं कट गए। आज 250 वर्ष बाद भी विश्नोई समाज में वृक्ष-संरक्षण का भाव एक समृद्ध परम्परा के रूप में जीवित है। यह समाज आज भी वृक्षों तथा जीव-जंतुओं की रक्षा उसी जोश के साथ करता है, जैसाकि उन्होंने उस वक्त किया था। यही कारण है कि आज विश्नोई संप्रदाय के गांव हरे-भरे हैं और वहाँ स्वच्छंदता से विचरण करने वाले जानवरों को देखकर उनके गांवों की सहज ही पहचान हो जाती है। विश्नोई गांवों के आस-पास काले हिरण बड़ी संख्या में दृष्टिगोचर होते हैं। आज जहाँ एक तरह वन्य-जीवों की अनेक नस्लें खत्म होने का खतरा बना हुआ है,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

वहीं राजस्थान में विश्नोईयों के गांवों में जीव मात्र का शिकार पूर्णत: वर्जित है। आज विभिन्न पशु-पक्षियों तथा गोडावण जैसे दुर्लभ पक्षी के राजस्थान में उपलब्ध होने का मूल कारण गुरुदेव की शिक्षा का उनके अनुयायियों पर पड़ा अमिट प्रभाव ही है। इस भावना के मुकाबले यदि सरकारी संरक्षण पचास प्रतिशत भी प्रभावी हो जाए तो पर्यावरण व शुद्ध वातावरण को बनाए रखने को आधी समस्या तो निश्चित रूप से हल हो सकती है।

खेजड़ली गांव में भादों मास की दशमी को विश्नोई लोगों का मेला लगता है। कुछ वर्ष पहले शहीदों की याद में वहाँ पर 363 वृक्ष लगाए थे। ये वे शहीद थे, जिन्होंने वृक्षों की रक्षा हेतु अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया। उनके प्रति आस्था प्रकट करने का इससे बढ़कर स्मारक और क्या हो सकता है? जीवों तथा वृक्षों की रक्षा के बढ़ते महत्त्व के साथ जाम्भोजी केवल विश्नोई समाज के ही नहीं, बल्कि समस्त मानव समाज के लिए प्रेरणादायक बने रहेंगे। जाम्भेश्वरजी महाराज की शिक्षाएँ वर्तमान काल में भी पूर्णत: प्रासंगिक हैं। उनकी समाधि बीकानेर जिले के नोखामंडी तहसील से 15 किलोमीटर दूर, पूर्व दिशा की ओर गाँव तालवा-मुकाम में बनी हुई है जो आज भी समूचे विश्व के लिए पर्यावरण-संरक्षण के परिप्रेक्ष्य में प्रेरणास्रोत है और सदा रहेगी।

5.3 चिपको आन्दोलन : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

चिपको आन्दोलन अपने स्वरूप एवं संगठनात्मक रूप से परम्परागत गांधीवादी सत्याग्रह का प्रसार है। इसकी उल्लेखनीय विशेषता यह रही कि वन संरक्षण का यह आन्दोलन स्वतन्त्र भारत में हुआ। पराधीन भारत में हुए जंगल सत्याग्रह व स्वतन्त्र भारत में हुए चिपको आन्दोलन को निरन्तरता गांधीवादी श्रीदेव सुमन, मीरा बेन और सरला बेन ने दी। सर्वोदयी कार्यकर्ताओं का जंगल सत्याग्रह व पर्यावरणीय चेतना विकसित होते-होते 70 के दशक में चिपको तकनीक में परिवर्तित हुआ। चिपको तकनीक (वृक्षों से चिपकने की) वन संरक्षण के लिए प्रथम बार प्रयोग की गई हो ऐसा नहीं है। 1750-51 में जोधपुर नरेश द्वारा नये महल के निर्माण हेतु विश्नोई समुदायिक गांव खेजड़ली में खेजड़ी वृक्षों को काटने हेतु भेजे गये व्यक्तियों का विरोध चिपको तकनीक के द्वारा हुआ था जिसमें स्थानीय महिला अमृतादेवी की प्रेरणा से गांव के 363 व्यक्तियों (स्त्री-पुरूष) ने वृक्षों को बचाने हेतु बलिदान दिया। इस बलिदान से द्रवित होकर जोधपुर नरेश ने विश्नोई समुदाय के गांवों में वृक्षों को न काटने का आदेश दिया।

जिन कारणों से विश्व-प्रसिद्ध चिपको आन्दोलन घटित हुआ, उन कारणों का आधार पराधीन भारत की तात्कालीन सरकार की दोहन पूर्वक नीति में निहित है, जिसके कारण से प्रथमत: जमींदारी प्रथा की शुरूआत के कारण गांव के सार्वजनिक संसाधनों के व्यक्तिगत सम्पति हो जाने से आम ग्रामीण अपनी कृषि व अन्य आवश्यकताओं के कारण वनों की ओर उन्मुख हुआ। इससे वनों के संसाधनों का दोहन प्रारंभ हुआ। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश रॉयल नेवी के जहाज निर्माण व रेलवे-पथ हेतु लकड़ी के स्लीपरों की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु हिमालय के जंगलों का अत्यधिक दोहन हुआ। सर्वप्रथम 1850 में एक अंग्रेज व्यक्ति विल्सन ने तत्कालीन टिहरी राज्य के वनों को मात्र चार सौ रूपये में अनुबन्ध पर लिया तथा देवदार व चीड़ प्रजाति के वृक्षों का अन्धाधुन्ध दोहन शुरू किया। प्रारम्भ में लकड़ी के गट्ठे नदी में बहा दिये जाते थे तथा हरिद्वार में एकत्र किये जाते थे। 1864 में ब्रिटिश राज्य ने अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए टिहरी राज्य के वनों को अगले 20 सालों के लिए अनुबन्ध पर लिया। तब लकड़ी की ढलान के लिए सड़कों की आवश्यकता हुई और इससे हिमालय के पहाड़ का पारिस्थितिकी संतुलन बिगड़ने तथा वनों के विनाश की गति तीव्र हुई।

1895 में टिहरी राज्य ने वनों के असीमित लाभ को देखते हुए वनों का प्रबन्धन पुन: अपने हाथ में ले लिया। तथा वनों का पूर्णत: व्यापारिक उपयोग करना शुरू किया जिस कारण से अन्य स्थानों से ठेकेदार व अन्य लोग आकर वहां की वन सम्पदा को काटकर अपने राज्यों को ले जाने लगे। स्थानीय जनता को इस लाभ में से केवल वृक्षों को काटने का पारिश्रमिक दिया जाता था। 1897 से 1899 तक वनों को सुरक्षित क्षेत्र घोषित किया गया, स्थानीय जनता अपनी मूलभूत आवश्यकताएं- चारा, फल, खाद, ईंधन तथा कपड़ा आदि जो अब तक वनों से पूरी करते थे, इससे वंचित हो गये। इससे जनता में असन्तोष की स्थिति उत्पन्न हुई जिसकी परिणति गढ़वाल तथा कुमाऊं पहाड़ी क्षेत्र में 1905 के जन आन्दोलन में हुई। आन्दोलन के प्रभाव से टिहरी नरेश ने 31 मार्च 1905 को वनों की नीति में परिवर्तन किया फिर भी छुट-पुट रूप से जन-असन्तोष मुखरित होता रहा जिसमें 1907 का आन्दोलन उल्लेखनीय है तब हिंसा के कारण वन अधिकारी सदानन्द गैरोला की मृत्यु हुई तथा टिहरी नरेश कीर्ति शाह के स्वयं लोगों को शान्त करने के लिए जाना पड़ा।

जनता की मूलभूत आवश्यकताओं तथा राज्य की अधिक राजस्व प्राप्त करने की नीति में विरोधाभास निरन्तर बना रहा तथा इसमें तीव्रता झलकने लगी। 1930 में देश उस समय गांधीजी के नेतृत्व में स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ रहा था जबकि उत्तराखण्ड (गढ़वाल व

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कुमाऊं खण्ड) की जनता स्थानीय प्रभावशाली नेता गोविन्द वल्लभ भाई पन्त के नेतृत्व में टिहरी राज्य के प्रति अहिंसक असहयोग कर रही थी। राज्य की नई वन नीति के विरोध में तिलारी क्षेत्र में अहिंसक प्रदर्शनकारियों का हिंसापूर्वक दमन किया गया जिसमें कई सत्याग्रही काल कवलित हो गये व असंख्य घायल हुए। इस घटना ने जन चेतना को और आन्दोलित किया तथा भारत की स्वाधीनता आन्दोलन से प्रेरित हो वहां की जनता राजशाही के विरोध में खड़ी हो गई। सकलाना, बडियागढ़, काराकोट, कीर्तिनगर आदि क्षेत्रों की पंचायत समितियों ने अपने आपको स्वतन्त्र घोषित किया। अन्ततः 1, 1949 को राजशाही का अन्त होकर टिहरी राज्य का भारत में विलय हो गया। जनता की आकांक्षाएं आंशिक रूप से पूरी हुई किन्तु वनों की असीमित आय व भारत की नवनिर्माण व औद्योगिक नीति आदि के कारण हिमालय के क्षेत्र में वनों के दोहन की प्रक्रिया नहीं थमी।

5.3.1 आन्दोलन के सूत्रधार

गांधी जी की दो शिष्याएं मीरा बेन और सरला बेन क्रमशः ऋषिकेश, गढ़वाल व कसौनी, कुमांऊ में सर्वोदयी आश्रम स्थापित कर गांधीवादी मूल्यों व सर्वोदय के लिए कार्य करने लगी। इन्होंने वहां के गांवों के विकास हेतु स्त्री-शिक्षा व पर्यावरणीय चेतना को जागृत कराने हेतु अन्य अनेक कार्यक्रम हाथ में लिए। इनके गांधीवादी मूल्यों के प्रचार व प्रयोग ने वहां की स्थानीय जनता को प्रभावित किया जिसकी परिणति गांधीवादी आदर्शों में विश्वास रखने वाली सर्वोदयी कार्यकर्ताओं की नई पीढ़ी के रूप में सामने आई जिन्होंने चिपको आन्दोलन को आधार उपलब्ध कराया जिनमें सुन्दरलाल बहुगुणा, चन्डीप्रसाद भट्ट, मानसिंह रावत, धूम सिंह नेगी, लोक कवि घनश्याम रतूडी आदि मुख्य हैं। चिपको आन्दोलन गढ़वाल की जनता के अहिंसक प्रतिरोध की परम्परा की ही एक कड़ी है। गांधीवादी व सर्वोदयी कार्यकर्ता 1961 में सरला बेन के नेतृत्व में उत्तराखण्ड सर्वोदय मण्डल में कार्यरत थे, उनका सर्वोदय आन्दोलन मुख्यतः चार बिन्दुओं पर आधारित था- 1. स्त्रियों का संगठन, 2. मद्यनिषेध हेतु कार्य, 3. वन अधिकार हेतु कार्य, 4. स्थानीय वनाधारित उद्योगों की स्थापना।

मद्यनिषेध आन्दोलन की अभूतपूर्व सफलता ने स्त्रियों को संगठित होने के लिए एक महत्त्वपूर्ण आधार प्रस्तुत किया। स्त्रियों को अपनी रचनात्मक शक्ति का भान हुआ। उन्होंने संगठित रूप से रचनात्मक कार्यक्रमों को हाथ में लेना शुरू किया जिससे लड़कियों को शिक्षण-प्रशिक्षण, पर्यावरण संरक्षण हेतु कार्य आदि संभव हुए। अपने वन-अधिकार व पर्यावरण संरक्षण हेतु गढ़वाल, कुमाऊं की जनता ने 30 मई 1968 को तिलारी में स्मृति सभा में एकबद्ध होकर पर्यावरण संरक्षण का वचन लिया। 1970 तक स्त्रियों का संगठनात्मक ढांचा तैयार हो चुका था जिसमें स्वामी चिदानन्द जी, ऋषिकेश के 1972 के एक माह की पदयात्रा के अन्तराल में और दृढ़ता आई। सर्वोदयी कार्यकर्ताओं ने अपने कार्य-क्षेत्र को और बढ़ाया, जिसमें सुन्दरलाल बहुगुणा व चन्ड़ी प्रसाद भट्ट मुख्य थे।

सुन्दरलाल बहुगुणा टिहरी जिले के घनसाली क्षेत्र के निकट सिलयारा गांव तथा चन्डी प्रसाद भट्ट चमोली जिले के गोपेश्वर क्षेत्र में रहते थे। 60 के दशक से ही दोनों अपने सहयोगियों के साथ ग्रामीण क्षेत्रों में पर्यावरण संरक्षण, शिक्षा आदि विषयों पर पूरे उत्तराखण्ड क्षेत्र (गढ़वाल व कुमांऊ) में पदयात्रा द्वारा निरन्तर जन चेतना को जाग्रत कराने का कार्य करते रहे थे। चन्डी प्रसाद भट्ट दशोली ग्राम स्वराज्य संघ के प्रमुख कार्यकर्ता के रूप में वन संरक्षण हेतु कार्य कर रहे थे। इस कार्य में उनके मुख्य सहयोगी अनसूया प्रसाद, चक्रधर तिवारी, मुरारी लाल, कवि घनश्याम रतूडी तथा वनस्पति शास्त्री डॉ. विरेन्द्र कुमार थे। सुन्दरलाल बहुगुणा का कार्यक्षेत्र प्रमुखतः टिहरी आदि क्षेत्र रहा, जहाँ उनके प्रमुख सहयोगी उनको धर्मपत्नी विमला, धूमसिंह नेगी, युवा शिक्षिका शशी, पान्डूरंगा हेगडे (जो बाद में कर्नाटक में अप्पिको आन्दोलन का सूत्रधार बना) आदि थे।

5.3.2 चिपको का प्रयोग

दिसम्बर 1972 में वन संरक्षण हेतु जगह-जगह पर सामूहिक प्रदर्शन किया गया जिसमें 11 दिसम्बर पुरैला, 12 दिसम्बर उत्तरकाशी, 15 दिसम्बर गोपेश्वर आदि प्रमुख प्रदर्शन हैं। इन्हीं प्रदर्शनों के काल में धनश्याम दास रतूडी ने लोक कविताओं के रूप में लोगों को वृक्षों से चिपक कर बचाने का आह्वान किया। इससे 1973 तक वन संरक्षण आन्दोलन में और गति आई। 1974 में चमोली जिले में खेल का सामान बनाने वाली कंपनी ''साइमंड'' को अंगू प्रजाती के वृक्षों को काटने का ठेका दिया गया। कृषि उपकरण बनाने के कार्य आने वाली इस लकड़ी को स्थानीय जनता के लिए निषिद्ध कर दिया गया।

प्रशासन द्वारा रेणी गांव में सैकड़ों एकड़ वनक्षेत्र की नीलामी के निर्णय से उस क्षेत्र में पहले ही असंतोष फैल रहा था। 25 मार्च को वन विभाग द्वारा कटान की आज्ञा प्राप्त होने पर वन-कर्मी व श्रमिक रेणी गांव के लिए रवाना हो गये। जनता में वनों के कटान के प्रति विरोध की स्थिति को देखते हुए जनता के प्रतिरोध को कम करने के उद्देश्य से रेणी और आसपास के ग्रामों के पुरूषों को प्रशासन द्वारा युद्धकाल

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

में ली गई उनकी भूमि के मुआवजे की भरपाई के लिए चमोली बुला लिया गया। दूसरी ओर वनकर्मियों एवं श्रमिकों के रैणी गांव पहुंचते ही खलबली मच गई क्योंकि गांव के सभी पुरूष चमोली जा चुके थे। पुरूषों की अनुपस्थिति में रैणी की एक साधारण महिला गौरा देवी श्रमिकों द्वारा वृक्षों को काटने से रोकने के लिए आगे आई। गौरा देवी ने गांव के घर-घर जाकर लड़कियों-स्त्रियों को प्रतिरोध करने के लिए प्रेरित किया। मुरारीलाल जो कि अस्वस्थ होने के कारण गांव में ही था, वह 27 अन्य स्त्री-लड़कियां गौरा देवी के नेतृत्व में पेड़ों से जाकर चिपक गई। शीघ्र ही अन्य स्थानों से गांव की स्त्रियां आ गई और लगभग 100 की संख्या में स्त्रियों ने गौरा देवी के नेतृत्व में वृक्षों को बचाने के लिए अहिंसक तकनीक चिपको को प्रयोग किया। महिलाओं की उस जागरूकता पर वनकर्मी व ठेकेदार हतप्रभ रह गये। महिलाओं का कहना था, ''ये जंगल हमारा मायका है, इसे हम किसी भी कीमत पर कटने नहीं देगे।'' ठेकेदारों एवं वनकर्मियों ने महिलाओं को बंदूक दिखाकर, धमका डरा कर, लोभ-लालच देकर झुकाना भी चाहा किन्तु सफल नहीं हुए। इस अहिंसक प्रतिरोध का सर्वप्रथम फल उन 60 श्रमिकों (जो वृक्ष काटने आये थे) का हृदय-परिवर्तन था जो स्त्रियों के सामूहिक अहिंसक प्रतिरोध को देखते हुए वहां से चले गये। स्त्रियों ने लगातार 2 दिन व 2 रात तक जंगल को घेरे रखा तथा जंगल में प्रवेश का एकमात्र पुल भी तोड़ दिया।

26 मार्च 1974 की घटना के बाद तो रैणी गांव पूरे चिपको आन्दोलन का कर्मक्षेत्र बन गया। गौरा देवी के इस प्रेरणादायक कदम ने चिपको आन्दोलन को एक नये स्वरूप में ला खड़ा किया। वास्तव में देखा जाय तो गौरा देवी का यह छोटा सा प्रयास ही चिपको की शुरूआत थी। इस घटना के बाद पूरे उत्तरा खण्ड क्षेत्र में वृक्ष संरक्षण हेतु जनता में नवीन उत्साह का संचार हुआ। ग्रामीण क्षेत्रों में चिपको दर्शन व तकनीक के प्रसार को व्यापक बनाने के लिए विमला बहुगुणा, राधा व शशी जैसे कर्मठ कार्यकर्ताओं ने 75 दिन की पदयात्रा आरम्भ की। आन्दोलन को गति प्रदान करने को सुन्दरलाल बहुगुणा ने 2800 किलोमीटर की पदयात्रा का श्रीगणेश किया। इन सब प्रचार-प्रसार से चिपको तकनीक के अहिंसक प्रदर्शन को भव्य सफलता मिली। आन्दोलनकारियों के रूख को देखते हुए उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री ने रैणी गांव के क्षेत्र में वृक्ष काटने पर रोक लगा दी तथा चिपको आन्दोलन के कार्यकर्ताओं को वार्ता हेतु आमंत्रित किया जिसकी परिणति उत्तरप्रदेश वन विकास निगम की स्थापना व ठेकेदारी प्रथा के उन्मूलन से हुई।

वन संरक्षण हेतु चिपको कार्यकर्ताओं व निगम अधिकारियों के संयुक्त प्रयास करने पर सहमति हुई किन्तु सरकारी काम काज के तरीकों, कुछ ऊँची पहुंच वाले ठेकेदारों आदि के कारण उसमें कोई खास सफलता नहीं मिली और चिपको तकनीक के द्वारा समय-समय पर जन-प्रतिरोध मुखरित होता रहा जिसमें मुख्य सालेट क्षेत्र में अडवानी वनों के कटान हेतु धूम सिंह नेगी व ग्रामीण महिला बछनी देवी का दिसम्बर 1977 का विरोध है, जिसमें एक सम्पूर्ण वन क्षेत्र के वृक्षों को कटने से बचाया गया। इसके अतिरिक्त अमरसर, चंचनीदार, डूंगरी, पेनटोली आदि मुख्य हैं। इस अहिंसक आन्दोलन की श्रृंखला मे 9 दिसम्बर, 1979 को सुन्दरलाल बहुगुणा ने बडियारगढ़ वन के क्षेत्र में हरे वृक्षों के काटने के विरोध हेतु आमरण-अनशन आरम्भ कर दिया। प्रतिक्रिया स्वरूप शासन ने बहुगुणा को 22 जनवरी को देहरादून जेल में बन्दी बनाकर भेज दिया। बहुगुणा की अनुपस्थिति में लोक कवि घनश्याम रतूडी व पुजारी किमा शास्त्री के प्रदर्शन को नेतृत्व प्रदान किया जिसमें हजारों श्रमिक बडियारगढ़ वन क्षेत्र पर तब तक धरने पर बैठे रहे, जब तक वृक्षों को काटने वाले श्रमिक आदि वहां से चले नहीं गये। चिपको आन्दोलन को राष्ट्रीय समर्थन मिला व लोकप्रियता बढ़ी। स्वीडन के एक दम्पति इवो इलस्टी और ब्रिगिटा ने अन्तर्राष्ट्रीय प्रेस में इस आन्दोलन को स्थान देकर इसकी अन्तर्राष्ट्रीय जगत में महत्त्वपूर्ण स्थान व जन समर्थन उपलब्ध कराया। 31 मई को सुन्दरलाल बहुगुणा को जेल से मुक्त किया गया। हिमालय क्षेत्र के वनों को संरक्षित क्षेत्र घोषित करने की चिपको कार्यकर्ताओं की मांग सैद्धान्तिक रूप से स्वीकार कर ली गई। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने बहुगुणा से वार्ता उपरान्त हिमालय क्षेत्र में हरे वृक्षों के कटान पर अगले 15 वर्षों तक रोक लगाने का आदेश दिया।

हरे वृक्षों के कटान पर रोक के आदेश से चिपको कार्यकर्ताओं को अपने कार्यों की समीक्षा, आगामी कार्यों की रूपरेखा पर चिन्तन आदि को पर्याप्त अवकाश मिला और चिपको कार्यकर्ता सत्याग्रह के आन्दोलनात्मक पक्ष को सफलता पूर्वक पार कर रचनात्मक कार्यक्रमों की रूपरेखा को आधार देने लगे। इसके साथ ही चिपको आन्दोलन का दूसरा चरण रचनात्मक चरण का प्रारम्भ हुआ।

सुन्दरलाल बहुगुणा ने पर्यावरण संरक्षण, चिपको संदेश को पूरे हिमालय क्षेत्र में प्रचारित करने के उद्देश्य से कश्मीर से कोहिमा तक 4870 किलोमीटर की पदयात्रा आरम्भ की, वहीं दूसरी ओर चन्डी प्रसाद भट्ट ने अपने कार्यक्षेत्र गोपेश्वर में वृक्षारोपण के कार्य को सफलतापूर्वक आगे बढ़ाया। जिन क्षेत्रों में कार्य किया गया वो क्षेत्र आज फिर हरे हो गये हैं, जो कि चिपको आन्दोलन के रचनात्मक पक्ष की महान सफलता है। कार्यकर्ताओं द्वारा अन्य भागों में उपयोगी व्रतों का रोपण आरम्भ किया। चिपको आन्दोलन की तकनीक एवं निष्पति से प्रभावित होकर देश के अन्य क्षेत्रों जैसे अरावली, पश्चिमी घाट तथा मध्य भारत आदि में वहां के स्थानीय लोगों द्वारा पर्यावरण संरक्षण हेतु चिपको तकनीक का प्रयोग कर इस आन्दोलन को और व्यापकता दी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5.3.3 मूल्यांकन

अपने वृहतर स्वरूप में चिपको आन्दोलन न केवल प्राकृतिक पारस्थितिकी संतुलन व संरक्षण के लिए मंच प्रदान करता है, अपितु रचनात्मक कार्यक्रमों को हाथ में लेकर कल्याणकारी स्थानीय आर्थिक व्यवस्था हेतु कार्य करता है। इसके साथ ही स्थानीय जनता में पर्यावरणीय चेतना के प्रति जागरूकता तथा अपने अधिकारों को समझने व मांगने के लिए एक संबल के रूप में कार्य करता है। इस प्रकार की गहन समस्यायें केवल नियम कानून बनाने से नहीं अपितु सामूहिक जन चेतना के सहयोग से हल होती है। इस जन चेतना को जागृत कराने के लिए चिपको कार्यकताओ के शिक्षा प्रसार, स्थानीय वनाधारित औद्योगों की स्थापना, मद्य निषेध आदि कार्यक्रमों ने सहायता की। यह आन्दोलन सामूहिक होने के उपरान्त भी केन्द्रीकृत न होकर छोटे-छोटे समूह में कार्यरत रहा। स्थानीय जनता ने अपने-अपने क्षेत्र का दायित्व स्वयं संभालकर गांधी के ग्राम-स्वराज्य की परिकल्पना को मूर्त रूप दिया। इस आन्दोलन में स्त्रियों की भागीदारी उल्लेखनीय रही। नारी उत्थान के लिए चिपको आन्दोलन ने प्रशंसनीय भूमिका निभाई है। आन्दोलनकर्ता महिलाओं ने महिला मंगल दल बनाकर नारी-शक्ति को संगठित किया। इससे शोषित स्त्रियों को अपनी रचनात्मक शक्ति का भान हुआ जिससे उन्होंने स्कूली शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा, चिकित्सा, उचित काम, जाति भेद मिटाने हेतु कार्यक्रम हाथ में लिए।

चिपको केवल वृक्षों को बचाने का आन्दोलन ही नहीं है अपितु भूमि नीति में आमूल-चूल परिवर्तन की मांग कर स्थायी कल्याणकारी आर्थिक पक्ष (अनाज, चारा, ईंधन, खाद, उर्वरक, कपड़ा) का प्रतिनिधित्व कर अहिंसक सामाजिक संरचना के लिए आधार प्रस्तुत करता है। आन्दोलन के अहिंसक कार्यक्रमों को न केवल राष्ट्रीय अपितु अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त हुई। आन्दोलन के कार्यक्रमों का अंकन करते हुए इसे राइट लाइवलीहुड तथा मैगसैसे एवार्ड मिल चुका है। चिपको के कार्यक्रमों के प्रभाव भारत के अन्य पर्वतीय स्थानों के अतिरिक्त स्विटजरलैण्ड, जर्मनी तथा हौलेण्ड के पर्यावरण संरक्षण आन्दोलन में पाया जाता है। कई स्थानों पर तो चिपको तकनीक को ही दोहराया गया।

चिपको आन्दोलन संसाधन संरक्षण के साथ मानव अस्तित्व के लिए जीवन संरक्षण का दर्शन अपने में निहित किए हुए है। गांधी के अशोषित अहिंसक समाज की परिकल्पना को चिपको आन्दोलन गांधी के मृत्यु की 35 साल बाद नई दिशा देता है। गांधी जी ने कहा ''शान्ति व्यक्तिगत सन्तोष की सामूहिक अभिव्यक्ति है।'' गांधी जी ने पाया कि वास्तविक विकास तो तब ही सम्भव है जब मानव और प्रकृति के बीच प्रेममूलक सम्बन्धों की स्थापना हो। चिपको आन्दोलन का अन्तिम लक्ष्य गांधी जी के सपनों को साकार करना है जिसमें आन्दोलन ने उल्लेखनीय सफलता पाई है।

5.3.4 चिपको आन्दोलन से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण घटनाएं

1946	सरला बेन ने कसौनी कुमाऊं में लक्ष्मी आश्रम स्थापित किया।
1952	मीरा बेन ने ऋषिकेश गढ़गुणा में गोपाल आश्रम स्थापित किया।
1956	बहुगुणा एवं विमला बहुगुणा द्वारा सिल्यारा गांव में गांधीवादी मूल्यों के प्रचार हेतु नवजीवन आश्रम की स्थापना।
1961	उत्तराखण्ड सर्वोदय मंडल की स्थापना, वन अधिकार व मद्य-निषेध हेतु आन्दोलन।
1968	तिलारी गांव में सामूहिक जन-प्रतिरोध, 30 मई को वन दिवस मनाने का संकल्प, स्थानीय व गैर स्थानीय में स्थानीय संसाधनों के उपयोग को लेकर तनाव।
1968-71	सर्वोदय कार्यकर्ताओं द्वारा स्थानीय वनाधारित 13 उद्योगों को कच्चे माल की आपूर्ति हेतु दबाव।
1972	चन्डी प्रसाद भट्ट व घनश्याम रतूडी के नेतृत्व में पुरोला- 11 दिसम्बर, उत्तरकाशी- 12 दिसम्बर तथा गोपेश्वर में 15 दिसम्बर को अहिंसक जन-प्रदर्शन।
1973	प्रदर्शनों व विरोध के कारण वृक्ष न कटने देने की पहली सफलता, सुन्दरलाल बहुगुणा की चिपको तकनीक के प्रचार हेतु उत्तराखण्ड मंडल में 1400 किलोमीटर की पदयात्रा।
1974	रेणी गांव में चिपको तकनीक की भव्य सफलता, रैणी गांव में वृक्ष काटने पर रोक के आदेश, उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री का चिपको कार्यकर्ताओं को वार्ता हेतु आमंत्रण।
1975	विमला बहुगुणा, राधा, शशी द्वारा चिपको के व्यापक प्रसार हेतु 75 दिन की पदयात्रा, बहुगुणा द्वारा 2800 किलोमीटर की पदयात्रा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

चिपको आन्दोलन की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि- ठेकेदारी प्रथा की समाप्ति, उत्तरप्रदेश वन विकास निगम की स्थापना, चिपको कार्यकर्ताओं व निगम अधिकारियों का वन दोहन को बचाने हेतु संयुक्त प्रयास, स्थानीय उद्योगों को कच्चे माल की अधिक आपूर्ति।

1976 चिपको आन्दोलन की शोषण मुक्ति व पारिस्थितिक संतुलन की नई औचित्यपूर्ण व्याख्या, पारिस्थितिक संतुलन के आधार पर शोषण समाप्ति हेतु स्त्रियों की मांग।

1977 पर्यावरण संरक्षण हेतु सरला बेन, डी. डी. पन्त, मुकन्दीलाल, बनारसी दास चतुर्वेदी, एस. डी. पाण्डे द्वारा अपील।

सरला बेन के आश्रम पर सर्वोदयी कार्यकर्ताओं की गोष्ठी, अगले दस साल तक हरे वृक्षों के व्यापारिक उपयोग हेतु कटान को रोकने की मांग।

घूम सिंह नेगी का सालेट में चिपको प्रदर्शन से वृक्षों को बचाने की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि।

1978 हेमवाल घाटी में वृक्षों के काटने हेतु सशस्त्र पुलिस का उपयोग, पर्यावरणविद चिपको आन्दोलन से जुड़े।

1979 9 जनवरी, सुन्दरलाल बहुगुणा का बडियारगढ़ जंगल में हरे वृक्षों के कटान के विरोध में आमरण अनशन का निर्णय।

22 जनवरी, मध्यरात्री को सुन्दरलाल बहुगुणा बन्दी बना देहरादून जेल में स्थानांतरित, बडियारगढ़ में रतूडी और शास्त्री के नेतृत्व में आन्दोलन और तीव्र।

चिपको को राष्ट्रीय लोकप्रियता व जन-समर्थन

इवो इलस्टी और ब्रिगिटा ने अन्तर्राष्ट्रीय प्रेस में आन्दोलन को स्थान दिया।

1981 प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी का हिमालय में रहे वृक्षों के कटान का अस्थायी निषेध।

चन्डी प्रसाद भट्ट का अपने कार्यक्षेत्र में वृक्षारोपण कार्यक्रम की महत्त्वपूर्ण सफलता, बहुगुणा का हिमालय के अन्य भागों में चिपको प्रचार-प्रसार कार्य हेतु निर्णय।

1981-83 भारतीय विज्ञान परिषद् ने चिपको आन्दोलन के समर्थन में प्रस्ताव पारित किया, बहुगुणा ने कश्मीर से कोहिमा तक 4870 किलोमीटर की पदयात्रा की।

1983-84 चिपको हिमालय के अन्य भागों में फैला, कार्यकर्ताओं द्वारा उपयोगी वृक्षों का रोपण।

चिपको भारत के अन्य पर्वतीय क्षेत्रों जैसे अरावली, पश्चिमी घाट तथा मध्य भारत में आदि में फैला।

1984-85 चिपको आन्दोलन ने यूरोप व अमरीका के पर्यावरण आन्दोलनों को उद्दीपन दिया, स्वीटजरलैण्ड में तेजाबी वर्षा के विरोध में पदयात्रा।

1985-86 वन निगम की सूखी व मृत लकड़ी की नीति के विरोध में पूरे उत्तराखण्ड में आन्दोलन एवं चिपको आन्दोलन टिहरी गढ़वाल व दून घाटी में चूने की खानों के खनन को रूकवाने में सफल।

1986 चिपको आन्दोलन ने 640 फीट ऊँचे टिहरी बांध के निर्माण का पारिस्थितिक आधार पर विरोध किया।

5.4 अप्पिको आन्दोलन

कन्नड़ भाषा में अप्पिको का शब्दिक अर्थ ''चिपको'' होता है। अप्पिको आन्दोलन का स्वरूप वही रहा जो उत्तराखण्ड क्षेत्र में चिपको आन्दोलन का रहा। इस आन्दोलन के सूत्रधार श्री पांडुरंग हेगड़े थे, जो कि सत्तर के दशक में सुन्दरलाल बहुगुणा के सहयोगी के रूप में चिपको आन्दोलन में सक्रिय भूमिका निभा चुके थे। चिपको आन्दोलन की सफलता ने उन्हें अपने क्षेत्र (उत्तर कर्नाटक) की जनता की वन समस्या और पर्यावरण संरक्षण के लिए कार्य करने को उद्धत किया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उत्तर कन्नड़ जिले में वन आन्दोलन का बड़ा पुराना इतिहास है। अंग्रेज सरकार की वन आरक्षण नीति के खिलाफ 1831 में जंगल सत्याग्रह हुआ था। तब हुए समझौते में लोगों को कई हक मिले थे जो आज तक जारी हैं। केनरा रियायत हक के अन्तर्गत हर किसान को उसके एक एकड़ खेत के साथ खाद आदि के लिए आठ एकड़ ''बेट्टा'' जंगल मिलता है किन्तु उसके बाद भारत में रेलवे का आगमन, भारत नव निर्माण, औद्योगिक काल आदि के कारण वनों के ह्रास में निरन्तर तीव्रता आती गई। अंधाधुंध कटाई का प्रभाव सबसे पहले 1960 में महसूस होने लगा किन्तु बाद में वह प्रभाव एकदम से बढ़ता गया। चौड़ी पत्ती वाले पेड़ कट गए जिनके पत्ते बारिश के जोरदार थपेड़े से अच्छी मिट्टी की बचाते थे, इससे भूमि भुरभूरी मिट्टी में परिवर्तित हो गई। इससे उस क्षेत्र में जल विजया (यूपेटोरियम) नामक खरपतवार के अतिरिक्त कुछ भी पैदा नहीं होता। वहां के किसानों के अनुसार नदी-नाले अब जल्दी सूख जाते थे तथा बारिश के कम होने के साथ ऐसे रोग और कीड़े होने लगे थे जो पहले कभी नहीं होते थे।

स्थानीय ग्रामीण अपनी दैनिक आवश्यकता - ईंधन, चारा, खाद आदि के लिए वनों पर निर्भर रहते थे। वहां की प्रमुख फसलें- सुपारी, काली मिर्च, इलायची और केला वनों से मिलने वाली खाद पर निर्भर रहती हैं। प्लाइवुड कम्पनी, पेपर मिल, माचिस कम्पनी आदि उद्योगों को वन उपयोग करने की नीति के कारण से आरक्षित वन प्राय: साफ हो गये थे। किसानों को भय था कि आरक्षित वन साफ हो जाने से वन विभाग किसानों को ''बेट्टा'' हक को छीन लेगा। स्थानीय जन असन्तोष के उपरान्त भी सरकारी नीति वनों को बचाने की नहीं अपितु व्यापारिक उपयोग हेतु कार्य में लाने की रही। पान्डुरंगा हेगड़े के अनुसार कर्नाटक वन विभाग कार्य योजना के अनुसार काम नहीं करता था। ठेकेदार ट्रक भर-भर के जो अवैध लकड़ी पार लगा देते थे उस ओर से वह आंखे मूंद लेता था। सरकारी नीति का परिणाम यह रहा कि वेस्ट कोस्ट पेपर मिल लगाने के बाद उत्तर कर्नाटक से बांस का नामोनिशान नहीं रहा। वन विभाग व्यापारिक पेड़ सागौन और सफेदा लगाने के लिए कुदरती जंगलों को खत्म कर रहा था। पश्चिमी नमूने की राष्ट्रीय नीतियों की आलोचना करते हुए श्री पांडुरंग हेगड़े कहते थे कि जंगलों के बड़े-से-बड़े भूभागों को औद्योगिक कच्चे माल के लिए दे देना गलत है। वेस्ट कोस्ट पेपर मिल में 10,000 लोगों और प्लाईवुड कारखानों में 800 लोगों को कुल लगभग 11000 को काम मिला था, पर लाखों लोगों की रोजमर्रा की जरूरतें खतरे में पड़ी थी। इन कुनीतियों के कारण जन असन्तोष मुखरित हुआ किन्तु कुंठा व क्रोध को रचनात्मक क्रिया की ओर उद्दीपन दिया अभय व सत्याग्रह में निहित विश्वास ने। क्रोध व संघर्ष की जगह उन्हें आत्म बलिदान में, सत्याग्रह में अधिक विश्वास रहा, अहिंसा की शक्ति व सफलता का आभास उन्हें था और इस श्रद्धा व विश्वास ने अप्पिको आन्दोलन को जन्म दिया।

5.4.1 अप्पिको के प्रयोग

इस आन्दोलन की शुरूआत 8 दिसम्बर, 1983 को हुई तब लक्ष्मी नरसिंहा युवक मंडली को प्रेरणा से लगभग 180 स्त्री पुरूषों ने कर्नाटक के सिरसी जिले के सालकणी वन क्षेत्र में वन विभाग द्वारा काटे जा रहे वृक्षों को चिपको तकनीक से बचाया तथा वृक्ष काटने वालों को वहां से चले जाने पर मजबूर कर दिया। अप्पिको कार्यकर्ता अगले छह हफ्ते तक उन वनों की रक्षा करते रहे। इस प्रदर्शन के प्रतिक्रिया स्वरूप वन अधिकारियों द्वारा प्रभावित क्षेत्र में जाकर स्थानीय लोगों से वृक्ष काटने से पहले उनकी सलाह लेने की आश्वासन दिया। जनता को विश्वास दिलाया गया कि ''जिले की कार्य योजना के अनुसार सिर्फ 590 वृक्ष काटे जायेगे और बिल्कुल वैज्ञानिक तरीके से काटे जायेगे।'' किन्तु इस आश्वासन पर लोगों को विश्वास नहीं हुआ। इस कारण वन विभाग के अधिकारियों और वैज्ञानिकों के दल के साथ पुन: बैठक करना तय हुआ। लक्ष्मी नरसिंहा युवक मंडली का आग्रह था कि वह जंगल का निरीक्षण करेगी। वैज्ञानिक दल के सदस्य इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस, बंगूलर के प्रो. माधव गाडगिल ने अपनी रिपोर्ट में लिखा, ''हम युवक मंडलियों की आपत्तियों से सहमत हैं कि वृक्ष काटने में दूसरे अनेक वृक्षों को नुकसान पहुंचता है और उचित से अधिक वृक्षों पर काटने के निशान लगा दिये जाते है।'' किन्तु इस पर कोई अनुकूल प्रतिक्रिया वन विभाग द्वारा नहीं दिखाई गई थी। वृक्षों का कटान फिर आरम्भ किया गया, किन्तु अप्पिको कार्यकर्ताओं की जागरूकता व प्रदर्शन से वृक्षों को बचाया जाना संभव हो सका।

कुछ ही महीनों में यह आन्दोलन पड़ोसी जिलों में भी फैल गया। कलसे वन में विमको माचिस को आपूर्ति हेतु कटे जाने वाले वृक्ष अप्पिको द्वारा बचा लिए गए। इसी तरह बेनगांव में जब गांव वालों ने अपना आन्दोलन शुरू किया तो वन विभाग ने प्रतिकूल प्रतिक्रिया स्वरूप वन ठेकेदारों को पुलिस-बल की सहायता लेने का निर्देश दिया। आन्दोलनकारियों के अहिंसक प्रदर्शन के कारण राज्य के वनमंत्री ने उस क्षेत्र में जाकर निरीक्षण किया और कटान को रूकवाने की अनुमति दी। अप्पिको की सफलता से उत्साहित होकर पूरे उत्तर कर्नाटक क्षेत्र में वनों की रक्षा हेतु जनता ने वृक्षों को बचाने की बीड़ा उठाया। कई अन्य स्थानों पर अप्पिको आंदोलनकारियों द्वारा प्रदर्शन किये गये जिसमें हुसरी वन क्षेत्र में 100 स्त्री-पुरूषों का अप्पिको प्रदर्शन, सिद्धपुर तालुका के निदगोद क्षेत्र में 300 व्यक्तियों द्वारा प्रदर्शन, पारसी वन क्षेत्र में 300 व्यक्तियों का प्रदर्शन, बिलगोल वन क्षेत्र में 200 स्त्री-पुरूषों का प्रदर्शन आदि मुख्य हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.4.2 मूल्यांकन

अप्पिको आन्दोलनकर्ताओं ने जनता के रोष को एक आकार दिया, उनकी निराशा को आशा में बदला है। लोग समझ नहीं पा रहे थे कि अपने वृक्षों को कैसे बचायें, पर अप्पिको ने उनमें आशा का संचार कर दिया। अप्पिको आन्दोलन ने तीन सोपानों में पर्यावरण संरक्षण हेतु कार्य किया- वृक्षों के कटान को रोकना, वृक्षों का पुनः रोपण तथा वन संसाधन का विवेकपूर्ण उपयोग। आन्दोलन ने इस हेतु लोगों को शिक्षित करने का अभियान चलाया। आन्दोलनकर्त्ता श्री केशु के अनुसार अप्पिको वन संरक्षण और संवर्धन में लोगों की शक्ति का उपयोग करना और वन संसाधनों का कम से कम उपयोग सिखाता है।

इस आन्दोलन ने स्थानीय जनता को एक मंच पर एकत्रित होकर शोषण तथा अन्याय के विरूद्ध आवाज उठाने के लिए संगठित किया जिसमें महिमाओं की भूमिका प्रमुख है। उत्तर कन्नड़ क्षेत्र में गांव के पुरूष जब वृक्षों का कटान रोकने नहीं निकल पाए तो महिलाएं निकल पड़ी। पांडुरंग हेगड़े के अनुसार करीब 15 गांवों की महिलाएं अप्पिको आन्दोलन के लिए एक-एक मुट्ठी अनाज रोज निकाल कर अलग रख देती हैं। महीने के आखिर में इसे जमा कर के शिविरों या उन लोगों पर खर्च किया जाता है, जो वनो की रखवाली करते हैं। इस आन्दोलन ने ग्रामीण जनता को सहकारिता व सहयोग के मूल्यों से परिचित कराया। परिसर संरक्षण केन्द्र ने पर्यावरण चेतना व शिक्षा के प्रचार आदि के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इसके कार्यकर्त्ता चिपको आन्दोलन के दर्शन से प्रेरित होकर आन्दोलन को बढ़ाये रखे। चिपको आन्दोलन की तरह ही स्थानीय जनता ने केवल ईंधन, चारा आदि को वनों के वास्तविक मूल्यों को न मानकर वास्तविक मूल्यों (भूमि, जल, वायु) पर अपना विश्वास दृढ़ किया जो कि जीवन का आधार प्रस्तुत करता है।

5.4.3 अप्पिको आन्दोलन से संबंधित महत्त्वपूर्ण घटनाएं

8 दिसम्बर, 1983	सालकणी, बेलगड्डे, मोनंदोर आदि क्षेत्रों से 180 स्त्री-पुरूषों का पांच किलोमीटर दूर कालसी वन क्षेत्र में वृक्षों के चिपक कर वृक्ष कटने से बचाये, दक्षिण-भारत क्षेत्र में अप्पिको (चिपको)आन्दोलन फैला।
22 दिसम्बर	वन अधिकारियों द्वारा प्रभावित क्षेत्र में जाकर स्थानीय लोगों से वृक्ष कटने से पहले उनकी सलाह लेने का आश्वासन।
29 दिसम्बर	इसी वन क्षेत्र में पुनः वृक्षों के कटान आरम्भ होने पर आन्दोलन व वृक्षों से चिपकने का प्रदर्शन।
14 अक्टूबर	वन ठेकेदार के श्रमिकों द्वारा वन क्षेत्र से पलायन।
16 अक्टूबर	बेनगान वन क्षेत्र में 60 आदिवासियों द्वारा स्वयं प्रेरणा से वृक्षों से चिपक कर उन्हें कटने से बचाया।
18 अक्टूबर	बेनगान क्षेत्र में 150 व्यक्तियों के समर्थन से आन्दोलन में गति।
23 अक्टूबर	हुसरी वन क्षेत्र में 100 स्त्री-पुरूषों द्वारा वृक्षो से चिपक कर उन्हें कटने से बचाया।
24 अक्टूबर	वन अधिकारियों द्वारा आन्दोलन स्थगित करने के निर्देश की अवहेलना तथा उसके सम्मुख चिपको प्रदर्शन।
11 नवम्बर	अप्पिको आंदोलन संचालनकर्त्ताओं की प्रेरणा से प्रेरित हो सिद्धपुर तालुका के निदगोद क्षेत्र में 300 व्यक्तियों द्वारा चिपको प्रदर्शन से वृक्षों की रक्षा।
12 नवम्बर	स्थानीय प्लाइवुड कम्पनी 51 चिन्हित वृक्षों के स्थान पर 542 वृक्षों के काटने पर प्रतिक्रिया स्वरूप सिद्धपुर तालुका के केलागिन जद्दी वन क्षेत्र में स्थानीय व्यक्तियों द्वारा प्रदर्शन।
25 नवम्बर	पारसी वन क्षेत्र में 300 व्यक्तियों के प्रदर्शन से वृक्षों की रक्षा।
11 दिसम्बर	बिलगोल वन क्षेत्र में 200 स्त्री-पुरूषों द्वारा चिपको प्रदर्शन द्वारा वृक्षों की रक्षा।

5.5 नर्मदा बचाओ आन्दोलन

नर्मदा बचाओ आन्दोलन पर्यावरण संरक्षण की श्रृंखला में एक और अहिंसक आन्दोलन है। बड़े बांधों के निर्माण के साथ पारिस्थतकी संतुलन, पर्यावरण ह्रास, विस्थापितों की समस्यायें (जो कई रूपों में होती है) आदि सामने आती है। प्रस्तावित योजनाओं ने पर्यावरणविद, सामाजिक कार्यकर्ताओं यथा मेधा पाटेकर, बाबा आमेट, वंदना शिवा, बहुगुणा आदि को पर्यावरण संरक्षण व विस्थापितों की समस्या हेतु कार्य करने को उद्वेलित किया जिसकी परिणति मध्य भारत क्षेत्र में नर्मदा बचाओं आन्दोलन में हुई।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5.5.1 नर्मदा नदी- परिचय

नर्मदा नदी शहडोल जिले के अमरकण्टक (22° 40 ऊ, 80° 45 पू.) से 1051 मीटर की ऊँचाई से निकलकर भडोच (21° 43 उ., 72° 57 पू.) के निकट खंभात की खाड़ी में गिरती है। इसकी कुल लम्बाई 1312 किलोमीटर है। यह 1077 किलोमीटर तक मध्यप्रदेशस के शहडोल, मण्डला, जबलपुर, नरसिंहपुर, होशंगाबाद, खण्डवा तथा खरगोन जिलों से होकर बहती है। इसके बाद 74 किलोमीटर तक महाराष्ट्र को स्पर्श करती हुई बहती है, जिसमें 34 किलोमीटर तक मध्यप्रदेश के साथ और 40 किलोमीटर तक गुजरात के साथ महाराष्ट्र की सीमाएं बनाती है। खंभात की खाड़ी में गिरने से पहले लगभग 161 किलोमीटर गुजरात में बहती है। इस प्रकार इसके प्रवाह-पथ में मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र और गुजरात- तीन राज्य पड़ते हैं। नर्मदा का कुल-संग्रहण क्षेत्र 98,799 वर्ग किलोमीटर है जिसमें से 88.02 प्रतिशत क्षेत्र महाराष्ट्र में और 8.67 प्रतिशत क्षेत्र गुजरात में हैं। नदी के कछार में 160 लाख एकड़ भूमि खेती के लायक है, जिसमें 144 लाख एकड़ अकेले मध्यप्रदेश में है एवं शेष महाराष्ट्र और गुजरात में है।

5.5.2 विकास की योजनाएं :

नर्मदा नदी की विशाल जलराशि का स्वातंत्रयपूर्व भारत में सिंचाई या जल-विद्युत-उत्पादन के लिए उपयोग नहीं किया जा सका। छोटी-मोटी देशी राज्यों और रिसायतों में ऐसा सामर्थ्य कहां था कि वे नर्मदा को बांध पाते? स्वतन्त्रता पश्चात खाद्यान्न-उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त कर राष्ट्र ने विदेशी अवलम्बन से मुक्ति पाने का जो संकल्प किया, उसी का यह परिणाम था कि अर्थशास्त्रियों और योजनाकारों का ध्यान नर्मदा घाटी की ओर गया। परिणामस्वरूप, नर्मदा की लोक-कल्याण शक्ति का दोहन करने की हितग्राही राज्यों द्वारा एक साथ अनेक योजनाएं बनाई जाने लगीं।

नर्मदा जिन तीन राज्यों से जल संगृहीत कर प्रवाहित होती है उनकी समस्त भौगोलिक तथ्यों, सिंचाई योग्य भूमि की उपलब्धता आदि बातों को ध्यान में रखते हुए राज्यों में किसे कितना पानी उपयोग में लाने की अनुमति मिले, इसका विनिश्चय अन्ततोगत्वा एक न्यायाधिकरण को सौंपा गया। नर्मदा-न्यायाधिकरण ने यह निर्णय दिया कि सिंचाई के उपयोग में आ सकने वाली नर्मदा की जलराशि 2800 मिलियन एकड़ फुट है और उसका बंटवारा इस प्रकार किया जाना चाहिए :-

मध्यप्रदेश	18.25 मि.ए.फु.
गुजरात	9.00 मि.ए.फु.
महाराष्ट्र	0.25 मि.ए.फु.
राजस्थान	0.50 मि.ए.फु.

उल्लेख है कि राजस्थान में नर्मदा का कोई जलग्रहण क्षेत्र नहीं है तथापि राजस्थान में जल और सिंचाई सुविधाओं की कमी को देखते हुए शेष तीनों राज्यों ने यह निश्चय किया कि गुजरात के रास्ते राजस्थान को 0.50 मि.ए.फु. पानी का उपहार दिया जाए। न्यायाधिकरण ने इस सर्वसम्मत प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए राजस्थान को भी नर्मदा के पानी का हिस्सेदार बना दिया।

सम्भावनाओं का परिदृश्य (नर्मदा घाटी की परियोजनाएं)

मध्यप्रदेश ने अपने हिस्से पानी का उपयोग निम्नानुसार 3700 वृहत्, मध्यम तथा लघु सिंचाई योजनाओं के माध्यम से करने की योजना बनाई है।

परियोजना का स्वरूप	*संख्या*	*लागत (अनुमानित) करोड़ रूपये*	*सिंचाई क्षमता प्रति लाख हेक्टर*
बृहद्	29	4081.52	14.08
मध्यम	441	1671.86	8.94
लघु	3230	830.00	4.53
	3700	**6583.38**	**27.55**

1986 के आकड़े के अनुसार अब यह लागत परियोजना पूर्ण होने तक 25000 करोड़ रूपए से अधिक आंकी जा रही है।[32]

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इन परियोजनाओं का विस्तृत स्वरूप निम्न है :-

बृहत् परियोजना से अभिप्राय 10,000 हेक्टर से अधिक की सिंचाई क्षमता वाली परियोजना है। मध्यम परियोजना वह मानी जाती है जिसकी सिंचाई क्षमता 2000 हेक्टर से 10,000 हेक्टर के बीच हो। 2000 हेक्टर से कम सिंचाई क्षमता की परियोजना लघु परियोजना मानी जाती है। इन परियोजनाओं का विवरण निम्नानुसार है-

5.5.2.1 बृहद् परियोजनाएं

क्र.	परियोजना का नाम	लागत (अनुमानित) करोड़ रू.	क्षमता सिंचाई लाख हेक्टर	जल विद्युत उत्पादन मेगावाट	सिंचाई से लाभान्वित होने वाले जिले जिले का नाम	क्षेत्र लाख हेक्टर	योजना पूर्ण हो चुकी है या प्रगति पर है।
(क) पूर्ण और निर्माणधीन वृहद् परियोजनाएं							
1.	तवा	98-56	2-47	-	होशंगाबाद	2-47	पूर्ण हो चुकी है।
2.	बारना	15-73	0-61	-	रायसेन, सीहोर	0-61	पूर्ण हो चुकी है।
3.	सुकता	11-89	0-19	-	खंडवा	1-99	प्रगति पर
4.	बरगी	412-40	1-99	90	जबलपुर, नरसिंहपुर	1-99	प्रगति पर
5.	कोलार	61-15	0-26	-	सिहोर	0-26	प्रगति पर
6.	मान	49-10	0-15	-	धार	0-15	प्रगति पर
(ख)सर्वेक्षित बृहद् परियोजनाएं जिसकी स्वीकृति विचारधीन है-							
1.	इंदिरा सरोवर	1392-85	1-23	1000	खरगौन	1-13	
2.	आंकारेश्वर	649-37	1-29	390	खरगौन	0-22	
					धार	1-07	
3.	महेश्वर	236-26	-	200	-	-	
4.	जोबट	35-35	2-45	-	धार	0-098	
5.	बरगी	574-00	2-45	-	जबलपुर	0-818	
(ग) सर्वेक्षणाधीन बृहद् योजनाएं							
1.	अपर नर्मदा	24-39	0-19	50	मुण्डला	0-19	
2.	अपर बुरनेर	11-62	0-10	60	-	-	
3.	राघवपुर	9-15	-	20	-	-	
4.	रोसरा	9-01	-	35	-	-	
5.	बसानिया	83-62	-	60	-	-	
6.	हलोन	18-08	0-10	-	बालाघाट	0-10	
7.	घोबाटारिया	14-28	0-11	-	मण्डला	0-10	
8.	अटारिया	21-48	0-11	-	जबलपुर	0-11	
9.	चिंकी	76-57	0-64	-	सागर	0-64	
10.	शेर						
11.	शक्कर	93-23	0-59	-	नरसिंहपुर		
12.	मछरेवा						
13.	सीतारेवा	4-01	-	15	-	-	
14.	दुधी	42-36	0-46	-	नरसिंहपुर	0-46	
15.	मुरांड-गंजाल	64-10	0-46	-	होशंगाबाद	0-48	
16.	छोटा तवा	29-37	0-19	-	खण्डवा	0-19	
17.	अपर बेडा	20-48	0-10	-	खरगौन	0-10	
18.	लोवर गोई	22-79	0-10	-	धार	0-10	

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

नोट :-

1. मालवा क्षेत्र में नर्मदा का पानी ले जाने हेतु महेश्वर के पास एक उद्‌वहन परियोजना प्रस्तावित है। इसका सर्वेक्षण किया जा रहा है।
2. नर्मदा नदी में गुजरात राज्य में निर्माणाधीन सरदार सरोवर परियोजन एक अन्तर्राष्ट्रीय बृहद् सिंचाई और जल विद्युत परियोजना है। इससे गुजरात में 20 लाख हेक्टर भूमि में सिचाई होगी तथा एक 500 किलोमीटर लम्बी नहर के माध्यम से राजस्थान को 0-50 मिलयन एकड़ फुट पानी उपलब्ध होगा। इस परियोजना में 1450 मेगावाट बिजली पैदा करने की स्थापित क्षमता होगी जिसमें से 57 प्रतिशत (अर्थात् 826 मेगावाट) म.प्र. को, 16 प्रतिशत (अर्थात् 232 मेगावाट) गुजरात को तथा 27 प्रतिशत (अर्थात् 392 मेगावाट) बिजली महाराष्ट्र को मिलेगा। योजना के वर्ष 2021 तक पूर्ण होने का अनुमान है।

5.5.2.2 मध्यम तथा लघु सिंचाई परियोजनाएँ

क्र.	परियोजनाओं की स्थिति	मध्यम परियोजनाएं संख्या	अनुमानित लागत करोड़ रु.	सिंचाई क्षमता लाख हेक्टर	लघु परियोजना संख्या	अनुमानित लागत करोड़ रु.	सिंचाई क्षमता लाख हेक्टर
1.	पूर्ण परियोजनाएं	27	6.10	0.34	959	260.00	1.30
2.	निर्माणाधीन परियोजनाएं	8	21.76	0.38	45	8.00	0.04
3.	सर्वेक्षणाधीन परियोजनाएं	406	1644.00	8.22	2226	562.00	3.19
	योग	**441**	**1671.86**	**8.94**	**3230**	**830.00**	**4.53**

इन परियोजनाओं के क्रियान्वित हो जाने पर मध्यप्रदेश में, नर्मदाघाटी के अन्तर्गत 27.55 लाख हेक्टर भूमि की सिंचाई की क्षमता निर्मित होगी और 1920 मेगावाट जल-विद्युत उत्पादन क्षमता का सृजन होगा। इस प्रकार, विभिन्न परियोजनाओं के कार्यान्वित हो जाने पर नर्मदाघाटी के अन्तर्गत मध्यप्रदेश में 27.55 लाख हेक्टर भूमि में सिंचाई क्षमता निर्मित होगी तथा राज्य को जल-विद्युत-उत्पादन क्षमता में 1920 मेगावाट की वृद्धि होगी। न्यायाधिकरण ने वर्ष 1978 में दिये गये अपने निर्णय में यह अपेक्षा भी की थी कि हितग्राही राज्य 45 वर्ष के अन्दर अपने-अपने हिस्से के पानी का उपयोग कर लेंगे अन्यथा अनुपयुक्त पानी का आवश्यकतानुसार पुनः बंटवारा किया जा सकेगा। मध्यप्रदेश में अब तक लगभग 26.5 लाख हेक्टर भूमि में शासकीय सिंचाई-परियोजनाओं के माध्यम से सिंचाई क्षमता निर्मित हो चुकी है, जिसमें नर्मदा की सहायक नदियों पर अभी तक बनाए गये बांधों की सिंचन क्षमता 3.27 लाख हेक्टर शामिल है। नर्मदा या उसकी सहायक नदियों पर अभी तक कोई जल-विद्युत-उत्पादन-परियोजना पूर्ण नहीं हुई है।

इस प्रकार यह परियोजना पूर्ण होने पर जो लाभ देगी वह इस प्रकार है :

1. कुछ लाख हेक्टर भूमि की सिंचाई हेतु जल उपलब्ध होगा,
2. कुछ हजार घरों और उद्योगों को जलापूर्ति होगी।
3. कुछ हजार मेगावाट बिजली उत्पन्न होगी।
4. मध्यप्रदेश के आर्थिक रूपान्तरण का प्रयोग।

5.5.3 समस्यायँ

परियोजनाओं के पूर्ण होने से 3.75 लाख हेक्टर भूमि जिसमें सागवान व बांस की उन्नत प्रजाति के वृक्ष है, पानी में डूब जायेगी। लगभग 80,000 हेक्टर उन्नत कृषि भूमि पानी में डूब जायेगी। 326 गांवों के कई लाख लोगों के विस्थापित होने की आशंका है, जिनके

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पुर्नस्थापना पर लगभग 200 करोड़ रूपये व्यय होने की आशा है। इस परियोजना के सबसे ज्यादा प्रभावित क्षेत्र के आदिवासी जैसे भील, भिलाडा, गौड, कोर्कुसस, कीर, भैया आदि होंगे। परियोजना उनके सम्पूर्ण जीवन क्रम को विनष्ट कर देगी जिससे कई नये सामाजिक व मनोवैज्ञानिक दुष्प्रभाव होंगे, जो उस क्षेत्र के पर्यावरण के अधिक ह्रास का कारण बनेंगे। परियोजना क्षेत्र में आने वाले कई प्रमुख धार्मिक स्थान के भी पानी डूबने की आशंका है जिसके प्रतिफल धार्मिक, मनोवैज्ञानिक तनाव आदि के रूप में सामने आयेंगे।

नर्मदा परियोजना से जो समस्यायें सामने आ रही हैं वो मुख्यत: निम्न हैं-

1. पर्यावरण ह्रास

2. विस्थापन समस्या

3. सांस्कृतिक समस्या (विस्थापन व अन्य बातों से जुड़ी हुई)

टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ सोशल साइंस व सेन्टर फॉर सोशल स्टडीज जैसी गैर सरकारी सस्थाओं के इस क्षेत्र के अध्ययन से आर्थिक, सामाजिक, परिवारिक, मनोवैज्ञानिक समस्याओं का दुरूह रूप सामने आया है। बाबा आमटे के अनुसार, ''आर्थिक विकास के नाम पर प्राकृतिक सौन्दर्य को बर्बाद किया जा रहा है। जन-जातियों को अपने स्थान से उखाड़ा जा रहा है। पुन: प्राप्त न होने वाले प्राकृतिक स्रोतों को बिना सोचे समझे नष्ट किया जा रहा है। नर्मदा सरोवर परियोजना हमारे समय के विरोधाभास की प्रतीक है। मानव, वृक्षों की तरह गहरी जड़े रखते हैं, उन्हें एक जगह से उखाड़कर दूसरी जगह नहीं रोपा जा सकता।

इसके अतिरिक्त नर्मदा योजना में वन और विस्थापन के अलावा ढेर सारे तकनीकी विवाद भी हैं। इतनी बड़ी-बड़ी कृत्रिम झीलों से इस भाग में भूकंप आयेंगे या नहीं, काली मिटटी का इलाका नहर सिंचाई से कहीं दलदल में तो नहीं बदल जायेगा, बाढ़ के दिनों में तनाव (बैक वाटर) कितना ऊँचा उठा करेगा आदि। तनाव (बैक वाटर) यानि बाढ़ के समय पीछ पलटकर लगातार उठने वाला जलस्तर। बड़े बांधों के कारण नदी का जलस्तर काफी ऊपर उठ जाएगा।

तब जब भी बाढ़ आयेगी, तब नर्मदा में जो असंख्य सहायक नदियां और नाले मिलेंगे, उन सबमें पानी का स्तर मुख्य धारा के बढ़ते जलस्तर के कारण लगातार अपने किनारे तोड़कर आसपास के खेत, घर, रास्तों को अपने में लपेटेगा। नर्मदा नदी के पानी को ध्यान में रखकर जो सारी परियोजनाएं बनाई गई थी, वो अनुमानित 280 लाख फुट पानी पिछले कुछ वर्षों में घटकर 230 लाख फुट रह गया है। पानी की कमी के कारण ऊँचे बांध रीते रह जायेंगे। नदी के पनढाल (जलागम) क्षेत्रों में एक तो बड़े बांधों के कारण पश्चिमी मध्यप्रदेश का कोई 43,064 हेक्टर वन डूबेगा और बचा हुआ पनढाल इतनी बुरी तरह नंगा किया जा चुका है कि यह अब बांधों में गाद भरने का ही काम करेगा। धीरे-धीरे इससे उस बिजली पर भी असर पड़ेगा जिस बनाने के लिए यह सारा तमाशा खड़ा किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त इन भीमकाय बांधों के सरोवरों से इन क्षेत्र में भूकंप आने की संभावनाएं बढ़ती है। वैसे भी नर्मदा घाटी में खरगोन के पास सेंधवा में पिछले 137 बरस में पांच बार भूकंप आया है।

5.5.4 अहिंसक प्रतिरोध

बड़े बांधों के कारण निश्चय ही प्रकृति का स्वरूप बिगड़ता है। प्रकृति के गुण-धर्म इतने जटिल और अज्ञात हैं कि पर्यावरण पर जो प्रभाव पड़ता है और जो परिणाम सामने आते हैं, वे अपेक्षित लाभों की तुलना में बहुत ज्यादा गंभीर और घातक होते हैं। इस तरह के घातक प्रभाव समाज व संस्कृति को अवनति की ओर ले जाते हैं किन्तु राष्ट्र की, समाज की चेतना समान नहीं रहती। इतिहास गवाह है कि समय-समय पर कुनीतियों का प्रतिरोध होता रहता है। यह प्रतिरोध कभी परिस्थितियों, पर्यावरण के आधार पर कभी हिंसक होता है, कभी अहिंसक होता है। ''नर्मदा बचाओ आन्दोलन'' भी इसी अहिंसक प्रतिरोधों की श्रृंखला में एक और कड़ी है जो कुविकास की नीतियों का अहिंसक प्रतिरोध कर रही है।

इस आन्दोलन ने नर्मदा नदी पर बनने वाले बांधों के कारण उत्पन्न समस्याओं, पर्यावरण समस्याओं व पुन: वनीकरण व विस्थापितों की समस्याओं से संबंधित प्रमुख मुद्दे उठाये हैं। इस आन्दोलन में सक्रिय रूप से कई प्रबुद्ध पर्यावरणविदों एवं समाजशास्त्रियों के अतिरिक्त टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ सोशल साइंस, सेन्टर ऑफ सोशल स्टडीज, मार्ग, गुजरात छात्र युवा संघर्ष वाहिनी वाहिनी आदि प्रमुख गैर सरकारी संस्थाओं ने प्रभावित क्षेत्रों में सर्वे, अध्ययन आदि कर समस्याओं को पूर्ण रूप से समझने में सहायक की है। इसके अतिरिक्त इन संस्थाओं ने ग्रामीण आदिवासियों को अपने अधिकारों के प्रति शिक्षित कर जागरूक बनाया है। उस क्षेत्र के ग्रामीणों द्वारा किये गये प्रतिरोध का उल्लेख किये बिना ''नर्मदा बचाओ आन्दोलन'' का इतिहास अधूरा ही रह जायेगा। जिन्होंने अपनी संस्कृति व पर्यावरण की

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

रक्षा के लिए अपने जीवन का बलिदान दे दिया। नर्मदा बचाओ आन्दोलन में सत्याग्रह के आन्दोलनात्मक व रचनात्मक दोनों रूपों का दर्शन होता है। इस आन्दोलन में मुख्यत: निम्न कार्यक्रमों को विभिन्न चरणों में अपनाया गया :-

1. नर्मदा क्षेत्र में उत्पन्न समस्याओं के विरोध में जनमत निर्माण।
2. जन चेतना को जागृत कराने का उपक्रम।
3. ग्रामीण जनता को शिक्षित करने का कार्यक्रम।
4. बातचीत के द्वारा समस्या समाधान का प्रयास।
5. अहिंसक प्रतिरोध- रैली, प्रदर्शन, अनशन, जल-समाधी आदि का प्रदर्शन।
6. रचनात्मक कार्यक्रम- शिक्षा, सेवा, सहायता, संगठन आदि।
7. वैकल्पिक कल्याणकारी योजनाएं प्रस्तुत करना।

बांध निर्माण के विरोध में मणिबेली नर्मदा बचाओ आन्दोलन का प्रतीक बन गया। 1972 में जब बांध की दीवारों की ऊंचाई केवल चालीस मीटर तक पहुंची थी तो मणिबेली की सबसे ऊँची झोपड़ी की दहलीज तक पानी पहुंच गया था। 1993 के मानसून में जब बांध की ऊँचाई 61 मीटर थी तो पूरी मणिबेली एक टीले और उस पर बने एक-आध कच्चे मकान को छोड़कर डूब गई। तब गांव के लोगों ने आन्दोलनकर्ताओं के साथ जल-समाधि लेने का निश्चय किया। बाबा आमटे के अनुसार वहां की स्त्रियों ने तय किया कि डूबेगे किन्तु स्थान नहीं छोड़ेगे। मेधा पाटेकर ने भी बांध स्थल पर जल समाधि लेने का निर्णय लिया, किन्तु तत्कालीन केन्द्र व प्रदेश सरकार के हस्तक्षेप व आश्वासन के बाद निर्णय बदल दिया गया। बाद में आन्दोलन की मांगे मनवाने के लिए उन्होंने दिसम्बर 1994 में क्रमश: 22 व 16 दिन का अनशन किया, मांगे इस प्रकार थी।

1. बांध निर्माण का पूर्ण विरोध
2. नर्मदा वाटर डिस्प्यूट ट्राइब्यूनल की सिफारिशें मानने के लिए सरकार से मांग।
3. पर्यावरण नीतियों के उल्लंघन पर रोक की मांग।

इस परियोजना के अन्तर्गत तवा परियोजना के क्षेत्र में बांध के कारण मिट्टी टूट-टूट कर बहने से रोकने के लिए तवा परियोजना के अधिकारियों ने लगभग 700 ट्यूबवेल लगवाये ताकि क्षेत्र से पानी निकाला जा सके। मिट्टी क्षरण के विरोध में होशंगाबाद की स्थानीय जनता ने प्रसिद्ध प्रतिरोध ''मिट्टी बचाओ अभियान'' के नाम से किया जिसमें-

1. लगभग 30 गांवों में जन चेतना जागृत कराने हेतु पदयात्रा
2. प्रत्येक ग्रामों में सर्वे करने व कार्य योजना बनाने हेतु किसान समितियों का गठन।
3. पोस्टकार्ड प्रदर्शन- इसके अन्तर्गत प्रत्येक ग्राम के किसान ने प्रति दिन अपनी समस्याओं से अवगत कराने हेतु कलक्टर को पोस्टकार्ड भेजा।

गैर सरकारी संस्थाओं ने बांध विरोध तथा समस्या समाधान हेतु अपनी सीमाओं में काफी उल्लेखनीय कार्य किया है जिसमें मुख्यत: गुजरात सरकार को विस्थापितों को उचित मुआबजा दिलाने हेतु दबाव डालना तथा अपने उद्देश्य में सफल होना, गुजरात छात्र युवा संघर्ष वाहिनि द्वारा क्षेत्रीय ग्रामीणों को संगठित तथा शिक्षित करना, सेन्टर फॉर सोशल स्टडीज तथा टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ सोशल साइंस द्वारा घर-घर जाकर सर्वे व अध्ययन करना आदि है। ''नर्मदा बचाओ आन्दोलन'' को गति देने व जन समर्थन दिलाने में गैर सरकारी संस्थाओं का काफी योगदान है।

5.5.5 वैकल्पिक योजनाएँ

ग्रामीण विकास के लिए जमनालाल पुरस्कार से सम्मानित प्रेमभाई ने भूमि संरक्षण विशेषज्ञ पी. आर. मिश्रा की प्रेरणा से मिर्जापुर जिले में लगभग 750 छोटे बांधों के निर्माण से बड़े बांधों का एक विकल्प प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार छोटे बांधों ने जल उपयोग, कृषि उत्पादन विकास व पारिस्थितकी संतुलन हेतु महत्त्वपूर्ण कार्य किया। ये छोटे बांध मात्र 60,000 की लागत से बनकर लगभग 40 एकड़ क्षेत्र को सिंचित करने की क्षमता रखते हैं। इन छोटे बांधों (बंधी) के निर्माण से उस क्षेत्र के चारा व अनाज उत्पादन में क्रमश: 60 प्रतिशत व 40 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय, रूड़की विश्वविद्यालय ने शोधोपरान्त कई लघु विद्युत युनिट तथा पनचक्की को 5 किलोवाट का विद्युत युनिट बनाने का सफल प्रयोग किया है।[41]

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

''नर्मदा बचाओ आन्दोलन'' के समर्थकों ने भी एक वैकल्पिक योजना पेश की है। मेधा पाटेकर के अनुसार- ''बांध बनाना रोक दो, हम गांव जाकर पानी निकालने का आन्दोलन करेंगे।'' पन्द्रह वर्ष में यह वैकल्पिक योजना सरदार सरोवर की प्रस्ताविक लागत के हजारवें से भी कम हिस्से में वही काम करेगी जो सरदार सरोवर के शिल्पी करना चाहते हैं। गुजरात से अमेरिका जाकर बसे एक इंजिनियर अश्विन शाह की योजना अनुसार गांव-गांव में पंचायती तालाब बनाने हैं। बारिश के पानी को एकत्र करने की योजनाएं बनानी है और स्थानीय ऊर्जा के लिए पवन चक्कियां लगानी है। बड़े मंझोले बांधों से ही यदि रास्ता निकलना होता, प्यास बुझनी होती, सिंचाई होनी होती, तो अकेले गुजरात में ही 131 बांध पहले से ही हैं। आवयकता प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग की है तभी इन प्रकार की समस्याओं का समाधान निकलना संभव है।

5.6 मूल्यांकन

''नर्मदा बचाओ आन्दोलन'' संस्कृति, समाज एवं पर्यावरण की रक्षा का एक अभूतभूर्व अहिंसक आन्दोलन है जिसने स्थानीय आदिवासियों व ग्रामीणों को अपने मूलभूत अधिकारों के लिए शिक्षित व संगठित किया। पर्यावरण संरक्षण व पुनः वृक्षारोपण के कार्यक्रमों को हाथ में लेकर क्षेत्रीय पारिस्थितकी संतुलन के लिए अपनी सफल सेवाएं दी है। आन्दोलन ने विभिन्न रूपों में अपनी सक्रियता दर्शाई है। सरकार से बांध निर्माण संबंधी बातचीत व विरोधी, ग्रामीण जनता से उनकी समस्याओं के निराकरण हेतु कार्य व पर्यावरण चेतना जागृत कराने व जनमत निर्माण आदि विभिन्न कार्यक्रमों को एक साथ व्यवस्थित रूप से अपनाकर अल्प काल में ही अहिंसक आन्दोलन के रूप में विश्व ख्याति अर्जित की है। आन्दोलनकर्ताओं के कार्यों का अंकन करते हुए उन्हें मैग्सेसे अवार्ड से सम्मानित किया गया है। ''नर्मदा बचाओ आन्दोलन'' गरीबी, बेरोजगारी, विस्थापन, इतिहास के विदूषण, पर्यावरण ह्रास आदि के विरूद्ध सांकेतिक अहिंसक संघर्ष है।

5.7 अभ्यास प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. चिपको आन्दोलन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं महत्त्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन करे
2. अप्पिको आन्दोलन पर एक विस्तृत आलेख लिखे
3. नर्मदा नदी एवं इससे जुड़ी विकास की योजनाओं का विस्तार से वर्णन करे
4. नर्मदा बचाओं आन्दोलन से जुड़ी समस्याओं एवं वैकल्पिक योजनाओं का वर्णन करे

लघु निबन्धात्मक प्रश्न

1. विश्नोई आन्दोलन का परिचय दें
2. चिपको आन्दोलन के सूत्रधारों का वर्णन करे
3. चिपको आंदोलन का मूल्यांकन लिखें
4. नर्मदा बचाओ आन्दोलन में हुए अहिंसक प्रतिरोध का वर्णन करे

बहु वैकल्पिक प्रश्न

1. विश्नोई आन्दोलन में कितने लोगों ने आत्मोसर्ग किया था।
   (अ) 363 (ब) 405 (स)701
2. विल्सन ने टिहरी राज्य के वनों को कितनी राशि में अनुबन्ध पर लिया था
   (अ) 400 रु (ब) 4000 रु (स) 40000 रु
3. अप्पिको आन्दोलन की कब शुरुआत हुई थी?
   (अ) 1983 (ब) 1985 (स) 1986
4. नर्मदा नदी से जुड़ी कितनी परियोजनाएं हैं?
   (अ) 3700 (ब) 4000 (स) 3200

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जैन विश्वभारती संस्थान

ykMu¡ &341306 ¼jk t LFkku½

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

स्नातक (तृतीय वर्ष)

विषय : अहिंसा एवं शांति

प्रथम पत्र :

अहिंसा एवं शान्ति को समर्पित संस्थान एवं आन्दोलन

संवर्ग

संवर्ग 1 — संयुक्त राष्ट्र एवं उसके अभिकरण

संवर्ग 2 — नोबल शांति पुरस्कार संस्था, स्टॉकहोम अन्तर्राष्ट्रीय शांति शोध संस्थान, सर्वसवेा संघ एवं अणुव्रत विश्व भारती

संवर्ग 3 — परावाश आंदोलन, बस आंदोलन, ग्रीनपीस आन्दोलन

संवर्ग 4 — भूदान-ग्रामदान, सम्पूर्ण क्रान्ति, सप्तक्रान्ति

संवर्ग 5 — विश्नोई आंदोलन एवं चिपको, अपिको एवं नर्मदा बचाओ आंदोलन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

fo'k"kK lfefr

1- iks- jk/kkÑ".k] fnYyh

2- iks- t;iznk'ke] enjbZ

3- iks- t-,u- 'kek] p.Mhx<

4- iks- cPNjkt nxM] ykMuw

5- Mk- vfuy /kj] ykMuw

6- Mk- lR;iKk] ykMuw

---

y[kd

डॉ. अनिल धर

lEiknd

iks- f'koukjk;.k tks'kh

dkihjkbV

tSu fo'oHkkjrh fo'ofo|ky;] ykMuw

uohu laLdj.k % 2014

eqfnzr izfr;k % 500

izdk'kd %

जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय, लाडनूँ–341 306 (राजस्थान)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पाठ्यक्रम

स्नातक (बी.ए.) तृतीय वर्ष

विषय : अहिंसा एवं शांति

प्रथम पत्र : अहिंसा एवं शांति को समर्पित संस्थान एवं आन्दोलन

अ. संस्थान एवं संगठन

संवर्ग 1. संयुक्त राष्ट्र एवं उसके अभिकरण

संवर्ग 2. नोबल शांति पुरस्कार संस्था, स्टॉकहोम अन्तर्राष्ट्रीय शांति शोध संस्थान, सर्वसवेा संघ एवं अणुव्रत विश्व भारती

ब. आंदोलन

संवर्ग 3. परावाश आंदोलन, बस आंदोलन, ग्रीनपीस आन्दोलन

संवर्ग 4. भूदान-ग्रामदान, सम्पूर्ण क्रान्ति, सप्तक्रान्ति

संवर्ग 5. विश्नोई आंदोलन एवं चिपको, अपिको एवं नर्मदा बचाओ आंदोलन

उद्देश्य : प्रिय विद्यार्थियों, प्रथम एवं द्वितीय वर्ष में हमने भारतीय एवं गैर भारतीय परम्परा में अहिंसा के दर्शन एवं अवधारणा आदि पर विचार किया। इस वर्ष हम अहिंसा के व्यवहार एवं अहिंसक व्यवहार को प्रोत्साहित करने वाले संस्थानों एवं आन्दोलनों का परिचय प्राप्त करेगें, जिस के अन्तर्गत हम

1. वैश्विक स्तर पर अहिंसा को समर्पित संस्थानों एवं आन्दोलनों के उद्देश्यों एवं गतिविधियों को जान पायेगें।
2. राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्यरत अनेक प्रतिष्ठित संस्थानों के कार्यकलापों को जान पायेगें।
3. विश्व शांति हेतु वैश्विक स्तर पर हुए प्रयासों को जान पायेगें।
4. भारत व वैश्विक स्तर पर अहिंसा की स्थापना हेतु हुए बुद्धिजीवियों एवं जनता के सामुहिक प्रयासों का परिचय प्राप्त करेंगे।
5. विषम सामाजिक या राजनैतिक परिस्थितियों के परिवर्तन हेतु अहिंसक विकल्प का परिचय प्राप्त करेगें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अनुक्रमणिका

इकाई संख्या	इकाई का नाम	पृष्ठ
इकाई – 1	संयुक्त राष्ट्र एवं उसके अभिकरण	1
इकाई – 2	नोबल शांति पुरस्कार संस्था, स्टोकहॉम अन्तर्राष्ट्रीय शांति शोध संस्थान, सर्वसेवा संघ एवं अणुव्रत विश्व भारती	37
इकाई – 3	पगवाश आन्दोलन, बस आन्दोलन, ग्रीनपीस आन्दोलन	51
इकाई – 4	भूदान–ग्रामदान, सम्पूर्ण क्रान्ति, सप्त क्रान्ति	63
इकाई – 5	विश्नोई आन्दोलन एवं चिपको, अपिको एवं नमर्दा बचाओ आन्दोलन।	83

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun